॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

26

श्रीमद्भागवत-महापुराण

[प्रथम-खण्ड]

[सचित्र, हिन्दी-व्याख्यासहित]

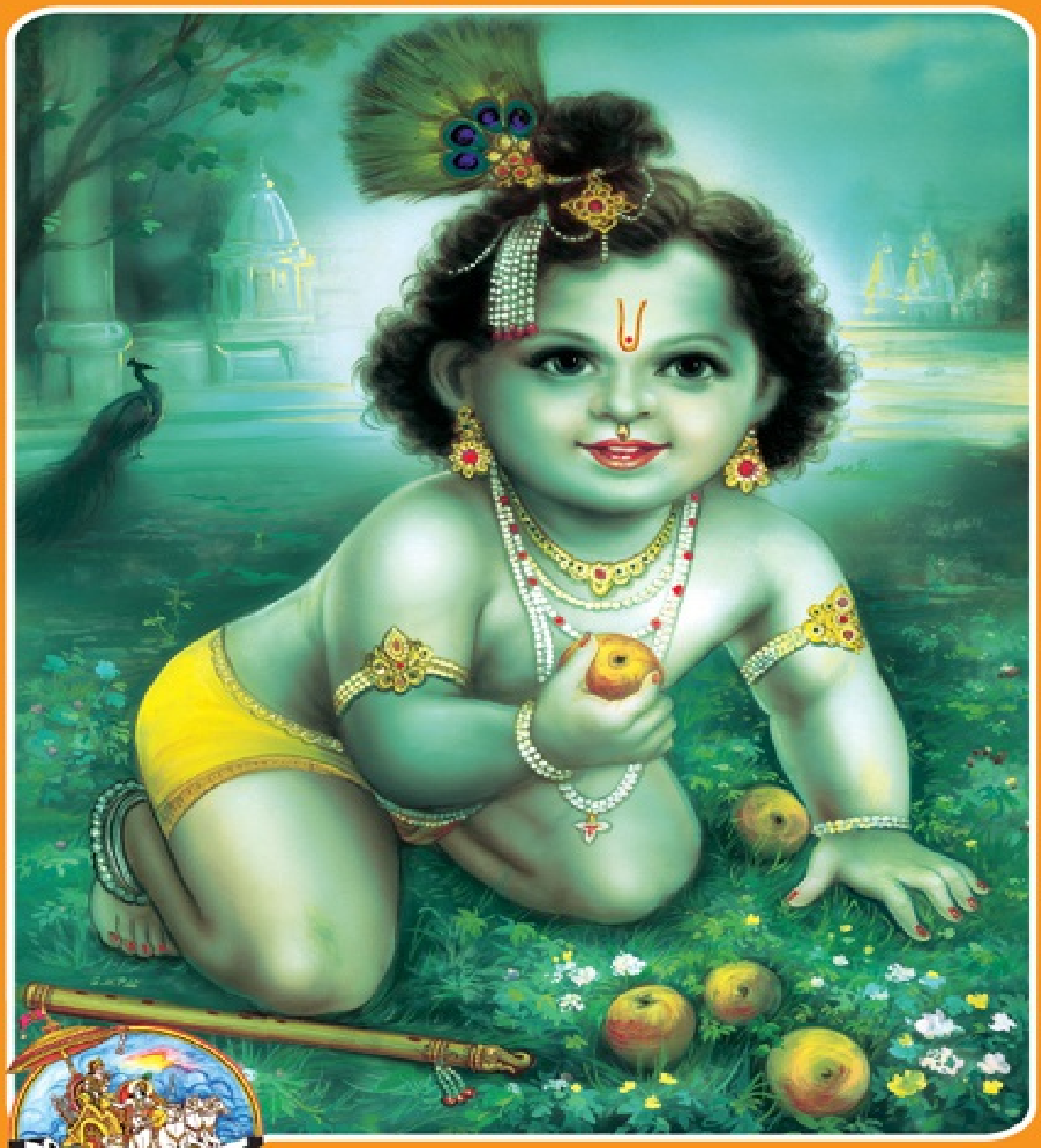

गीताप्रेस, गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

।। श्रीहरिः ।।

महर्षिवेदव्यास-प्रणीत

श्रीमद्भागवतमहापुराण

[सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित]

(प्रथम-खण्ड)

[स्कन्ध १ से ८ तक]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

गीताप्रेस, गोरखपुर

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सं० २०७१ इक्यासीवाँ पुनर्मुद्रण १०,०००
कुल मुद्रण ६,९२,७५०

प्रकाशक
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : **booksales@gitapress.org** website : **www.gitapress.org**

******ebook converter DEMO Watermarks*******

।। श्रीहरिः ।।

द्वितीय संस्करणका नम्र निवेदन

श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है। इसीसे भक्त-भागवतगण भगवद्भावनासे श्रद्धापूर्वक इसकी पूजा-आराधना किया करते हैं। भगवान् व्यास-सरीखे भगवत्स्वरूप महापुरुषको जिसकी रचनासे ही शान्ति मिली; जिसमें सकाम कर्म, निष्काम कर्म, साधनज्ञान, सिद्धज्ञान, साधनभक्ति, साध्यभक्ति, वैधी भक्ति, प्रेमा भक्ति, मर्यादामार्ग, अनुग्रहमार्ग, द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत आदि सभीका परम रहस्य बड़ी ही मधुरताके साथ भरा हुआ है, जो सारे मतभेदोंसे ऊपर उठा हुआ अथवा सभी मतभेदोंका समन्वय करनेवाला महान् ग्रन्थ है—उस भागवतकी महिमा क्या कही जाय। इसके प्रत्येक अंगसे भगवद्भावपूर्ण पारमहंस्य ज्ञान-सुधा-सरिताकी बाढ़ आ रही है—**'यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।'** भगवान्‌के मधुरतम प्रेम-रसका छलकता हुआ सागर है—श्रीमद्भागवत। इसीसे भावुक भक्तगण इसमें सदा अवगाहन करते हैं। परम मधुर भगवद्रससे भरा हुआ **'स्वादु-स्वादु पदे-पदे'** ऐसा ग्रन्थ बस, यह एक ही है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। विद्याका तो यह भण्डार ही है। **'विद्या भागवतावधिः'** प्रसिद्ध है। इस 'परमहंससंहिता' का यथार्थ आनन्द तो उन्हीं सौभाग्यशाली भक्तोंको किसी सीमातक मिल सकता है, जो हृदयकी सच्ची लगनके साथ श्रद्धा-भक्तिपूर्वक केवल 'भगवत्प्रेमकी प्राप्ति' के लिये ही इसका पारायण करते हैं। यों तो श्रीमद्भागवत आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है, इसके पारायणसे लौकिक-पारलौकिक सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसमें कई प्रकारके अमोघ प्रयोगोंके उल्लेख हैं—जैसे 'नारायण-कवच' (स्क० ६ अ० ८)-से समस्त विघ्नोंका नाश तथा विजय, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति; 'पुंसवन-व्रत' (स्क० ६ अ० १९)-से समस्त कामनाओंकी पूर्ति; 'गजेन्द्रस्तवन' (स्क० ८ अ० ३)-से ऋणसे मुक्ति, शत्रुसे छुटकारा और दुर्भाग्यका नाश, 'पयोव्रत' (स्क० ८ अ० १६)-से मनोवांछित संतानकी प्राप्ति; 'सप्ताहश्रवण' या पारायणसे प्रेतत्वसे मुक्ति। इन सब साधनोंका भगवत्प्रेम या भगवत्प्राप्तिके लिये निष्कामभावसे प्रयोग किया जाय तो इनसे भगवत्प्राप्तिके पथमें बड़ी सहायता मिलती है। श्रीमद्भागवतके सेवनका यथार्थ आनन्द तो भगवत्प्रेमी पुरुषोंको ही प्राप्त होता है। जो लोग अपनी विद्या-बुद्धिका अभिमान छोड़कर और केवल भगवत्कृपाका आश्रय लेकर श्रीमद्भागवतका अध्ययन करते हैं, वे ही इसके भावोंको अपने-अपने अधिकारके अनुसार हृदयंगम कर सकते हैं ।

गीताप्रेसके द्वारा श्रीमद्भागवतके प्रकाशनका विचार लगभग चौबीस-पचीस वर्ष पहलेसे हो रहा था। परंतु कई कारणोंसे उसमें देर होती गयी। फिर पाठका प्रश्न आया। खोज आरम्भ हुई, टीकाओं और पुरानी प्रतियोंको देखा गया। अन्तमें पूज्यपाद गोलोकवासी श्रीमन्मध्वगौडसम्प्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीदामोदरलालजी शास्त्री और गवर्नमेन्ट संस्कृत

******ebook converter DEMO Watermarks*******

कॉलेजके भूतपूर्व प्रिंसिपल परम श्रद्धेय विद्वद्वर डॉ० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए० से परामर्श किया गया। श्रीकविराज महोदयके परामर्श, प्रयत्न और परिश्रमसे काशीके सरकारी 'सरस्वती-भवन' पुस्तकालयमें सुरक्षित प्रायः आठ सौ वर्षकी पुरानी प्रति देखी गयी और गीताप्रेसके विद्वान् शास्त्रियोंके द्वारा उससे पाठ मिलाया गया। इसके लिये हम श्रद्धेय श्रीकविराजजीके हृदयसे कृतज्ञ हैं। इसके पाठनिर्णयमें मथुराके प्रसिद्ध वैष्णव विद्वान् श्रद्धेय पं० जवाहरलालजी चतुर्वेदीसे बड़ी सहायता मिली थी, एतदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं ।

इसी समय श्रीमद्भागवतके अनुवादकी बात भी चली और मेरे अनुरोधसे प्रिय श्रीमुनिलालजी (वर्तमानमें श्रद्धेय स्वामी सनातनदेवजी)-ने अनुवाद करना स्वीकार किया और भगवत्कृपासे उन्होंने सं० १९८९ के आषाढ़में उसे पूरा कर दिया। उक्त अनुवादका संशोधन श्रीवल्लभसम्प्रदायके महान् विद्वान् गोलोकवासी श्रद्धेय देवर्षि पं० श्रीरमानाथजी भट्ट, अपने ही साथी पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री और भाई हरिकृष्णदासजी गोयन्दकाके द्वारा करवाया गया। तदनन्तर संवत् १९९७ में श्रीमद्भागवतका अनुवादसहित पाठभेदकी पाद-टिप्पणियोंसे युक्त संस्करण दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया, जिसको भावुक पाठकोंने बहुत ही अपनाया। इसीके साथ-साथ मूल पाठका गुटका-संस्करण भी निकाला गया, जिसकी अबतक १,०८,२५० प्रतियाँ छप चुकी हैं ।

इसके अनन्तर संवत् १९९८ में 'कल्याण' का 'भागवताङ्क' प्रकाशित किया गया। इसमें अनुवादकी शैली कुछ बदल दी गयी। इस अनुवादका अधिकांश हमारे अपने ही पं० श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदी (वर्तमानमें श्रद्धेय स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)-ने किया। कुछ श्रीमुनिलालजी तथा पं श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीने भी किया। फिर द्वितीय महायुद्धके कारण कई तरहकी अड़चनें आ गयीं। श्रीमद्भागवतके ये दोनों खण्ड और 'श्रीभागवताङ्क' दोनों ही अप्राप्य हो गये। पुनः प्रकाशनकी बात बराबर चलती रही, पर कुछ-न-कुछ अड़चनें आती ही रहीं। 'भागवताङ्क' वाली नयी शैलीके अनुसार अनुवादमें संशोधन करना हमारे पं० श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्रीने आरम्भ भी किया। परंतु अन्यान्य कार्योंमें अत्यधिक व्यस्त रहनेके कारण उनसे वह कार्य आगे नहीं बढ़ सका। गत फाल्गुनमें श्रद्धेय स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज गोरखपुर पधारे, यों ही प्रसंगवश बात चल गयी और उन्होंने कृपापूर्वक इस कामको करना स्वीकार कर लिया। तदनुसार कार्य आरम्भ हो गया और भगवत्कृपासे अब यह छपकर पाठकोंके सामने प्रस्तुत है। श्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज महीनोंतक लगातार अथक परिश्रम करके यह कार्य नहीं करते तो आज इस रूपमें इसका प्रकाशित होना सम्भव नहीं था। इसलिये हमलोग तो स्वामीजी महाराजके कृतज्ञ हैं ही, भागवतके प्रेमी पाठकोंको भी उनका कृतज्ञ होना चाहिये ।

इस संस्करणमें अधिकांश अनुवाद 'भागवताङ्क' (मुख्यतया पं० श्रीशान्तनुविहारीजीके द्वारा अनुवादित)-के अनुसार ही है। कुछ अनुवाद तथा बहुत-सी अन्य सामग्री पूर्वप्रकाशित श्रीमद्भागवतके दोनों खण्डों (श्रीमुनिलालजीके द्वारा अनुवादित)-के अनुसार भी है। 'भागवताङ्क' के भावानुवादमें भी पं० श्रीशान्तनुविहारीजीके साथ-साथ श्रीमुनिलालजी और पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीका कुछ हाथ था। उसी प्रकार इसमें भी

******ebook converter DEMO Watermarks*******

है। इसीसे अनुवादकके रूपमें किन्हीं एक महानुभावका नाम नहीं दिया गया है। नाम-रूपके परित्यागी पूज्यद्वय संन्यासी महोदय (श्रद्धेय श्रीअखण्डानन्दजी महाराज और श्रद्धेय श्रीसनातनदेवजी महाराज) तो नाम न देनेसे प्रसन्न ही होंगे। हम तो इसको इन दोनों ही महानुभावोंका कृपाप्रसाद मानते हैं और दोनोंके ही कृतज्ञ हैं। पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री सम्पादकीय विभागके सदस्य हैं। अतः उनके नामकी पृथक् आवश्यकता भी नहीं। पाठकोंकी जानकारीके लिये यह परिचय दिया गया है। वस्तुतः अनुवादक महोदयोंके लिये इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने जो कुछ किया है, कृपापूर्वक ही किया है और उनकी कृपा तथा सद्भावना हमें सदा सहज ही प्राप्त है ।

इसमें श्लोकोंका केवल अक्षरानुवाद नहीं है, पाठकोंको श्लोकोंका भाव भलीभाँति समझानेके लिये श्लोकोंमें आये हुए प्रत्येक शब्दके भावकी पूर्ण रक्षा करते हुए छोटे-छोटे वाक्योंमें उनकी व्याख्या की गयी है, साथ ही बहुत विस्तार न हो, इसका भी ध्यान रखा गया है। इसे अनुवाद न कहकर 'सरल संक्षिप्त व्याख्या' कहना अधिक उपयुक्त होगा। स्थान-स्थानपर, विशेष करके दशम स्कन्धमें कई जगह श्रीभगवान्‌की मधुर लीलाओंके रसास्वादनके लिये और लीलारहस्यको समझनेके लिये नयी-नयी टिप्पणियाँ भी दे दी गयी हैं, जिससे इसकी उपादेयता और सुन्दरता विशेष बढ़ गयी है। साथ ही आरम्भमें स्कन्दपुराणोक्त एक छोटा माहात्म्य, श्रीमद्भागवतकी पूजनविधि आदि सप्ताहपारायणकी विधि तथा आवश्यक सामग्रीकी सूची एवं अन्तमें स्कन्दपुराणोक्त भागवतमाहात्म्य और विस्तृत प्रयोगविधि दे दी गयी है, इसलिये पहले संस्करणकी अपेक्षा इसमें पृष्ठ भी बहुत बढ़ गये हैं। चित्र भी अधिक दिये गये हैं। ये कुछ इस संस्करणकी विशेषताएँ हैं ।

इसके पाठ-संशोधन, अनुवाद, प्रूफ-संशोधन आदिमें गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी और पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीने बड़ा काम किया है। सभी बातोंमें सावधानी रखी गयी है, तथापि इतने बड़े ग्रन्थकी छपाईमें जहाँ-तहाँ भूलें अवश्य रही होंगी। कृपालु पाठकोंसे प्रार्थना है कि उन्हें पाठ, अनुवाद या छपाईमें जहाँ भूल दिखलायी दे, कृपया वे व्योरेवार लिख दें, जिससे आगामी संस्करणमें यथायोग्य संशोधन कर दिया जाय। सहृदय पाठकोंसे प्रार्थना है कि असावधानतावश होनेवाली भूलोंके लिये वे क्षमा करें ।

अन्तमें निवेदन है कि यह सब जो कुछ हुआ है, इसमें भगवत्कृपा ही कारण है और सब तो निमित्तमात्र है। मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूँ और अपने प्रति श्रीभगवान्‌की बड़ी कृपा मानता हूँ, जिससे इधर कई महीने प्रायः श्रीमद्भागवतके ही पठन-चिन्तन आदिमें लगे ।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

******ebook converter DEMO Watermarks*******

।। श्रीहरिः ।।

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

श्रीमद्भागवतमाहात्म्य

१-देवर्षि नारदकी भक्तिसे भेंट
२-भक्तिका दुःख दूर करनेके लिये नारदजीका उद्योग
३-भक्तिके कष्टकी निवृत्ति
४-गोकर्णोपाख्यान प्रारम्भ
५-धुन्धुकारीको प्रेतयोनिकी प्राप्ति और उससे उद्धार
६-सप्ताहयज्ञकी विधि

प्रथम स्कन्ध

१-श्रीसूतजीसे शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न
२-भगवत्कथा और भगवद्भक्तिका माहात्म्य
३-भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन
४-महर्षि व्यासका असंतोष
५-भगवान्‌के यश-कीर्तनकी महिमा और देवर्षि नारदजीका पूर्वचरित्र
६-नारदजीके पूर्वचरित्रका शेष भाग
७-अश्वत्थामाद्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका मारा जाना और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाका मानमर्दन
८-गर्भमें परीक्षित्‌की रक्षा, कुन्तीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और युधिष्ठिरका शोक
९-युधिष्ठिरादिका भीष्मजीके पास जाना और भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए भीष्मजीका प्राणत्याग करना
१०-श्रीकृष्णका द्वारका-गमन
११-द्वारकामें श्रीकृष्णका राजोचित स्वागत
१२-परीक्षित्‌का जन्म
१३-विदुरजीके उपदेशसे धृतराष्ट्र और गान्धारीका वनमें जाना

******ebook converter DEMO Watermarks*******

१४-अपशकुन देखकर महाराज युधिष्ठिरका शंका करना और अर्जुनका द्वारकासे लौटना
१५-कृष्णविरहव्यथित पाण्डवोंका परीक्षित्‌को राज्य देकर स्वर्ग सिधारना
१६-परीक्षित्‌की दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वीका संवाद
१७-महाराज परीक्षित्‌द्वारा कलियुगका दमन
१८-राजा परीक्षित्‌को शृंगी ऋषिका शाप
१९-परीक्षित्‌का अनशनव्रत और शुकदेवजीका आगमन

द्वितीय स्कन्ध

१-ध्यान-विधि और भगवान्‌के विराट्स्वरूपका वर्णन
२-भगवान्‌के स्थूल और सूक्ष्मरूपोंकी धारणा तथा क्रममुक्ति और सद्योमुक्तिका वर्णन
३-कामनाओंके अनुसार विभिन्न देवताओंकी उपासना तथा भगवद्भक्तिके प्राधान्यका निरूपण
४-राजाका सृष्टिविषयक प्रश्न और शुकदेवजीका कथारम्भ
५-सृष्टि-वर्णन
६-विराट्स्वरूपकी विभूतियोंका वर्णन
७-भगवान्‌के लीलावतारोंकी कथा
८-राजा परीक्षित्‌के विविध प्रश्न
९-ब्रह्माजीका भगवद्धामदर्शन और भगवान्‌के द्वारा उन्हें चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश
१०-भागवतके दस लक्षण

तृतीय स्कन्ध

१-उद्धव और विदुरकी भेंट
२-उद्धवजीद्वारा भगवान्‌की बाललीलाओंका वर्णन
३-भगवान्‌के अन्य लीलाचरित्रोंका वर्णन
४-उद्धवजीसे विदा होकर विदुरजीका मैत्रेय ऋषिके पास जाना
५-विदुरजीका प्रश्न और मैत्रेयजीका सृष्टिक्रम वर्णन
६-विराट् शरीरकी उत्पत्ति
७-विदुरजीके प्रश्न
८-ब्रह्माजीकी उत्पत्ति
९-ब्रह्माजीद्वारा भगवान्‌की स्तुति

******ebook converter DEMO Watermarks*******

१०-दस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन
११-मन्वन्तरादि कालविभागका वर्णन
१२-सृष्टिका विस्तार
१३-वाराह-अवतारकी कथा
१४-दितिका गर्भधारण
१५-जय-विजयको सनकादिका शाप
१६-जय-विजयका वैकुण्ठसे पतन
१७-हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षका जन्म तथा हिरण्याक्षकी दिग्विजय
१८-हिरण्याक्षके साथ वराहभगवान्‌का युद्ध
१९-हिरण्याक्ष-वध
२०-ब्रह्माजीकी रची हुई अनेक प्रकारकी सृष्टिका वर्णन
२१-कर्दमजीकी तपस्या और भगवान्‌का वरदान
२२-देवहूतिके साथ कर्दम प्रजापतिका विवाह
२३-कर्दम और देवहूतिका विहार
२४-श्रीकपिलदेवजीका जन्म
२५-देवहूतिका प्रश्न तथा भगवान् कपिलद्वारा भक्तियोगकी महिमाका वर्णन
२६-महदादि भिन्न-भिन्न तत्त्वोंकी उत्पत्तिका वर्णन
२७-प्रकृति-पुरुषके विवेकसे मोक्ष-प्राप्तिका वर्णन
२८-अष्टांगयोगकी विधि
२९-भक्तिका मर्म और कालकी महिमा
३०-देह-गेहमें आसक्त पुरुषोंकी अधोगतिका वर्णन
३१-मनुष्ययोनिको प्राप्त हुए जीवकी गतिका वर्णन
३२-धूममार्ग और अर्चिरादि मार्गसे जानेवालोंकी गतिका और भक्तियोगकी उत्कृष्टताका वर्णन
३३-देवहूतिको तत्त्वज्ञान एवं मोक्षपदकी प्राप्ति

चतुर्थ स्कन्ध

१-स्वायम्भुव-मनुकी कन्याओंके वंशका वर्णन
२-भगवान् शिव और दक्ष प्रजापतिका मनोमालिन्य
३-सतीका पिताके यहाँ यज्ञोत्सवमें जानेके लिये आग्रह करना

******ebook converter DEMO Watermarks*******

४-सतीका अग्निप्रवेश
५-वीरभद्रकृत दक्षयज्ञविध्वंस और दक्षवध
६-ब्रह्मादि देवताओंका कैलास जाकर श्रीमहादेवजीको मनाना
७-दक्षयज्ञकी पूर्ति
८-ध्रुवका वन-गमन
९-ध्रुवका वर पाकर घर लौटना
१०-उत्तमका मारा जाना, ध्रुवका यक्षोंके साथ युद्ध
११-स्वायम्भुव-मनुका ध्रुवजीको युद्ध बंद करनेके लिये समझाना
१२-ध्रुवजीको कुबेरका वरदान और विष्णुलोककी प्राप्ति
१३-ध्रुववंशका वर्णन, राजा अंगका चरित्र
१४-राजा वेनकी कथा
१५-महाराज पृथुका आविर्भाव और राज्याभिषेक
१६-वंदीजनद्वारा महाराज पृथुकी स्तुति
१७-महाराज पृथुका पृथ्वीपर कुपित होना और पृथ्वीके द्वारा उनकी स्तुति करना
१८-पृथ्वी-दोहन
१९-महाराज पृथुके सौ अश्वमेध यज्ञ
२०-महाराज पृथुकी यज्ञशालामें श्रीविष्णुभगवान्‌का प्रादुर्भाव
२१-महाराज पृथुका अपनी प्रजाको उपदेश
२२-महाराज पृथुको सनकादिका उपदेश
२३-राजा पृथुकी तपस्या और परलोकगमन
२४-पृथुकी वंशपरम्परा और प्रचेताओंको भगवान् रुद्रका उपदेश
२५-पुरंजनोपाख्यानका प्रारम्भ
२६-राजा पुरंजनका शिकार खेलने वनमें जाना और रानीका कुपित होना
२७-पुरंजनपुरीपर चण्डवेगकी चढ़ाई तथा कालकन्याका चरित्र
२८-पुरंजनको स्त्रीयोनिकी प्राप्ति और अविज्ञातके उपदेशसे उसका मुक्त होना
२९-पुरंजनोपाख्यानका तात्पर्य
३०-प्रचेताओंको श्रीविष्णुभगवान्‌का वरदान
३१-प्रचेताओंको श्रीनारदजीका उपदेश और उनका परमपद-लाभ

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पञ्चम स्कन्ध

१-प्रियव्रत-चरित्र
२-आग्नीध्र-चरित्र
३-राजा नाभिका चरित्र
४-ऋषभदेवजीका राज्यशासन
५-ऋषभजीका अपने पुत्रोंको उपदेश देना और स्वयं अवधूतवृत्ति ग्रहण करना
६-ऋषभदेवजीका देहत्याग
७-भरत-चरित्र
८-भरतजीका मृगके मोहमें फँसकर मृगयोनिमें जन्म लेना
९-भरतजीका ब्राह्मणकुलमें जन्म
१०-जडभरत और राजा रहूगणकी भेंट
११-राजा रहूगणको भरतजीका उपदेश
१२-रहूगणका प्रश्न और भरतजीका समाधान
१३-भवाटवीका वर्णन और रहूगणका संशयनाश
१४-भवाटवीका स्पष्टीकरण
१५-भरतके वंशका वर्णन
१६-भुवनकोशका वर्णन
१७-गंगाजीका विवरण और भगवान् शंकरकृत संकर्षणदेवकी स्तुति
१८-भिन्न-भिन्न वर्षोंका वर्णन
१९-किम्पुरुष और भारतवर्षका वर्णन
२०-अन्य छः द्वीपों तथा लोकालोक-पर्वतका वर्णन
२१-सूर्यके रथ और उसकी गतिका वर्णन
२२-भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गतिका वर्णन
२३-शिशुमारचक्रका वर्णन
२४-राहु आदिकी स्थिति, अतलादि नीचेके लोकोंका वर्णन
२५-श्रीसङ्कर्षणदेवका विवरण और स्तुति
२६-नरकोंकी विभिन्न गतियोंका वर्णन

षष्ठ स्कन्ध

******ebook converter DEMO Watermarks*******

१-अजामिलोपाख्यानका प्रारम्भ
२-विष्णुदूतोंद्वारा भागवतधर्म-निरूपण और अजामिलका परमधामगमन
३-यम और यमदूतोंका संवाद
४-दक्षके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का प्रादुर्भाव
५-श्रीनारदजीके उपदेशसे दक्षपुत्रोंकी विरक्ति तथा नारदजीको दक्षका शाप
६-दक्षप्रजापतिकी साठ कन्याओंके वंशका विवरण
७-बृहस्पतिजीके द्वारा देवताओंका त्याग और विश्वरूपका देवगुरुके रूपमें वरण
८-नारायणकवचका उपदेश
९-विश्वरूपका वध, वृत्रासुरद्वारा देवताओंकी हार और भगवान्‌की प्रेरणासे देवताओंका दधीचि ऋषिके पास जाना
१०-देवताओंद्वारा दधीचि ऋषिकी अस्थियोंसे वज्रनिर्माण और वृत्रासुरकी सेनापर आक्रमण
११-वृत्रासुरकी वीरवाणी और भगवत्प्राप्ति
१२-वृत्रासुरका वध
१३-इन्द्रपर ब्रह्महत्याका आक्रमण
१४-वृत्रासुरका पूर्वचरित्र
१५-चित्रकेतुको अंगिरा और नारदजीका उपदेश
१६-चित्रकेतुका वैराग्य तथा संकर्षणदेवके दर्शन
१७-चित्रकेतुको पार्वतीजीका शाप
१८-अदिति और दितिकी सन्तानोंकी तथा मरुद्‌गणोंकी उत्पत्तिका वर्णन
१९-पुंसवन-व्रतकी विधि

सप्तम स्कन्ध

१-नारद-युधिष्ठिर-संवाद और जय-विजयकी कथा
२-हिरण्याक्षका वध होनेपर हिरण्यकशिपुका अपनी माता और कुटुम्बियोंको समझाना
३-हिरण्यकशिपुकी तपस्या और वरप्राप्ति
४-हिरण्यकशिपुके अत्याचार और प्रह्लादके गुणोंका वर्णन
५-हिरण्यकशिपुके द्वारा प्रह्लादजीके वधका प्रयत्न
६-प्रह्लादजीका असुर-बालकोंको उपदेश
७-प्रह्लादजीद्वारा माताके गर्भमें प्राप्त हुए नारदजीके उपदेशका वर्णन
८-नृसिंहभगवान्‌का प्रादुर्भाव, हिरण्यकशिपुका वध एवं ब्रह्मादि देवताओंद्वारा भगवान्‌की

******ebook converter DEMO Watermarks*******

स्तुति
९-प्रह्लादजीके द्वारा नृसिंहभगवान्‌की स्तुति
१०-प्रह्लादजीके राज्याभिषेक और त्रिपुरदहनकी कथा
११-मानवधर्म, वर्णधर्म और स्त्रीधर्मका निरूपण
१२-ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थआश्रमोंके नियम
१३-यतिधर्मका निरूपण और अवधूत-प्रह्लाद-संवाद
१४-गृहस्थसम्बन्धी सदाचार
१५-गृहस्थोंके लिये मोक्षधर्मका वर्णन

अष्टम स्कन्ध

१-मन्वन्तरोंका वर्णन
२-ग्राहके द्वारा गजेन्द्रका पकड़ा जाना
३-गजेन्द्रके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और उसका संकटसे मुक्त होना
४-गज और ग्राहका पूर्वचरित्र तथा उनका उद्धार
५-देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाना और ब्रह्माकृत भगवान्‌की स्तुति
६-देवताओं और दैत्योंका मिलकर समुद्रमन्थनके लिये उद्योग करना
७-समुद्रमन्थनका आरम्भ और भगवान् शंकरका विषपान
८-समुद्रसे अमृतका प्रकट होना और भगवान्‌का मोहिनी-अवतार ग्रहण करना
९-मोहिनी-रूपसे भगवान्‌के द्वारा अमृत बाँटा जाना
१०-देवासुर-संग्राम
११-देवासुर-संग्रामकी समाप्ति
१२-मोहिनीरूपको देखकर महादेवजीका मोहित होना
१३-आगामी सात मन्वन्तरोंका वर्णन
१४-मनु आदिके पृथक्-पृथक् कर्मोंका निरूपण
१५-राजा बलिकी स्वर्गपर विजय
१६-कश्यपजीके द्वारा अदितिको पयोव्रतका उपदेश
१७-भगवान्‌का प्रकट होकर अदितिको वर देना
१८-वामनभगवान्‌का प्रकट होकर राजा बलिकी यज्ञशालामें पधारना
१९-भगवान् वामनका बलिसे तीन पग पृथ्वी माँगना, बलिका वचन देना और शुक्राचार्यजीका उन्हें रोकना

******ebook converter DEMO Watermarks*******

२०-भगवान् वामनजीका विराट्रूप होकर दो ही पगसे पृथ्वी और स्वर्गको नाप लेना
२१-बलिका बाँधा जाना
२२-बलिके द्वारा भगवान्की स्तुति और भगवान्का उसपर प्रसन्न होना
२३-बलिका बन्धनसे छूटकर सुतललोकको जाना
२४-भगवान्के मत्स्यावतारकी कथा

******ebook converter DEMO Watermarks*******

चतुःश्लोकी भागवत

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ।।१।।
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ।।२।।
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ।।३।।
एतावदेव जिज्ञास्यंतत्त्व जिज्ञासुनाऽऽत्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ।।४।।

सृष्टिके पूर्व केवल मैं-ही-मैं था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं-ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं हूँ; और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ ।।१।। वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझनी चाहिये ।।२।। जैसे प्राणियोंके पंचभूतरचित छोटे-बड़े शरीरोंमें आकाशादि पंचमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ ।।३।। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं—इस प्रकार निषेधकी पद्धतिसे और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है—इस अन्वयकी पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं, वे ही वास्तविक तत्त्व हैं। जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्त्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना ही जाननेकी आवश्यकता है ।।४।।

(श्रीमद्भा० २।९।३२-३५)

******ebook converter DEMO Watermarks*******

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

(स्वयं श्रीभगवान्‌के श्रीमुखसे ब्रह्माजीके प्रति कथित)

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं लोकविश्रुतम् ।
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम सन्तोषकारणम् ।।१।।

लोकविख्यात श्रीमद्भागवत नामक पुराणका प्रतिदिन श्रद्धायुक्त होकर श्रवण करना चाहिये। यही मेरे संतोषका कारण है ।

नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः ।
प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम् ।।२।।

जो मनुष्य प्रतिदिन भागवतपुराणका पाठ करता है, उसे एक-एक अक्षरके उच्चारणके साथ कपिला गौ दान देनेका पुण्य होता है ।

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ।
पठते शृणुयाद् यस्तु गोसहस्रफलं लभेत् ।।३।।

जो प्रतिदिन भागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकका पाठ अथवा श्रवण करता है, उसे एक हजार गोदानका फल मिलता है ।

यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं सुत ।
अष्टादशपुराणानां फलमाप्नोति मानवः ।।४।।

पुत्र! जो प्रतिदिन पवित्रचित्त होकर भागवतके एक श्लोकका पाठ करता है, वह मनुष्य अठारह पुराणोंके पाठका फल पा लेता है ।

नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः ।
कलिबाह्या नरास्ते वै येऽर्चयन्ति सदा मम ।।५।।

जहाँ नित्य मेरी कथा होती है, वहाँ विष्णुपार्षद प्रह्लाद आदि विद्यमान रहते हैं। जो मनुष्य सदा मेरे भागवतशास्त्रकी पूजा करते हैं, वे कलिके अधिकारसे अलग हैं, उनपर कलिका वश नहीं चलता ।

वैष्णवानां तु शास्त्राणि येऽर्चयन्ति गृहे नराः ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता भवन्ति सुरवन्दिताः ।।६।।

जो मानव अपने घरमें वैष्णवशास्त्रोंकी पूजा करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर देवताओंद्वारा वन्दित होते हैं ।

येऽर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
आस्फोटयन्ति वल्गन्ति तेषां प्रीतो भवाम्यहम् ।।७।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

जो लोग कलियुगमें अपने घरके भीतर प्रतिदिन भागवतशास्त्रकी पूजा करते हैं, वे [कलिसे निडर होकर] ताल ठोंकते और उछलते-कूदते हैं, मैं उनपर बहुत प्रसन्न रहता हूँ ।

यावद्दिनानि हे पुत्र शास्त्रं भागवतं गृहे ।

तावत् पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ।।८।।

पुत्र! मनुष्य जितने दिनोंतक अपने घरमें भागवतशास्त्र रखता है, उतने समयतक उसके पितर दूध, घी, मधु और मीठा जल पीते हैं ।

यच्छन्ति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये ।

कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके वसन्ति ते ।।९।।

जो लोग विष्णुभक्त पुरुषको भक्तिपूर्वक भागवतशास्त्र समर्पण करते हैं, वे हजारों करोड़ कल्पोंतक (अनन्तकालतक) मेरे वैकुण्ठधाममें वास करते हैं ।

येऽर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः ।

प्रीणितास्तैश्च विबुधा यावदाभूतसंप्लवम् ।।१०।।

जो लोग सदा अपने घरमें भागवतशास्त्रका पूजन करते हैं, वे मानो एक कल्पतकके लिये सम्पूर्ण देवताओंको तृप्त कर देते हैं ।

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा वरं भागवतं गृहे ।

शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ।।११।।

यदि अपने घरपर भागवतका आधा श्लोक या चौथाई श्लोक भी रहे, तो यह बहुत उत्तम बात है, उसे छोड़कर सैकड़ों और हजारों तरहके अन्य ग्रन्थोंके संग्रहसे भी क्या लाभ है?

न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ ।

न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्यपाशात् कदाचन ।।१२।।

कलियुगमें जिस मनुष्यके घरमें भागवतशास्त्र मौजूद नहीं है, उसको यमराजके पाशसे कभी छुटकारा नहीं मिलता ।

कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ ।

गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचादधिको हि सः ।।१३।।

इस कलियुगमें जिसके घर भागवतशास्त्र मौजूद नहीं है, उसे कैसे वैष्णव समझा जाय? वह तो चाण्डालसे भी बढ़कर नीच है!

सर्वस्वेनापि लोकेश कर्तव्यः शास्त्रसंग्रहः ।

वैष्णवस्तु सदा भक्त्या तुष्ट्यर्थं मम पुत्रक ।।१४।।

लोकेश ब्रह्मा! पुत्र! मनुष्यको सदा मुझे भक्ति-पूर्वक संतुष्ट करनेके लिये अपना सर्वस्व देकर भी वैष्णवशास्त्रोंका संग्रह करना चाहिये ।

यत्र यत्र भवेत् पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

तत्र तत्र सदैवाहं भवामि त्रिदशैः सह ।।१५।।

कलियुगमें जहाँ-जहाँ पवित्र भागवतशास्त्र रहता है, वहाँ-वहाँ सदा ही मैं देवताओंके साथ उपस्थित रहता हूँ ।

तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदीनदसरांसि च ।

यज्ञाः सप्तपुरी नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयाः ।।१६।।

यही नहीं—वहाँ नदी, नद और सरोवररूपमें प्रसिद्ध सभी तीर्थ वास करते हैं; सम्पूर्ण यज्ञ, सात पुरियाँ और सभी पावन पर्वत वहाँ नित्य निवास करते हैं ।

श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशोधर्मजयार्थिना ।

पापक्षयार्थं लोकेश मोक्षार्थं धर्मबुद्धिना ।।१७।।

लोकेश! यश, धर्म और विजयके लिये तथा पापक्षय एवं मोक्षकी प्राप्तिके लिये धर्मात्मा मनुष्यको सदा ही मेरे भागवतशास्त्रका श्रवण करना चाहिये ।

श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम् ।

पठनाच्छ्रवणाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१८।।

यह पावन पुराण श्रीमद्भागवत आयु, आरोग्य और पुष्टिको देनेवाला है; इसका पाठ अथवा श्रवण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ।

न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् ।

सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ।।१९।।

लोकेश! जो इस परम उत्तम भागवतको न तो सुनते हैं और न सुनकर प्रसन्न ही होते हैं, उनके स्वामी सदा यमराज ही हैं—वे सदा यमराजके ही वशमें रहते हैं—यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ ।

न गच्छति यदा मर्त्यः श्रोतुं भागवतं सुत ।

एकादश्यां विशेषेण नास्ति पापरतस्ततः ।।२०।।

पुत्र! जो मनुष्य सदा ही—विशेषतः एकादशीको भागवत सुनने नहीं जाता, उससे बढ़कर पापी कोई नहीं है ।

श्लोकं भागवतं चापि श्लोकार्धं पादमेव वा ।

लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसाम्यहम् ।।२१।।

जिसके घरमें एक श्लोक, आधा श्लोक अथवा श्लोकका एक ही चरण लिखा रहता है, उसके घरमें मैं निवास करता हूँ ।

सर्वाश्रमाभिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।

न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ।।२२।।

मनुष्यके लिये सम्पूर्ण पुण्य-आश्रमोंकी यात्रा या सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करना भी वैसा पवित्रकारक नहीं है, जैसा श्रीमद्भागवत है ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् ।
गच्छामि तत्र तत्राहं गौर्यथा सुतवत्सला ।।२३।।

चतुर्मुख! जहाँ-जहाँ भागवतकी कथा होती है, वहाँ-वहाँ मैं उसी प्रकार जाता हूँ, जैसे पुत्रवत्सला गौ अपने बछड़ेके पीछे-पीछे जाती है ।

मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम् ।
मत्कथाप्रीतमनसं नाहं त्यक्ष्यामि तं नरम् ।।२४।।

जो मेरी कथा कहता है, जो सदा उसे सुननेमें लगा रहता है तथा जो मेरी कथासे मन-ही-मन प्रसन्न होता है, उस मनुष्यका मैं कभी त्याग नहीं करता ।

श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा नोत्तिष्ठते हि यः ।
सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं याति पुत्रक ।।२५।।

पुत्र! जो परम पुण्यमय श्रीमद्भागवतशास्त्रको देखकर अपने आसनसे उठकर खड़ा नहीं हो जाता, उसका एक वर्षका पुण्य नष्ट हो जाता है ।

श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युथानाभिवादनैः ।
सम्मानयेत तं दृष्ट्वा भवेत् प्रीतिर्ममातुला ।।२६।।

जो श्रीमद्भागवतपुराणको देखकर खड़ा होने और प्रणाम करने आदिके द्वारा उसका सम्मान करता है, उस मनुष्यको देखकर मुझे अनुपम आनन्द मिलता है ।

दृष्ट्वा भागवतं दूरात् प्रक्रमेत् सम्मुखं हि यः ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ।।२७।।

जो श्रीमद्भागवतको दूरसे ही देखकर उसके सम्मुख जाता है, वह एक-एक पगपर अश्वमेध यज्ञके पुण्यको प्राप्त करता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

उत्थाय प्रणमेद् यो वै श्रीमद्भागवतं नरः ।
धनपुत्रांस्तथा दारान् भक्तिं च प्रददाम्यहम् ।।२८।।

जो मानव खड़ा होकर श्रीमद्भागवतको प्रणाम करता है, उसे मैं धन, स्त्री, पुत्र और अपनी भक्ति प्रदान करता हूँ ।

महाराजोपचारैस्तु श्रीमद्भागवतं सुत ।
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यो भवाम्यहम् ।।२९।।

हे पुत्र! जो लोग महाराजोचित सामग्रियोंसे युक्त होकर भक्तिपूर्वक श्रीमद्भागवतकी कथा सुनते हैं, मैं उनके वशीभूत हो जाता हूँ ।

ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् ।
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुव्रत ।।३०।।
वस्त्रालङ्करणैः पुष्पैर्धूपदीपोपहारकैः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

वशीकृतो ह्यहं तैश्च सत्स्त्रिया सत्पतिर्यथा ।।३१।।

सुव्रत! जो लोग मेरे पर्वोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी उत्सवोंमें मेरी प्रसन्नताके लिये वस्त्र, आभूषण, पुष्प, धूप और दीप आदि उपहार अर्पण करते हुए परम उत्तम श्रीमद्भागवतपुराणका भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं, वे मुझे उसी प्रकार अपने वशमें कर लेते हैं, जैसे पतिव्रता स्त्री अपने साधुस्वभाववाले पतिको वशमें कर लेती है ।
(स्कन्दपुराण, विष्णुखण्ड, मार्गशीर्षमाहात्म्य अ० १६)

******ebook converter DEMO Watermarks*******

श्रीशुकदेवजीको नमस्कार

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ।।

(१।२।२)

जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुतरां लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा! बेटा!' उस समय तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे वृक्षोंने उत्तर दिया। ऐसे, सबके हृदयमें विराजमान श्रीशुकदेव मुनिको मैं नमस्कार करता हूँ ।

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेक-
मध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं
तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ।।

(१।२।३)

यह श्रीमद्भागवत अत्यन्त गोपनीय-रहस्यात्मक पुराण है। यह भगवत्स्वरूपका अनुभव करानेवाला और समस्त वेदोंका सार है। संसारमें फँसे हुए जो लोग इस घोर अज्ञानान्धकारसे पार जाना चाहते हैं, उनके लिये आध्यात्मिक तत्त्वोंको प्रकाशित करनेवाला यह एक अद्वितीय दीपक है। वास्तवमें उन्हींपर करुणा करके बड़े-बड़े मुनियोंके आचार्य श्रीशुकदेवजीने इसका वर्णन किया है। मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ ।

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ।।

(१२।१२।६८)

श्रीशुकदेवजी महाराज अपने आत्मानन्दमें ही निमग्न थे। इस अखण्ड अद्वैत स्थितिसे उनकी भेददृष्टि सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी। फिर भी मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरकी मधुमयी, मंगलमयी मनोहारिणी लीलाओंने उनकी वृत्तियोंको अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उन्होंने जगत्के प्राणियोंपर कृपा करके भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले इस महापुराणका विस्तार किया। मैं उन्हीं सर्वपापहारी व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीके चरणोंमें नमस्कार

******ebook converter DEMO Watermarks*******

करता हूँ ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

श्रीमद्भागवतकी महिमा

श्रीमद्भागवतकी महिमा मैं क्या लिखूँ? उसके आदिके तीन श्लोकोंमें जो महिमा कह दी गयी है, उसके बराबर कौन कह सकता है? उन तीनों श्लोकोंको कितनी ही बार पढ़ चुकनेपर भी जब उनका स्मरण होता है, मनमें अद्भुत भाव उदित होते हैं। कोई अनुवाद उन श्लोकोंकी गम्भीरता और मधुरताको पा नहीं सकता। उन तीनों श्लोकोंसे मनको निर्मल करके फिर इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान कीजिये—

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ।।
प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ।
आनन्दसम्प्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ।।
रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचापहम् ।
अपश्यन् सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद् दुर्मना इव ।।

मुझको श्रीमद्भागवतमें अत्यन्त प्रेम है। मेरा विश्वास और अनुभव है कि इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्यको ईश्वरका सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है और उनके चरणकमलोंमें अचल भक्ति होती है। इसके पढ़नेसे मनुष्यको दृढ़ निश्चय हो जाता है कि इस संसारको रचने और पालन करनेवाली कोई सर्वव्यापक शक्ति है—

एक अनन्त त्रिकाल सच, चेतन शक्ति दिखात ।
सिरजत, पालत, हरत, जग, महिमा बरनि न जात ।।

इसी एक शक्तिको लोग ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा इत्यादि अनेक नामोंसे पुकारते हैं। भागवतके पहले ही श्लोकमें वेदव्यासजीने ईश्वरके स्वरूपका वर्णन किया है कि जिससे इस संसारकी सृष्टि, पालन और संहार होते हैं, जो त्रिकालमें सत्य है—अर्थात् जो सदा रहा भी, है भी और रहेगा भी—और जो अपने प्रकाशसे अन्धकारको सदा दूर रखता है, उस परम सत्यका हम ध्यान करते हैं। उसी स्थानमें श्रीमद्भागवतका स्वरूप भी इस प्रकारसे संक्षेपमें वर्णित है कि इस भागवतमें—जो दूसरोंकी बढ़ती देखकर डाह नहीं करते, ऐसे साधुजनोंका सब प्रकारके स्वार्थसे रहित परम धर्म और वह जाननेके योग्य ज्ञान वर्णित है जो वास्तवमें सब कल्याणका देनेवाला और आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—इन तीनों प्रकारके तापोंको मिटानेवाला है। और ग्रन्थोंसे क्या, जिन सुकृतियोंने पुण्यके कर्म कर रखे हैं और जो श्रद्धासे भागवतको पढ़ते या सुनते हैं, वे इसका सेवन करनेके समयसे ही अपनी भक्तिसे ईश्वरको अपने हृदयमें अविचलरूपसे स्थापित कर लेते हैं। ईश्वरका ज्ञान और उनमें भक्तिका परम साधन—ये दो पदार्थ जब किसी प्राणीको प्राप्त हो गये तो कौन-सा पदार्थ रह गया, जिसके लिये मनुष्य कामना करे और ये दोनों पदार्थ श्रीमद्भागवतसे पूरी मात्रामें प्राप्त होते हैं। इसीलिये यह पवित्र ग्रन्थ मनुष्यमात्रका उपकारी है। जबतक मनुष्य भागवतको पढ़े

******ebook converter DEMO Watermarks*******

नहीं और उसकी इसमें श्रद्धा न हो, तबतक वह समझ नहीं सकता कि ज्ञान-भक्ति-वैराग्यका यह कितना विशाल समुद्र है। भागवतके पढ़नेसे उसको यह विमल ज्ञान हो जाता है कि एक ही परमात्मा प्राणी-प्राणीमें बैठा हुआ है और जब उसको यह ज्ञान हो जाता है, तब वह अधर्म करनेका मन नहीं करता; क्योंकि दूसरोंको चोट पहुँचाना अपनेको चोट पहुँचानेके समान हो जाता है। इसका ज्ञान होनेसे मनुष्य सत्य धर्ममें स्थिर हो जाता है, स्वभावहीसे दया-धर्मका पालन करने लगता है और किसी अहिंसक प्राणीके ऊपर वार करनेकी इच्छा नहीं करता। मनुष्योंमें परस्पर प्रेम और प्राणिमात्रके प्रति दयाका भाव स्थापित करनेके लिये इससे बढ़कर कोई साधन नहीं। वर्तमान समयमें, जब संसारके बहुत अधिक भागोंमें भयंकर युद्ध छिड़ा हुआ है, मनुष्यमात्रको इस पवित्र धर्मका उपदेश अत्यन्त कल्याणकारी होगा। जो भगवद्भक्त हैं और श्रीमद्भागवतके महत्त्वको जानते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि मनुष्यके लोक और परलोक दोनोंके बनानेवाले इस पवित्र ग्रन्थका सब देशोंकी भाषाओंमें अनुवाद कर इसका प्रचार करें ।

—मदन मोहन मालवीय

******ebook converter DEMO Watermarks*******

श्रीमद्भागवतकी पूजन-विधि तथा विनियोग, न्यास एवं ध्यान

प्रातःकाल स्नानके पश्चात् अपना नित्य-नियम समाप्त करके पहले भगवत्-सम्बन्धी स्तोत्रों एवं पदोंके द्वारा मंगलाचरण और वन्दना करे। इसके बाद आचमन और प्राणायाम करके—

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥१॥

—इत्यादि मन्त्रोंसे शान्तिपाठ करे। इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीव्यासजी, शुकदेवजी तथा श्रीमद्भागवत-ग्रन्थकी षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। यहाँ श्रीमद्भागवत-पुस्तकके षोडशोपचार पूजनकी मन्त्रसहित विधि दी जा रही है, इसीके अनुसार श्रीकृष्ण आदिकी भी पूजा करनी चाहिये। निम्नांकित वाक्य पढ़कर पूजनके लिये संकल्प करना चाहिये। संकल्पके समय दाहिने हाथकी अनामिका अंगुलिमें कुशकी पवित्री पहने और हाथमें जल लिये रहे। संकल्पवाक्य इस प्रकार है—

ॐ तत्सत्। ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः ओ३मद्यैतस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यस्थाने कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकयोगवारांशकलग्नमुहूर्तकरणान्वितायां शुभपुण्यतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नस्य अमुकशर्मणः (वर्मणः गुप्तस्य वा) मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य श्रीगोवर्धनधरणचरणारविन्दप्रसादात् सर्वसमृद्धिप्राप्त्यर्थं भगवदनुग्रहपूर्वकभगवदीयप्रेमोपलब्धये च श्रीभगवन्नामात्मकभगवत्स्वरूपश्रीभागवतस्य पाठेऽधिकारसिद्ध्यर्थं श्रीमद्भागवतस्य प्रतिष्ठां पूजनं चाहं करिष्ये ।

इस प्रकार संकल्प करके—

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने
शंय्योऽस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां
नमो दिवे बृहते सादनाय ॥२॥

—यह मन्त्र पढ़कर श्रीमद्भागवतकी सिंहासन या अन्य किसी आसनपर स्थापना करे। तत्पश्चात् पुरुषसूक्तके एक-एक मन्त्रद्वारा क्रमशः षोडश-उपचार अर्पण करते हुए पूजन करे ।

१—देवताओ! हमें अपने कानोंसे ऐसे ही वचन सुननेको मिलें, जो परिणाममें कल्याणकारी हों। हम यज्ञकर्ममें समर्थ होकर अपनी इन आँखोंसे सदा शुभ-ही-शुभ देखें—

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अशुभका कभी दर्शन न हो। हमारा शरीर और उसके अवयव स्थिर हों—पुष्ट हों और उनसे परमात्माकी स्तुति—भगवान्‌की सेवा करते हुए हम ऐसी आयुका उपभोग करें, ऐसा जीवन बितायें जो देवताओंके लिये हितकर हो, जिसका देवकार्यमें उपयोग हो सके ।

२—परमात्मन्! आप सबके मित्र—हितकारी होनेके कारण मित्र नामसे पुकारे जाते हैं, सबसे वर—श्रेष्ठ होनेसे आप वरुण हैं, सबको ग्रहण करनेवाले होनेके कारण अग्नि हैं। हम आपको इन 'मित्र', 'वरुण' एवं 'अग्नि' नामोंसे सम्बोधित करके प्रार्थना करते हैं कि यह सूक्त (आपके सुयशसे पूर्ण यह श्रीमद्भागवतरूप सुन्दर उक्ति) अत्यन्त प्रशस्त हो—सर्वोत्तम होनेके साथ ही इसकी ख्याति एवं प्रसार हो तथा यह सूक्त हमलोगोंके लिये ऐसा सुख, ऐसी शान्ति प्रदान करे, जिसमें दुःख या अशान्तिका मेल न हो, अर्थात् इससे नित्य सुख, नित्य शान्ति प्राप्त हो। हम चाहते हैं अविचल स्थिति, हम चाहते हैं शाश्वत प्रतिष्ठा, इसे इस सूक्तके द्वारा हम प्राप्त कर सकें। देवदेव! यह जो आपका अत्यन्त प्रकाशमान परम महान् समस्त लोकोंका आश्रयभूत 'सूर्य' नामक स्वरूप है, इसे हम सदा ही नमस्कार करते हैं ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पूजन-मन्त्र

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।१।।
श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । आवाहयामि ।
—इस मन्त्रसे भगवान्‌के नामस्वरूप भागवतको नमस्कार करके आवाहन करे ।

ॐ पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।२।।
श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । आसनं समर्पयामि ।
—इस मन्त्रसे आसन समर्पित करे ।

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।३।।
श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । पाद्यं समर्पयामि ।
—इस मन्त्रसे पैर पखारनेके लिये गंगाजल समर्पित करे ।

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ।।४।।
श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । अर्घ्यं समर्पयामि ।
—इस मन्त्रसे अर्घ्य (गन्ध-पुष्पादिसहित गंगाजल) निवेदित करे ।

ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ।।५।।
श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । आचमनं समर्पयामि ।
—इस मन्त्रसे आचमनके लिये गंगाजल अर्पित करे ।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ।।६।।
श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । स्नानं समर्पयामि ।
—इस मन्त्रसे स्नानके लिये गंगाजल अथवा शुद्ध जल अर्पित करे ।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तमादजायत ।।७।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । वस्त्रं समर्पयामि ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

—इस मन्त्रसे वस्त्र समर्पित करे ।

ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ।।८।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत अर्पित करे ।

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ।।९।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । गन्धं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे गन्ध-चन्दनादि चढ़ाये ।

ॐ यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।

मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते ।।१०।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । तुलसीदलं च पुष्पाणि समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे तुलसीदल एवं पुष्प चढ़ावे ।

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।११।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । धूपमाघ्रापयामि ।

—इस मन्त्रसे धूप सुँघाये ।

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।१२।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । दीपं दर्शयामि।

—इस मन्त्रसे घीका दीप जलाकर दिखाये। (उसके बाद हाथ धो ले।)

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षँशीर्ष्णोद्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।१३।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । नैवेद्यं निवेदयामि ।

—इस मन्त्रसे नैवेद्य अर्पित करे। नैवेद्यके बाद **"मध्ये पानीयं समर्पयामि"** एवम् **'उत्तरापोशनं समर्पयामि'** कहकर तीन-तीन बार जल छोड़े (प्रसाद) ।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।।१४।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । एलालवङ्गपूगीफलकर्पूरसहितं ताम्बूलं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे ताम्बूल समर्पण करे ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिःसप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुम् ।।१५।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । दक्षिणां समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे दक्षिणा समर्पित करे ।

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्
आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे ।
सर्वाणि भूतानि विचिन्त्य धीरः
नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते ।।१६।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । नमस्कारं समर्पयामि ।

ॐ धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार
शक्रः प्रविद्वान् प्ररिशश्चतस्रः ।
तमेवं विद्वानमृत इह भवति
नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ।।१७।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । प्रदक्षिणां समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे प्रदक्षिणा समर्पण करे ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा-
स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।१८।।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः । मन्त्रपुष्पं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे पुष्पांजलि समर्पित करे ।

१—सर्वान्तर्यामी परमात्मा इस समस्त ब्रह्माण्डकी भूमिको सब ओरसे व्याप्त करके स्थित हैं और इससे दस अंगुल ऊपर भी हैं। अर्थात् ब्रह्माण्डमें व्यापक होते हुए वे इससे परे भी हैं। उन परमात्माके मस्तक, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ और चरण आदि कर्मेन्द्रियाँ हजारों हैं—असंख्य हैं ।

२—यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, सब परमात्माका ही स्वरूप है, भूत और भविष्य जगत् भी परमात्मा ही है। इतना ही नहीं, वह परमात्मा मुक्तिका स्वामी है, तथापि ये जो अन्नसे उत्पन्न होनेवाले जीव हैं, उन सबका भी शासन—सबको नियमके अंदर रखनेवाला वह परमात्मा ही है ।

३—भूत, भविष्य और वर्तमान कालसे सम्बन्ध रखनेवाला जितना भी जगत् है—यह

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सब इस पुरुषकी महिमा है, इस परमात्माका विभूति-विस्तार है। उसका पारमार्थिक स्वरूप इतना ही नहीं है, वह पुरुष इस ब्रह्माण्डमय विराट्स्वरूपसे भी बहुत बड़ा है। यह सारा विश्व (ये तीनों लोक) तो उसके एक पादमें है, उसकी एक चौथाईमें समाप्त हो जाते हैं। अभी उसके तीन पाद और शेष हैं। यह त्रिपादस्वरूप अमृत है—अविनाशी है और परम प्रकाशमय द्युलोक अर्थात् अपने स्वरूपमें ही स्थित है ।

४—यह त्रिपाद पुरुष ऊपर उठा हुआ है अर्थात् वह परमात्मा अज्ञानके कार्यभूत इस संसारसे पृथक् तथा यहाँके गुण-दोषोंसे अछूता रहकर ऊँची स्थितिमें विराजमान है। उसका एक अंशमात्र मायाके सम्पर्कमें आकर यहाँ जगत्के रूपमें उत्पन्न हुआ, फिर वह मायावश जड-चेतनमयी नाना प्रकारकी सृष्टिके रूपमें स्वयं ही फैलकर सब ओर व्याप्त हो गया ।

५—उस आदिपुरुष परमात्मासे विराट्की उत्पत्ति हुई—यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। इस ब्रह्माण्डके ऊपर इसका अभिमानी एक पुरुष प्रकट हुआ। तात्पर्य यह कि परमात्माने अपनी मायासे विराट् ब्रह्माण्डकी रचना कर स्वयं ही उसमें जीवरूपसे प्रवेश किया। वे ही जीव ब्रह्माण्डका अभिमानी देवता (हिरण्यगर्भ) हुआ। इस प्रकार उत्पन्न होकर वह विराट् पुरुष पुनः देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि अनेकों रूपोंमें प्रकट हुआ। इसके बाद उसने भूमिको उत्पन्न किया, फिर जीवोंके शरीरोंकी रचना की ।

६—जिसमें सब कुछ हवन किया गया, उस पुरुषरूप यज्ञसे दही-घी आदि सामग्री उत्पन्न हुई। पुरुषने वनमें उत्पन्न होनेवाले हिरन आदि और गाँवोंमें होनेवाले गाय, घोड़े आदि, वायु-देवता-सम्बधी प्रसिद्ध पशुओंको भी उत्पन्न किया ।

७—जिसमें सब कुछ हवन किया गया है उस यज्ञपुरुषसे ऋग्वेद और सामवेद प्रकट हुए, उसीसे गायत्री आदि छन्दोंकी उत्पत्ति हुई तथा उसीसे यजुर्वेदका भी प्रादुर्भाव हुआ ।

८—उस यज्ञपुरुषसे घोड़े उत्पन्न हुए, इनके अतिरिक्त भी जो नीचे-ऊपर दोनों ओर दाँत रखनेवाले खच्चर, गदहे आदि प्राणी हैं, ये भी उत्पन्न हुए। उसीसे गौएँ उत्पन्न हुईं और उसीसे भेड़ों तथा बकरोंकी उत्पत्ति हुई ।

९—सबसे पहले उत्पन्न हुआ वह पुरुष ही उस समय यज्ञका साधन था, देवताओंने उसे संकल्पद्वारा यूपमें बँधा हुआ पशु माना और उस मानसिक यज्ञमें उस संकल्पित पशुका भावनाद्वारा ही प्रोक्षण आदि संस्कार भी किया। इस प्रकार संस्कार किये हुए उस पुरुषरूपी पशुके द्वारा देवताओं, साध्यों और ऋषियोंने उस मानसिक यज्ञको पूर्ण किया ।

१०—जब प्राणमय देवताओंने उस यज्ञपुरुष (प्रजापति)-को प्रकट किया, उस समय उसके अवयवोंके रूपमें कितने विभाग किये। इस पुरुषका मुख क्या था, दोनों बाहें क्या थीं। दोनों जाँघें और दोनों पैर कौन थे ।

११—ब्राह्मण इसका मुख था अर्थात् मुखसे ब्राह्मणकी उत्पत्ति हुई। दोनों भुजाएँ क्षत्रिय जाति बनीं, अर्थात् उनसे क्षत्रियोंका प्राकट्य हुआ। इस पुरुषकी दोनों जंघाएँ वैश्य हुईं—जंघाओंसे वैश्य जातिकी उत्पत्ति हुई और दोनों पैरोंसे शूद्र जाति प्रकट हुई ।

१२—इसके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, नेत्रोंसे सूर्यकी उत्पत्ति हुई। श्रोत्र (कान)-से वायु

******ebook converter DEMO Watermarks*******

और प्राणकी उत्पत्ति हुई और मुखसे अग्निका प्रादुर्भाव हुआ।

१३—नाभिसे अन्तरिक्ष-लोककी उत्पत्ति हुई, मस्तकसे स्वर्गलोक प्रकट हुआ, पैरोंसे पृथिवी हुई और कानसे दिशाएँ प्रकट हुईं। इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकोंकी कल्पना की ।

१४—उस समय देवताओंने यज्ञ करना चाहा, परन्तु यज्ञकी कोई सामग्री उपलब्ध न हुई, तब उन्होंने पुरुषस्वरूपमें ही हविष्यकी भावना की। जब पुरुषरूप हविष्यसे ही देवताओंने यज्ञका विस्तार किया, उस समय उनके संकल्पानुसार वसन्त ऋतु घी हुई, ग्रीष्म ऋतुने समिधाका काम दिया और शरद्-ऋतुसे विशेष प्रकारके चरु-पुरोडाशादि हविष्यकी आवश्यकता पूर्ण हुई ।

१५—प्रजापतिके प्राणरूपी देवताओंने जब मानसिक यज्ञका अनुष्ठान करते समय संकल्पद्वारा पुरुषरूपी पशुका बन्धन किया था, उस समय सात समुद्र इस यज्ञकी परिधि थे और इक्कीस प्रकारके छन्दोंकी समिधा हुई। (गायत्री आदि ७, श्रुति जगती आदि ७ और कृति आदि ७—ये ही २१ छन्द हैं।)

१६—धीर पुरुष समग्र रूपोंको परमात्माके ही स्वरूप विचारकर, उनके भिन्न-भिन्न नाम रखकर जिस एक तत्त्वका ही उच्चारण और अभिवन्दन करता है, उसको ज्ञानी पुरुष इस प्रकार जानते हैं—अविद्यारूपी अन्धकारसे परे आदित्यके समान स्वप्रकाश इस महान् पुरुषको मैं अपने 'आत्मा' रूपसे जानता हूँ ।

१७—ब्रह्माजीने पूर्वकालमें जिसका स्तवन किया था, इन्द्रने सब दिशा-विदिशाओंमें जिसे व्याप्त जाना था, उस परमात्माको जो इस प्रकार जानता है, वह इस जीवनमें ही अमृत (मुक्त) हो जाता है। मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्तिके लिये इसके सिवा दूसरा मार्ग नहीं है ।

१८—देवताओंने पूर्वोक्त मानसिक यज्ञद्वारा यज्ञस्वरूप पुरुष-प्रजापतिकी आराधना की। इस आराधनासे समस्त जगत्को धारण करनेवाले वे पृथ्वी आदि मुख्य भूत प्रकट हुए। इस यज्ञकी उपासना करनेवाले महात्मालोग उस स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, जहाँ प्राचीन साध्यदेवता निवास करते हैं।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

प्रार्थना

वन्दे श्रीकृष्णदेवं मुरनरकभिदं वेदवेदान्तवेद्यं
लोके भक्तिप्रसिद्धं यदुकुलजलधौ प्रादुरासीदपारे ।
यस्यासीद् रूपमेवं त्रिभुवनतरणे भक्तिवच्च स्वतन्त्रं
शास्त्रं रूपं च लोके प्रकटयति मुदा यः स नो भूतिहेतुः ।।

जो इस जगत्‌में भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं, जिनका तत्त्व वेद और वेदान्तके द्वारा ही जाननेयोग्य है, जो अपार यादवरूपी समुद्रमें प्रकट हुए थे, मुर और नरकासुरको मारनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं सादर सप्रेम प्रणाम करता हूँ। जो इस संसारमें अपने स्वरूप तथा शास्त्रको प्रसन्नतापूर्वक प्रकट किया करते हैं तथा सचमुच ही जिनका स्वरूप इस त्रिभुवनको तारनेके लिये भक्तिके समान स्वतन्त्र नौकारूप है, वे भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंका कल्याण करें ।

नमः कृष्णपदाब्जाय भक्ताभीष्टप्रदायिने ।
आरक्तं रोचयेच्छश्वन्मामके हृदयाम्बुजे ।।

कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए श्रीकृष्णका जो चरणकमल मेरे हृदयकमलमें सदा दिव्य प्रकाश फैलाता रहता है और भक्तजनोंकी मनोवांछित कामनाएँ पूर्ण किया करता है, उसे मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ।

श्रीभागवतरूपं तत् पूजयेद् भक्तिपूर्वकम् ।
अर्चकायाखिलान् कामान् प्रयच्छति न संशयः ।।

श्रीमद्‌भागवत भगवान्‌का स्वरूप है, इसका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। यह पूजन करनेवालेकी सारी कामनाएँ पूर्ण करता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

विनियोग

दाहिने हाथकी अनामिकामें कुशकी पवित्री पहन ले। फिर हाथमें जल लेकर नीचे लिखे वाक्यको पढ़कर भूमिपर गिरा दे—

ॐ अस्य श्रीमद्‌भागवताख्यस्तोत्रमन्त्रस्य नारद ऋषिः । बृहती छन्दः । श्रीकृष्णः परमात्मा देवता । ब्रह्म बीजम् । भक्तिः शक्तिः । ज्ञानवैराग्ये कीलकम् । मम श्रीमद्‌भगवत्प्रसादसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः ।

'इस श्रीमद्‌भागवतस्तोत्र-मन्त्रके देवर्षि नारदजी ऋषि हैं, बृहती छन्द है, परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र देवता हैं, ब्रह्म बीज है, भक्ति शक्ति है, ज्ञान और वैराग्य कीलक है। अपने ऊपर भगवान्‌की प्रसन्नता हो, उनकी कृपा बराबर बनी रहे—इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये पाठ करनेमें इस भागवतका विनियोग (उपयोग) किया जाता है।'

******ebook converter DEMO Watermarks*******

न्यास

विनियोगमें आये हुए ऋषि आदिका तथा प्रधान देवताके मन्त्राक्षरोंका अपने शरीरके विभिन्न अंगोंमें जो स्थापन किया जाता है, उसे 'न्यास' कहते हैं। मन्त्रका एक-एक अक्षर चिन्मय होता है, उसे मूर्तिमान् देवताके रूपमें देखना चाहिये। इन अक्षरोंके स्थापनसे साधव स्वयं मन्त्रमय हो जाता है, उसके हृदयमें दिव्य चेतनाका प्रकाश फैलता है, मन्त्रके देवता उसके स्वरूप होकर उसकी सर्वथा रक्षा करते हैं। इस प्रकार वह **'देवो भूत्वा देवं यजेत्'** इस श्रुतिके अनुसार स्वयं देवस्वरूप होकर देवताओंका पूजन करता है। ऋषि आदिका न्यास सिर आदि कतिपय अंगोंमें होता है। मन्त्रपदों अथवा अक्षरोंका न्यास प्रायः हाथकी अँगुलियों और हृदयादि अंगोंमें होता है। इन्हें क्रमशः 'करन्यास' और 'अंगन्यास' कहते हैं। किन्हीं-किन्हीं मन्त्रोंका न्यास सर्वांगमें होता है। न्याससे बाहर-भीतरकी शुद्धि, दिव्यबलकी प्राप्ति और साधनाकी निर्विघ्न पूर्ति होती है। यहाँ क्रमशः ऋष्यादिन्यास, करन्यास और अंगन्यास दिये जा रहे हैं—

ऋष्यादिन्यास

नारदर्षये नमः शिरसि ।।१।। बृहतीच्छन्दसे नमो मुखे ।।२।। श्रीकृष्णपरमात्मदेवतायै नमो हृदये ।।३।। ब्रह्मबीजाय नमो गुह्ये ।।४।। भक्तिशक्तये नमः पादयोः ।।५।। ज्ञानवैराग्यकीलकाभ्यां नमो नाभौ ।।६।। विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।।७।।

ऊपर न्यासके सात वाक्य उद्धृत किये गये हैं। इनमें पहला वाक्य पढ़कर दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे सिरका स्पर्श करे, दूसरा वाक्य पढ़कर मुखका, तीसरे वाक्यसे हृदयका, चौथेसे गुदाका, पाँचवेंसे दोनों पैरोंका, छठेसे नाभिका और सातवें वाक्यसे सम्पूर्ण अंगोंका स्पर्श करना चाहिये ।

करन्यास

इसमें **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** इस द्वादशाक्षरमन्त्रके एक-एक अक्षरको प्रणवसे सम्पुटित करके दोनों हाथोंकी अंगुलियोंमें स्थापित करना है। मन्त्र नीचे दिये जा रहे हैं—

'ॐ ॐ ॐ नमो दक्षिणतर्जन्याम्' ऐसा उच्चारण करके दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी तर्जनीका स्पर्श करे। **'ॐ नं ॐ नमो दक्षिणमध्यमायाम्'**—यह उच्चारण कर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी मध्यमा अंगुलिका स्पर्श करे। **'ॐ मों ॐ नमो दक्षिणानामिकायाम्'**—यह पढ़कर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी अनामिका अंगुलिका स्पर्श करे। **'ॐ भं ॐ नमो दक्षिणकनिष्ठिकायाम्'**—इससे दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका अंगुलिका स्पर्श करे। **'ॐ गं ॐ नमो वामकनिष्ठिकायाम्'**—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी कनिष्ठिका अंगुलिका स्पर्श करे। **'ॐ वं ॐ नमो वामानामिकायाम्'**—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अनामिका अंगुलिका स्पर्श करे। **'ॐ तें ॐ नमो वाममध्यमायाम्'**—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी मध्यमा अंगुलिका स्पर्श करे। **'ॐ वां ॐ नमो वामतर्जन्याम्'**—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी तर्जनी अंगुलिका स्पर्श करे। **'ॐ सुं ॐ नमः ॐ दें ॐ नमो दक्षिणाङ्गुष्ठपर्वणोः'**—इसको पढ़कर दाहिने हाथकी तर्जनी अंगुलिसे दाहिने हाथके अँगूठेकी दोनों गाँठोंका स्पर्श करे। **'ॐ वां ॐ नमः ॐ यं ॐ नमो वामाङ्गुष्ठपर्वणोः'**—इसका उच्चारण करके बायें हाथकी तर्जनी अंगुलिसे बायें हाथके अँगूठेकी दोनों गाँठोंका स्पर्श करे ।

अङ्गन्यास

यहाँ द्वादशाक्षरमन्त्रके पदोंका हृदयादि अंगोंमें न्यास करना है—

'ॐ नमो नमो हृदयाय नमः'—इसको पढ़कर दाहिने हाथकी पाँचों अंगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे ।

'ॐ भगवते नमः शिरसे स्वाहा'—इसका उच्चारण करके दाहिने हाथकी सभी अंगुलियोंसे सिरका स्पर्श करे। **'ॐ वासुदेवाय नमः शिखायै वषट्'**—इसके द्वारा दाहिने हाथसे शिखाका स्पर्श करे। **'ॐ नमो नमः कवचाय हुम्'**—इसको पढ़कर दायें हाथकी अंगुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अंगुलियोंसे दायें कंधेका स्पर्श करे। **'ॐ भगवते नमः नेत्रत्रयाय वौषट्'**—इसको पढ़कर दाहिने हाथकी अंगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रोंका तथा ललाटके मध्यभागमें गुप्तरूपसे स्थित तृतीय नेत्र (ज्ञानचक्षु)-का स्पर्श करे। **'ॐ वासुदेवाय नमः अस्त्राय फट्'**—इसका उच्चारण करके दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे उलटा अर्थात् बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले जाये और तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये ।

अंगन्यासमें आये हुए **'स्वाहा'**, **'वषट्'**, **'हुम्'**, **'वौषट्'** और **'फट्'**—ये पाँच शब्द देवताओंके उद्देश्यसे किये जानेवाले हवनसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। यहाँ इनका आत्मशुद्धिके लिये ही उच्चारण किया जाता है ।

ध्यान

इस प्रकार न्यास करके बाहर-भीतरसे शुद्ध हो मनको सब ओरसे हटाकर एकाग्रभावसे भगवान्‌का ध्यान करे—

किरीटकेयूरमहार्हनिष्कै-
मर्ण्युत्तमालङ्कृतसर्वगात्रम् ।
पीताम्बरं काञ्चनचित्रनद्ध-
मालाधरं केशवमभ्युपैमि ।।

'जिनके मस्तकपर किरीट, बाहुओंमें भुजबन्ध और गलेमें बहुमूल्य हार शोभा पा रहे हैं, मणियोंके सुन्दर गहनोंसे सारे अंग सुशोभित हो रहे हैं और शरीरपर पीताम्बर फहरा रहा है—

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सोनेके तारद्वारा विचित्र रीतिसे बँधी हुई वनमाला धारण किये, उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ।'

******ebook converter DEMO Watermarks*******

श्रीमद्भागवत-सप्ताहकी आवश्यक विधि

पुराणोंमें श्रीमद्भागवतके सप्ताहपारायण तथा श्रवणकी बड़ी भारी महिमा बतलायी गयी है, अतः यहाँ श्रीमद्भागवत-प्रेमियोंके लिये संक्षेपसे सप्ताह-यज्ञकी आवश्यक विधिका दिग्दर्शन कराया जाता है ।

मुहूर्तविचार—पहले विद्वान् ज्योतिषीको बुलाकर उनके द्वारा कथा-प्रारम्भके लिये शुभ मुहूर्तका विचार करा लेना चाहिये। नक्षत्रोंमें हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा तथा पूर्वाभाद्रपदा उत्तम हैं। तिथियोंमें द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी तथा द्वादशीको इस कार्यके लिये श्रेष्ठ बतलाया गया है। सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र—ये वार सर्वोत्तम हैं। तिथि, वार और नक्षत्रका विचार करनेके साथ ही यह भी देख लेना चाहिये कि शुक्र या गुरु अस्त, बाल अथवा वृद्ध तो नहीं हैं। कथारम्भका मुहूर्त भद्रादि दोषोंसे रहित होना चाहिये। उस दिन पृथ्वी जागती हो, वक्ता और श्रोताका चन्द्रबल ठीक हो। लग्नमें शुभ ग्रहोंका योग अथवा उनकी दृष्टि हो। शुभ ग्रहोंकी स्थिति केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो उत्तम है। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और मार्गशीर्ष (अगहन)—ये मास कथा आरम्भ करनेके लिये श्रेष्ठ बतलाये गये हैं। किन्हीं विद्वानोंके मतसे चैत्र और पौषको छोड़कर सभी मास ग्राह्य हैं ।

कथाके लिये स्थान—सप्ताहकथाके लिये उत्तम एवं पवित्र स्थानकी व्यवस्था हो। जहाँ अधिक लोग सुविधासे बैठ सकें, ऐसे स्थानमें कथाका आयोजन उत्तम है। नदीका तट, उपवन (बगीचा), देवमन्दिर अथवा अपना निवास-स्थान—ये सभी कथाके लिये उपयोगी स्थल हैं, स्थान लिपा-पुता स्वच्छ हो। नीचेकी भूमि गोबर और पीली मिट्टीसे लीपी गयी हो। अथवा पक्का आँगन हो तो उसे धो दिया गया हो। उसपर पवित्र एवं सुन्दर आसन बिछे हों। ऊपरसे चँदोवा तना हो। चँदोवा आदि किसी भी कार्यमें नीले रंगके वस्त्रका उपयोग न किया जाय। यजमानके हाथसे सोलह हाथ लम्बा और उतना ही चौड़ा कथा-मण्डप बने। उसे केलेके खम्भोंसे सजाया जाय। हरे बाँसके खंभे लगाये जायँ। नूतन पल्लवोंकी बंदनवारों, पुष्पमालाओं और ध्वजा-पताकाओंसे मण्डपको भलीभाँति सुसज्जित किया जाय। उसपर ऊपरसे सुन्दर चँदोवा तान दिया जाय। उस मण्डपके दक्षिण-पश्चिम भागमें कथावाचक और मुख्य श्रोताके बैठनेके लिये स्थान हो। शेष भागमें देवताओं और कलश आदिका स्थापन किया जाय। कथावाचकके बैठनेके लिये ऊँची चौकी रखी जाय। उसपर शुद्ध आसन (नया गद्दा) बिछाया जाय। पीछे तथा पार्श्वभागमें मसनद एवं तकिये रख दिये जायँ। श्रीमद्भागवतको स्थापित करनेके लिये एक छोटी-सी चौकी या आधारपीठ बनवाकर उसपर पवित्र वस्त्र बिछा दिया जाय। उसपर आगे बतायी जानेवाली विधिके अनुसार अष्टदल कमल बनाकर पूजन करके श्रीमद्भागवतकी पुस्तक स्थापित की जाय।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

कथावाचक विद्वान्, सर्वशास्त्रकुशल, दृष्टान्त देकर श्रोताओंको समझानेमें समर्थ, सदाचारी एवं सद्गुणसम्पन्न ब्राह्मण हों। उनमें सुशीलता, कुलीनता, गम्भीरता तथा श्रीकृष्णभक्तिका होना भी परमावश्यक है। वक्ताको असूया तथा परनिन्दा आदि दोषसे सर्वथा रहित निःस्पृह होना चाहिये। श्रीमद्भागवतकी पुस्तकको रेशमी वस्त्रसे आच्छादित करके छत्र-चँवरके साथ डोलीमें अथवा अपने मस्तकपर रखकर कथामण्डपमें लाना और स्थापित करना चाहिये। उस समय गीत-वाद्य आदिके द्वारा उत्सव मनाना चाहिये। कथामण्डपसे अनुपयोगी वस्तुएँ हटा देनी चाहिये। इधर-उधर दीवालोंमें भगवान् और उनकी लीलाओंके स्मारक चित्र लगा देने चाहिये। वक्ताका मुँह यदि उत्तरकी ओर हो तो मुख्य श्रोताका मुख पूर्वकी ओर होना चाहिये। यदि वक्ता पूर्वाभिमुख हो तो श्रोताको उत्तराभिमुख होना चाहिये ।

सप्ताह-कथा एक महान् यज्ञ है। इसे सुसम्पन्न करनेके लिये अन्य सुहृद्-सम्बन्धियोंको भी सहायक बना लेना चाहिये। अर्थकी भी समुचित व्यवस्था पहलेसे ही कर लेना उत्तम है। पाँच-सात दिन पहलेसे ही दूर-दूरतक कथाका समाचार भेज देना चाहिये और सबसे यह अनुरोध करना चाहिये कि वे स्वयं उपस्थित होकर सप्ताह-कथा श्रवण करें। अधिक समय न दे सकें तो भी एक दिन अवश्य पधारकर कथाश्रवणका लाभ लें। दूरसे आये हुए अतिथियोंके ठहरने और भोजनादिकी व्यवस्था भी करनी चाहिये। वक्ताको व्रत ग्रहण करनेके लिये एक दिन पहले ही क्षौर करा लेना चाहिये। सप्ताह-प्रारम्भ होनेके एक दिन पूर्व ही देवस्थापन, पूजनादि कर लेना उत्तम है। वक्ता प्रतिदिन सूर्योदयसे पूर्व ही स्नानादि करके संक्षेपसे सन्ध्या-वन्दनादिका नियम पूरा कर ले और कथामें कोई विघ्न न आये, इसके लिये नित्यप्रति गणेशजीका पूजन कर लिया करे ।

सप्ताहके प्रथम दिन यजमान स्नान आदिसे शुद्ध हो नित्यकर्म करके आभ्युदयिक श्राद्ध करे। आभ्युदयिक श्राद्ध और पहले भी किया जा सकता है। यज्ञमें इक्कीस दिन पहले भी आभ्युदयिक श्राद्ध करनेका विधान है। उसके बाद गणेश, ब्रह्मा आदि देवताओंसहित नवग्रह, षोडशमातृका, सप्त चिरजीवी (अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य तथा परशुरामजी) एवं कलशकी स्थापना तथा पूजा करे। एक चौकीपर सर्वतोभद्र-मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें ताम्रकलश स्थापित करे। कलशके ऊपर भगवान् लक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। कलशके ही बगलमें भगवान् शालग्रामका सिंहासन विराजमान कर देना चाहिये। सर्वतोभद्र-मण्डलमें स्थित समस्त देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् भगवान् नर-नारायण, गुरु, वायु, सरस्वती, शेष, सनकादि कुमार, सांख्यायन, पराशर, बृहस्पति, मैत्रेय तथा उद्धवका भी आवाहन, स्थापन एवं पूजन करना चाहिये। फिर त्रय्यारुणि आदि छः पौराणिकोंका भी स्थापन-पूजन करके एक अलग पीठपर उसे सुन्दर वस्त्रसे आवृत करके, श्रीनारदजीकी स्थापना एवं अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर आधारपीठ, पुस्तक एवं व्यास (वक्ता आचार्य)-का भी यथाप्राप्त उपचारोंसे पूजन करना चाहिये। कथा

******ebook converter DEMO Watermarks*******

निर्विघ्न पूर्ण हो—इसके लिये गणेशमन्त्र, द्वादशाक्षरमन्त्र तथा गायत्री-मन्त्रका जप और विष्णुसहस्रनाम एवं गीताका पाठ करनेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार सात, पाँच या तीन ब्राह्मणोंका वरण करे। श्रीमद्भागवतका भी एक पाठ अलग ब्राह्मणद्वारा कराये। देवताओंकी स्थापना और पूजाके पहले स्वस्तिवाचनपूर्वक हाथमें पवित्री, अक्षत, फूल, जल और द्रव्य लेकर एक महासंकल्प कर लेना चाहिये। संकल्प इस प्रकार है—

ॐ तत्सदद्य श्रीमहाभगवतो विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते विष्णुप्रजापतिक्षेत्रे वैवस्वतमनुभोग्यैकसप्ततियुगचतुष्टयान्तर्गताष्टाविंशति-तमकलिप्रथमचरणे बौद्धावतारे अमुकसंवत्सरे अमुकायने अमुकर्तौ अमुकराशिस्थिते भगवति सवितरि अमुकामुकराशिस्थितेषु चान्येषु ग्रहेषु महामाङ्गल्यप्रदे मासानामुत्तमे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकमुहूर्तकरणादियुतायाम् अमुकतिथौ अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकशर्मा (वर्मा, गुप्तः) अहं पूर्वातीतानेकजन्मसंचिताखिलदुष्कृतनिवृत्तिपुरस्सरैहि-काध्यात्मिकादिविविधतापपापापनोदार्थं दशाश्वमेध-यज्ञजन्यसम्यगिष्टराजसूययज्ञसहस्रपुण्यसमपुण्यचन्द्रसूर्यग्रहणकालिकबहुब्राह्मणस सर्वरत्नोपशोभितमहीदानपुण्यप्राप्तये श्रीगोविन्द-चरणारविन्दयुगले निरन्तरमुत्तरोत्तरमेधमाननिस्सीम प्रेमोपलब्धये तदीयपरमानन्दमयगोलोकधाम्नि नित्यनिवासपूर्वकतत्परिचर्यारसास्वादनसौभाग्यसिद्धये च अमुकगोत्रामुकप्रवरामुकशर्मब्राह्मणवदना-रविन्दाच्छ्रीकृष्णवाङ्मयमूर्तीभूतं श्रीमद्भागवतमष्टादशपुराणप्रकृतिभूतमनेकश्रोतृश्रवणपूर्वकममुकदिनादारभ्यामुकां सप्ताहयज्ञरूपतया श्रोष्यामि* प्राप्स्यमानेऽस्मिन् सप्ताहयज्ञे विघ्नपूगनिवारणपूर्वकं यज्ञरक्षाकरणार्थं गणपतिब्रह्मादिसहितनवग्रह-षोडशमातृकासप्तचिरजीविपुरुषसर्वतोभद्रमण्डलस्थ-देवकलशाद्यर्चनपुरस्सरं श्रीलक्ष्मीनारायण-प्रतिमाशालग्रामनरनारायणगुरुवायुसरस्वतीशेषसनत्कुमार-सांख्यायनपराशरबृहस्पतिमैत्रेयोद्धवत्रय्यारुणिकश्यप-रामशिष्याकृतव्रणवैशम्पायनहारीतनारदपूजनमाधारपीठ-पुस्तकव्यासपूजनं च यथालब्धोपचारैः करिष्ये ।

संकल्पके पश्चात् पूर्वोक्त देवताओंके चित्रपटमें अथवा अक्षत-पुंजपर उनका आवाहन-स्थापन करके वैदिक-पूजा-पद्धतिके अनुसार उन सबकी पूजा करनी चाहिये। सप्तचिरजीविपुरुषों तथा सनत्कुमार आदिका पूजन नाम-मन्त्रद्वारा करना चाहिये ।

कथामण्डपमें चारों दिशाओं या कोणोंमें एक-एक कलश और मध्यभागमें एक कलश—इस प्रकार पाँच कलश स्थापित करने चाहिये। चारों ओरके चार कलशोंमेंसे पूर्वके कलशपर ऋग्वेदकी, दक्षिण कलशपर यजुर्वेदकी, पश्चिम कलशपर सामवेदकी और उत्तर कलशपर अथर्ववेदकी स्थापना एवं पूजा करनी चाहिये। कोई-कोई मध्यमें

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सर्वतोभद्र-मण्डलके मध्यभागमें एक ही ताम्रकलश स्थापित करके उसीके चारों दिशाओंमें सर्वतोभद्रमण्डलकी चौकीके चारों ओर चारों वेदोंकी स्थापनाका विधान करते हैं। इसी कलशके ऊपर भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी प्रतिमा स्थापित करे और षोडशोपचार-विधिसे उसकी पूजा करे। देवपूजाका क्रम प्रारम्भसे इस प्रकार रखना चाहिये—

पहले रक्षादीप प्रज्वलित करे। एक पात्रमें घी भरकर रूईकी फूलबत्ती जलाये और उसे सुरक्षित स्थानपर अक्षतके ऊपर स्थापित कर दे। वह वायु आदिके झोंकेसे बुझ न जाय, इसकी सावधानीके साथ व्यवस्था करे। फिर स्वस्तिवाचनपूर्वक मंगलपाठ एवं सर्वदेव-नमस्कार करके पूर्वोक्त महासंकल्प पढ़े। उसके बाद एक पात्रमें चावल भरकर उसपर मोलीमें लपेटी हुई एक सुपारी रख दे और उसीमें गणेशजीका आवाहन करे—**'ॐ भूर्भुवः स्वः गणपते इहागच्छ इह तिष्ठ मम पूजां गृहाण ।'** इस प्रकार आवाहन करके **'गणानां त्वा०'** इत्यादि मन्त्रोंको पढ़े। फिर **'गजाननं भूत०'** इत्यादि श्लोकोंको पढ़ते हुए तदनुरूप ध्यान करे। **'ॐ मनो जूतिः०'** इत्यादि मन्त्रसे प्रतिष्ठा करके विभिन्न उपचारसमर्पणसम्बन्धी मन्त्र पढ़ते हुए अथवा **'श्रीगणपतये नमः'** इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए गणेशजीको क्रमशः पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, पुनराचमनीय, पंचामृतस्नान, शुद्धोदकस्नान, वस्त्र, रक्षासूत्र, यज्ञोपवीत, चन्दन, रोली, सिन्दूर, अबीर, गुलाल, अक्षत, फूल, माला, दूर्वादल, आभूषण, सुगन्ध (इत्रका फाहा), धूप, दीप, नैवेद्य (मिष्टान्न एवं गुड़, मेवा आदि) तथा ऋतुफल अर्पण करे। गंगाजलसे आचमन कराकर मुखशुद्धिके लिये सुपारी, लवंग, इलायची और कर्पूरसहित ताम्बूल अर्पण करे। अन्तमें दक्षिणा-द्रव्य एवं विशेषार्घ्य, प्रदक्षिणा एवं साष्टांग प्रणाम निवेदन करके प्रार्थना करे ।

ॐ लम्बोदरं परमसुन्दरमेकदन्तं
रक्ताम्बरं त्रिनयनं परमं पवित्रम् ।
उद्यद्दिवाकरकरोज्ज्वलकायकान्तं
विघ्नेश्वरं सकलविघ्नहरं नमामि ।।
त्वां देव विघ्नदलनेति च सुन्दरेति
भक्तप्रियेति सुखदेति फलप्रदेति ।
विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति
तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव ।।
—'अनया पूजया गणपतिः प्रीयतां न मम ।'

यों कहकर गणेशजीको पुष्पांजलि दे ।

इसके बाद **'ॐ भूर्भुवः स्वः भो ब्रह्मविष्णुशिवसहितसूर्यादिनवग्रहा इहागच्छतेह तिष्ठत मम पूजां गृह्णीत'** इस प्रकार या वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक ब्रह्मादिसहित नवग्रहोंका आवाहन करे। फिर पूर्ववत् उपचार-मन्त्रोंसे अथवा ॐ ब्रह्मणे

******ebook converter DEMO Watermarks*******

नमः, **ॐ विष्णवे नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ सूर्याय नमः, ॐ चन्द्रमसे नमः, ॐ भौमाय नमः, ॐ बुधाय नमः, ॐ बृहस्पतये नमः, ॐ भार्गवाय नमः, ॐ शनैश्चराय नमः, ॐ राहवे नमः, ॐ केतवे नमः**—इन नाम-मन्त्रोंसे पाद्य, अर्घ्य आदि सब उपचार समर्पण करके निम्नांकित मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करे—

ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः
सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ।।

—'अनया पूजया ब्रह्मविष्णुशिवसहित सूर्यादिनवग्रहाः प्रीयन्तां न मम ।' यों कहकर पुष्पांजलि चढ़ाये ।

तत्पश्चात् **'ॐ भूर्भुवः स्वः भो गौर्यादिषोडशमातर इहागच्छत मम पूजां गृह्णीत'** इस प्रकार आवाहन करके नाम-मन्त्रोंद्वारा पाद्य-अर्घ्य आदि निवेदन करे—**१ ॐ गौर्यै नमः । २ ॐ पद्मायै नमः । ३ ॐ शच्यै नमः । ४ ॐ मेधायै नमः । ५ ॐ सावित्र्यै नमः । ६ ॐ विजयायै नमः । ७ ॐ जयायै नमः । ८ ॐ देवसेनायै नमः । ९ ॐ स्वधायै नमः । १० ॐ स्वाहायै नमः । ११ ॐ मातृभ्यो नमः । १२ ॐ लोकमातृभ्यो नमः । १३ ॐ हृष्ट्यै नमः । १४ ॐ पुष्ट्यै नमः । १५ ॐ तुष्ट्यै नमः । १६ ॐ आत्मकुलदेवतायै नमः ।।** पूजनके पश्चात् प्रार्थना करे—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ।।
हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवता ।
इत्येता मातरः सर्वा वृद्धिं कुर्वन्तु मे सदा ।।

—'अनया पूजया गौर्यादिषोडशमातरः प्रीयन्तां न मम ।' इस प्रकार समर्पणपूर्वक पुष्पांजलि निवेदन करे ।

तदनन्तर **'भो अश्वत्थामादिसप्तचिरजीविन इहागत्य मम पूजां गृह्णीत'** इस प्रकार आवाहन करके पूर्ववत् नाममन्त्रसे पूजा करे—

१ ॐ अश्वत्थाम्ने नमः । २ ॐ बलये नमः । ३ ॐ व्यासाय नमः । ४ ॐ हनुमते नमः । ५ ॐ विभीषणाय नमः । ६ ॐ कृपाय नमः । ७ ॐ परशुरामाय नमः ।

पूजाके पश्चात् हाथमें फूल लेकर निम्नांकित रूपसे प्रार्थना करे—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः ।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ।।
यजमानगृहे नित्यं सुखदाः सिद्धिदाः सदा ।।

—'अनया पूजया अश्वत्थामादिसप्तचिरजीविनः प्रीयन्तां न मम ।' यह

******ebook converter DEMO Watermarks*******

कहकर फूल चढ़ा दे ।

इसके अनन्तर सर्वतोभद्रमण्डलस्थ देवताओंका आवाहन-पूजन (देवपूजापद्धतियोंके अनुसार) करके मध्यमें ताम्रकलश स्थापित करे। उसकी संक्षिप्त विधि यह है—**'ॐ भूरसि०'** इत्यादि मन्त्रसे भूमिकी प्रार्थना करके हाथसे (कलशके नीचेकी) भूमिका स्पर्श करे। उस समय **'ॐ मही द्यौः पृथ्वी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पितृतान्नौ वरीमभिः ।।'** इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये। उसी भूमिपर कुंकुम आदिसे अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर **'ॐ धान्यमसि०'** इत्यादि मन्त्रसे सप्तधान्य स्थापित करे। फिर उस सप्तधान्यपर कलश स्थापित करे; उस समय **'ॐ आजिघ्र कलश०'** इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। इसके बाद **'ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि०'** इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए कलशको शुद्ध जलसे भर दे। तत्पश्चात् **'ॐ स्थिरो भव०'** इत्यादि मन्त्र पढ़कर कलशको ऐसा सुस्थिर कर दे, जिससे वह हिलने-डुलने या गिरने लायक न रह जाय। फिर उस कलशके पूर्व भागमें **'ॐ अग्निमीळे०'** इत्यादि मन्त्रसे ऋग्वेदका, दक्षिण भागमें **'ॐ इषे त्वोर्जेत्वा०'** इत्यादि मन्त्रसे यजुर्वेदका, पश्चिम भागमें **'ॐ अग्न आयाहि वीतये०'** इत्यादि मन्त्रसे सामवेदका तथा **'ॐ शन्नो देवी०'** इत्यादि मन्त्रसे उत्तर भागमें अथर्ववेदका स्थापन करे। पाँच कलश हों तो पृथक्-पृथक् कलशोंपर वेदोंकी स्थापना करनी चाहिये। इसके अनन्तर आम, बड़, पीपल, पाकर और गूलरके पल्लवोंको कलशमें डाले और **'ॐ अश्वत्थे०'** इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। फिर **'ॐ काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती०'** इत्यादि मन्त्रसे कलशमें दूर्वादल छोड़े, **'ॐ पवित्रे स्थो०'** इत्यादि मन्त्रसे कुशा, **'ॐ याः फलिनी०'** इत्यादि मन्त्रसे पूगीफल, **'ॐ हिरण्यगर्भः०'** इत्यादि मन्त्रसे दक्षिणा, **'ॐ परिवाजपतिः०'** से पंचरत्न, **'ॐ या ओषधीः०'** इत्यादिसे सर्वौषधी, **'ॐ गन्धद्वारां०'** इत्यादिसे गन्ध और **'ॐ अक्षन्नमीमदन्त०'** इत्यादिसे अक्षतको कलशमें छोड़े। तदनन्तर **'ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च०'** इत्यादिसे फूल छोड़े। **'ॐ धूरसि०'** इत्यादिसे धूपकी आहुति अग्निमें छोड़े। **'ॐ अग्निर्ज्योतिः०'** इत्यादि मन्त्रसे अलग दीप जलाकर रख दे। उसके बाद कलशमें तीर्थोदक डाले और **'ॐ पञ्चनद्यः०'** इत्यादि मन्त्रको पढ़े। फिर **'ॐ उपह्वरे०'** इत्यादि मन्त्रसे नदी-संगमका जल डाले। तत्पश्चात् **'ॐ समुद्राय त्वा०'** इत्यादि मन्त्रसे समुद्रका जल कलशमें डाले। फिर **'ॐ स्योना पृथिवि०'** इत्यादिसे सप्तमृत्तिका डालकर **'ॐ वसोः पवित्रमसि०'** इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए लाल वस्त्रसे कलशको आच्छादित करे। तदनन्तर **'ॐ पूर्णादर्वि०'** इत्यादि मन्त्रसे एक पूर्णपात्र (चावलसे भरा हुआ काँसी या ताँबेका पात्र) कलशके ऊपर रखे। इसके बाद **'ॐ श्रीश्च ते०'** इत्यादि मन्त्रसे उस पूर्णपात्रपर लाल कपड़ेमें लपेटा हुआ श्रीफल (गरीका गोला या नारियल) रखे। फिर हाथमें अक्षत ले **'ॐ मनो जूतिः०'** इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए कलशपर अक्षत छोड़े और इस प्रकार कलशकी प्रतिष्ठा सम्पन्न करे। तदनन्तर **'सर्वे समुद्राः सरितः०'** इत्यादि श्लोकोंका पाठ करते हुए कलशमें तीर्थोंका आवाहन करे। फिर गन्ध आदि उपचारोंसे तीर्थोंका पूजन करके

******ebook converter DEMO Watermarks*******

कलशकी प्रार्थना करे—

देवदानवसंवादे मथ्यमाने जलार्णवे ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ।।
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।।
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ।।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ।
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ।।
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ।
ब्रह्मणैर्निर्मितस्त्वं हि मन्त्रैरेवामृतोद्भवैः ।।
प्रार्थयामि च कुम्भ त्वां वाञ्छितार्थं ददस्व मे ।
पुरा हि सृष्टश्च पितामहेन
महोत्सवानां प्रथमो वरिष्ठः ।
दूर्वाग्रसाश्वत्थसुपल्लवैर्युक्
करोतु शान्तिं कलशः सुवासाः ।।

इस प्रार्थनाके अनन्तर कलशमें **'ॐ गणानां त्वा०'** इत्यादिसे गणेशका तथा **'ॐ तत्त्वायामि'** इत्यादि मन्त्रसे वरुणदेवताका आवाहन करके इनका षोडशोपचारसे पूजन करे। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा, प्रदक्षिणा और पुष्पांजलि—ये ही षोडश उपचार कहे गये हैं। पूजनके पश्चात् **'अनया पूजया वरुणाद्यावाहितदेवताः प्रीयन्ताम्'** कहकर फूल छोड़ दे ।

तदनन्तर कलशके ऊपर लक्ष्मीनारायणप्रतिमाको संस्कार करके स्थापित करे। पुरुषसूक्तके षोडश मन्त्रोंसे षोडश-उपचार चढ़ाकर पूजन करे। साथ ही शालग्रामजीकी भी पूजा करे। (षोडशोपचार-पूजनविधि अन्यत्र इसीमें 'श्रीमद्भागवतकी पूजनविधि' शीर्षक लेखमें दी गयी है) पूजाके पश्चात् इस प्रकार भगवान्‌से प्रार्थना करे—

ब्रह्मसत्रं, करिष्यामि तवानुग्रहतो विभो ।
तन्निर्विघ्नं भवेद्देव रमानाथ क्षमस्व मे ।।

—'अनया पूजया लक्ष्मीसहितो भगवन्नारायणः प्रीयतां न मम ।' यों कहकर पुष्पांजलि चढ़ाये। ऐसा ही सर्वत्र करे ।

इसके बाद **'ॐ नरनारायणाभ्यां नमः'** इस मन्त्रसे भगवान् नर-नारायणका

******ebook converter DEMO Watermarks*******

आवाहन और पूजन करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

यो मायया विरचितं निजमात्मनीदं
खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ।
एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाद्य
प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ।।
सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान्
सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ।
दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन
यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपतारविन्दम् ।।

—'अनया पूजया भगवन्तौ नरनारायणौ प्रीयेतां न मम ।'

तत्पश्चात् वक्ता और श्रोताओंके सब विकारोंको दूर करनेके लिये वायुदेवताका आवाहन एवं पूजन करे—**'ॐ वायवे सर्वकल्याणकर्त्रे नमः ।'** इस मन्त्रसे पाद्य आदि निवेदन करके निम्नांकित रूपसे प्रार्थना करे—

अन्तः प्रविश्य भूतानि यो विभर्त्यात्मकेतुभिः ।
अन्तर्यामीश्वरः साक्षात् पातु नो यद्वशे स्फुटम् ।।

—'अनया पूजया सर्वकल्याणकर्ता वायुः प्रीयतां न मम ।'

वायुकी पूजाके पश्चात् गुरुका **'ॐ गुरवे नमः ।'** इस मन्त्रसे पूजन करके प्रार्थना करे—

ब्रह्मस्थानसरोजमध्यविलसच्छीतांशुपीठस्थितं
स्फूर्जत्सूर्यरुचिं वराभयकरं कर्पूरकुन्दोज्ज्वलम् ।
श्वेतस्रग्वसनानुलेपनयुतं विद्युद्रुचा कान्तया
संश्लिष्टार्धतनुं प्रसन्नवदनं वन्दे गुरुं सादरम् ।।

—'अनया पूजया गुरुदेवः प्रीयतां न मम।'

तदनन्तर श्वेतपुष्प आदिसे **'ॐ सरस्वत्यै नमः ।'** इस मन्त्रद्वारा सरस्वतीका पूर्ववत् पूजन करके प्रार्थना करे—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

—'अनया पूजया भगवती सरस्वती प्रीयतां न मम ।'

सरस्वतीपूजनके पश्चात् **'ॐ शेषाय नमः', 'ॐ सनत्कुमाराय नमः', 'ॐ सांख्यायनाय नमः,' 'ॐ पराशराय नमः', 'ॐ बृहस्पतये नमः,' 'ॐ मैत्रेयाय**

******ebook converter DEMO Watermarks*******

नमः,' 'ॐ उद्धवाय नमः'—इन मन्त्रोंसे शेष आदिकी पूजा करके प्रार्थना करे—

शेषः सनत्कुमारश्च सांख्यायनपराशरौ ।
बृहस्पतिश्च मैत्रेय उद्धवश्चात्र कर्मणि ।।
प्रत्यूहवृन्दं सततं हरन्तां पूजिता मया ।

—'अनया पूजया शेषसनत्कुमारसांख्यायनपराशरबृहस्पतिमैत्रेयोद्धवाः प्रीयन्तां न मम ।'

इसके बाद **'ॐ त्रय्यारुणये नमः', 'ॐ कश्यपाय नमः,' 'ॐ रामशिष्याय नमः,' 'ॐ अकृतव्रणाय नमः,' 'ॐ वैशम्पायनाय नमः' 'ॐ हारीताय नमः'**—इन मन्त्रोंसे त्रय्यारुणि आदि छः पौराणिकोंकी पूर्ववत् पूजा करके प्रार्थना करे—

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च रामशिष्योऽकृतव्रणः ।
वैशम्पायनहारीतौ षड् वै पौराणिका इमे ।।
सुखदाः सन्तु मे नित्यमनया पूजयार्चिताः ।

—'अनया पूजया त्रय्यारुणिप्रभृतयः षट् पौराणिकाः प्रीयन्तां न मम ।'

तत्पश्चात् **'ॐ भगवते व्यासाय नमः'** इस मन्त्रसे भगवान् व्यासदेवकी स्थापना और पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमस्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे ।
पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ।।

—'अनया पूजया भगवान् व्यासः प्रीयतां न मम ।'

इसके बाद सप्ताहयज्ञके उपदेशक भगवान् सूर्यकी स्थापना करके प्रतिदिन उनकी भी पूजा करे। उनकी पूजाका मन्त्र **'ॐ सूर्याय नमः'** है। पूजनके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये ।

लोकेश त्वं जगच्चक्षुः सत्कर्म तव भाषितम् ।
करोमि तच्च निर्विघ्नं पूर्णमस्तु त्वदर्चनात् ।।

—'अनया पूजया सप्ताहयज्ञोपदेष्टा भगवान् सूर्यः प्रीयतां न मम ।'

इसके बाद दशावतारोंकी तथा शुकदेवजीकी भी यथास्थान स्थापना करके पूजा करनी चाहिये ।

तदनन्तर नारदपीठ और पुस्तकपीठ दोनोंकी एक ही साथ पूजा करे। पहले उन दोनों पीठोंका जलसे अभिषेक करके उनपर चन्दनादिसे अष्टदल कमल बनावे। फिर **'ॐ आधारशक्तये नमः', 'ॐ मूलप्रकृतये नमः', 'ॐ क्षीरसमुद्राय नमः', 'ॐ श्वेतद्वीपाय नमः,' 'ॐ कल्पवृक्षाय नमः,' 'ॐ रत्नमण्डपाय नमः,' 'ॐ रत्नसिंहासनाय नमः'**—इन मन्त्रोंसे दोनों पीठोंमें आधारशक्ति आदिकी भावना करके पूजा करे। फिर चारों दिशाओंमें पूर्वादिके क्रमसे 'ॐ धर्माय नमः,' **'ॐ ज्ञानाय नमः,'**

******ebook converter DEMO Watermarks*******

'ॐ वैराग्याय नमः,' 'ॐ ऐश्वर्याय नमः'—इन मन्त्रोंद्वारा धर्मादिकी भावना एवं पूजा करे। फिर पीठोंके मध्यभागमें **'ॐ अनन्ताय नमः'** से अनन्तकी और **'ॐ महापद्माय नमः'** से महापद्मकी पूजा करे। फिर यह चिन्तन करे—उस महापद्मका कन्द (मूलभाग) आनन्दमय है। उसकी नाल संवित्स्वरूप है, उसके दल प्रकृतिमय हैं, उसके केसर विकृतिरूप हैं, उसके बीज पंचाशत् वर्णस्वरूप हैं—और उन्हींसे उस महापद्मकी कर्णिका (गद्दी) विभूषित है। उस कर्णिकामें अर्कमण्डल, सोममण्डल और वह्निमण्डलकी स्थिति है। वहीं प्रबोधात्मक सत्त्व, रज एवं तम भी विराजमान हैं। ऐसी भावनाके पश्चात् उन सबकी पंचोपचारसे पूजा करे। मन्त्र इस प्रकार हैं—**'ॐ आनन्दमयकन्दाय नमः', 'ॐ संविन्नालाय नमः,' 'ॐ प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः,' 'ॐ विकृतिमयकेसरेभ्यो नमः,' 'ॐ पञ्चाशद्वर्णबीजभूषितायै कर्णिकायै नमः', 'ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः,' 'ॐ सं सोममण्डलाय नमः,' 'ॐ वं वह्निमण्डलाय नमः,' 'ॐ सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय नमः,' 'ॐ रं रजसे नमः,' 'ॐ तं तमसे नमः'** । इन सबकी पूजाके पश्चात् कमलके सब ओर पूर्वादि आठों दिशाओंमें क्रमशः **'ॐ विमलायै नमः,' 'ॐ उत्कर्षिण्यै नमः,' 'ॐ ज्ञानायै नमः,' 'ॐ क्रियाये नमः,' 'ॐ योगायै नमः,' 'ॐ प्रह्वयैनमः', 'ॐ सत्यायै नमः,' 'ॐ ईशानायै नमः'**—इन मन्त्रोंद्वारा विमला आदि आठ शक्तियोंकी पूजा करे और कमलके मध्यभागमें **'ॐ अनुग्रहायै नमः'** से अनुग्रहा नामकी शक्तिकी पूजा करे। तदनन्तर **'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय पद्मपीठात्मने नमः'** इस मन्त्रसे सम्पूर्ण पद्मपीठका पूजन करके उसपर सुन्दर वस्त्र डाल दे और उसीके ऊपर स्थापित करनेके लिये श्रीमद्भागवतकी पुस्तकको हाथमें लेकर **'ॐ ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवा सा पर्वता इमे । ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ध्रुवो राजा विशामसि'** इस मन्त्रको पढ़ते हुए उक्त पीठपर स्थापित करे। फिर **'ॐ मनो जूतिः०'** इस मन्त्रसे पुस्तककी प्रतिष्ठा करके पुरुषसूक्तके षोडश मन्त्रोंद्वारा षोडशोपचार-विधिसे पूजा करे। (यह विधि पहले 'श्रीमद्भागवतकी पूजन-विधि' शीर्षक लेखमें दी गयी है।) तत्पश्चात् द्वितीय पीठको श्वेत वस्त्रसे आच्छादित करके उसपर देवर्षि नारदको स्थापित करे और **'ॐ सुरर्षिवरनारदाय नमः'** इस मन्त्रसे उनकी विधिवत् पूजा करके निम्नांकितरूपसे प्रार्थना करे—

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते ज्ञानवैराग्यशालिने ।
नारदाय सर्वलोकपूजिताय सुरर्षये ।।

—'अनया पूजया देवर्षिनारदः प्रीयतां न मम ।'

इस प्रकार पूजनके पश्चात् यजमान पुष्प, चन्दन, ताम्बूल, वस्त्र, दक्षिणा, सुपारी तथा रक्षासूत्र हाथमें लेकर **'ॐ अद्यामुकगोत्रममुकप्रवरममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिर्वरणद्रव्यैः सर्वेष्टदश्रीमद्भागवतवक्तृत्वेन भवन्तमहं वृणे'**—इस प्रकार कहते हुए कथावाचक आचार्यका वरण करे। हाथमें ली हुई सब सामग्री उनको दे दे। वह सब लेकर कथावाचक व्यास **'वृतोऽस्मि'** यों कहें। इसके बाद पुनः उन्हीं सब

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सामग्रियोंको हाथमें लेकर जप और पाठ करनेवाले ब्राह्मणोंका वरण करे। इसके लिये संकल्पवाक्य इस प्रकार है—**'अद्याहममुकगोत्रानमुकप्रवरानमुकशर्मणो यथासंख्याकान् ब्राह्मणानेभिर्वरणद्रव्यैर्गाथाविघ्नापनोदार्थं गणेशगायत्रीवासुदेवमन्त्रजपकर्तृत्वेन गीताविष्णुसहस्रनामपाठकर्तृत्वेन च वो विभज्य वृणे ।'** इस प्रकार संकल्प करके प्रत्येक ब्राह्मणको वरण-सामग्री अर्पित करे। सामग्री लेकर वे ब्राह्मण कहें **'वृताः स्मः'** । इसके बाद पहले कथावाचक आचार्यके हाथमें दिये हुए रक्षासूत्रको लेकर उन्हींके हाथमें बाँध दे। उस समय आचार्य निम्नांकित मन्त्रका पाठ करें—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।।

रक्षा बाँधनेके अनन्तर यजमान उनके ललाटमें कुंकुम (रोली) और अक्षतसे तिलक करे। इसी प्रकार जपकर्ता ब्राह्मणोंके हाथोंमें भी रक्षा बाँधकर तिलक करे। तदनन्तर पीले अक्षत लेकर यजमान चारों दिशाओंमें रक्षाके लिये बिखेरे। उस समय निम्नांकित मन्त्रोंका पाठ भी करे—

पूर्वे नारायणः पातु वारिजाक्षश्च दक्षिणे ।
पश्चिमे पातु गोविन्द उत्तरे मधुसूदनः ।।
ऐशान्यां वामनः पातु चाग्नेय्यां च जनार्दनः ।
नैर्ऋत्यां पद्मनाभश्च वायव्यां माधवस्तथा ।।
ऊर्ध्वं गोवर्धनधरो ह्यधस्ताच्च त्रिविक्रमः ।
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं तत्सर्वं रक्षतां हरिः ।।

इसके बाद वक्ता आचार्य यजमानके हाथमें—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल ।।

इस मन्त्रको पढ़कर रक्षा बाँधे और—

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
तिलकं ते प्रयच्छन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ।।

—इस मन्त्रसे उसके ललाटमें तिलक कर दे। फिर यजमान व्यासासनकी चन्दन-पुष्प आदिसे पूजा करे। पूजनका मन्त्र इस प्रकार है—**'ॐ व्यासासनाय नमः'** । तदनन्तर कथावाचक आचार्य ब्राह्मणों और वृद्ध पुरुषोंकी आज्ञा लेकर विप्रवर्गको नमस्कार और गुरु-चरणोंका ध्यान करके व्यासासनपर बैठे। मन-ही-मन गणेश और नारदादिका स्मरण एवं पूजन करें। इसके बाद यजमान **'ॐ नमः पुराणपुरुषोत्तमाय'** इस मन्त्रसे पुनः पुस्तककी गन्ध, पुष्प, तुलसीदल एवं दक्षिणा आदिके द्वारा पूजा करे। फिर गन्ध, पुष्प आदिसे वक्ताका पूजन करते हुए निम्नांकित श्लोकका पाठ करे—

******ebook converter DEMO Watermarks*******

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ।।

तत्पश्चात् नीचे लिखे हुए श्लोकोंको पढ़कर प्रार्थना करे—

शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ।।
संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ।
कर्ममोहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात् ।।

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् निम्नांकित श्लोक पढ़कर श्रीमद्भागवतपर पुष्प, चन्दन और नारियल आदि चढ़ाये—

श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ।
स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ।।
मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया ।
निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ।।

कथा-मण्डपमें वायुरूपधारी आतिवाहिक शरीरवाले जीवविशेषके लिये सात गाँठके एक बाँसको भी स्थापित कर देना चाहिये ।

तत्पश्चात् वक्ता भगवान्का स्मरण करके उस दिन श्रीमद्भागवतमाहात्म्यकी कथा सब श्रोताओंको सुनाये और दूसरे दिनसे प्रतिदिन देवपूजा, पुस्तक तथा व्यासकी पूजा एवं आरती हो जानेके पश्चात् वक्ता कथा प्रारम्भ करे। सन्ध्याको कथाकी समाप्ति होनेपर भी नित्यप्रति पुस्तक तथा वक्ताकी पूजा तथा आरती, प्रसाद एवं तुलसीदलका वितरण, भगवन्नामकीर्तन एवं शङ्खध्वनि करनी चाहिये। कथाके प्रारम्भमें और बीच-बीचमें भी जब कथाका विराम हो तो समयानुसार भगवन्नामकीर्तन करना चाहिये ।

वक्ताको चाहिये कि प्रतिदिन पाठ प्रारम्भ करनेसे पूर्व एक सौ आठ बार **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** इस द्वादशाक्षरमन्त्रका अथवा **'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा'** इस गोपालमन्त्रका जप करे। इसके बाद निम्नांकित वाक्य पढ़कर विनियोग करे—

ॐ अस्य श्रीमद्भागवताख्यस्तोत्रमन्त्रस्य नारदऋषिः बृहतीच्छन्दः श्रीकृष्णपरमात्मा देवता ब्रह्मबीजं भक्तिः शक्तिः ज्ञानवैराग्यकीलकं मम श्रीमद्भगवत्प्रसादसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः ।

विनियोगके पश्चात् निम्नांकित रूपसे न्यास करे—

ऋष्यादिन्यासः—नारदर्षये नमः शिरसि । बृहतीच्छन्दसे नमः मुखे । श्रीकृष्णपरमात्मदेवतायै नमः हृदि । ब्रह्मबीजाय नमः गुह्ये । भक्तिशक्तये नमः पादयोः । ज्ञानवैराग्यकीलकाभ्यां नमः नाभौ । श्रीमद्भगवत्प्रसादसिद्ध्यर्थकपाठविनियोगाय नमः सर्वांगे ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

द्वादशाक्षरमन्त्रसे करन्यास और अंगन्यास करना चाहिये अथवा नीचे लिखे अनुसार उसका सम्पादन करना चाहिये—

करन्यासः—ॐ क्लां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ क्लीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ क्लूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ क्लैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ क्लौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ क्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अङ्गन्यासः—ॐ क्लां हृदयाय नमः । ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा । ॐ क्लूं शिखायै वषट् । ॐ क्लैं कवचाय हुम् । ॐ क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ क्लः अस्त्राय फट् ।

इसके बाद निम्नांकित रूपसे ध्यान करे—

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम् ।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः ।।
अस्ति स्वस्तरुणीकराग्रविगलत्कल्पप्रसूनाप्लुतं
वस्तु प्रस्तुतवेणुनादलहरीनिर्वाणनिर्व्याकुलम् ।
स्रस्तस्रस्तनिबद्धनीविविलसद्गोपीसहस्रावृतं
हस्तन्यस्तनतापवर्गमखिलोदारं किशोराकृतिः ।।

इस प्रकार ध्यानके पश्चात् कथा प्रारम्भ करनी चाहिये। सूर्योदयसे आरम्भ करके प्रतिदिन साढ़े तीन प्रहरतक कथा बाँचनी चाहिये। मध्याह्नमें दो घड़ी कथा बंद रखनी चाहिये। प्रातःकालसे मध्याह्नतक मूलका पाठ होना चाहिये और मध्याह्नसे सन्ध्यातक उसका संक्षिप्त भावार्थ अपनी भाषामें कहना चाहिये। मध्याह्नमें विश्रामके समय तथा रात्रिके समय भगवन्नाम-कीर्तनकी व्यवस्था होनी चाहिये ।

श्रोताओंके स्थान—वक्ताके सामने श्रोताओंके बैठनेके लिये आगे-पीछे सात पंक्तियाँ बना लेनी चाहिये। पहली पंक्तिका नाम सत्यलोक है, इसमें साधु-संन्यासी, विरक्त, वैष्णव आदिको बैठाना चाहिये। दूसरी पंक्ति तपोलोक कहलाती है, इसमें वानप्रस्थ श्रोताओंको बैठाना चाहिये। तीसरी पंक्तिको जनलोक नाम दिया गया है, इसमें ब्रह्मचारी श्रोता बैठाये जाने चाहिये। चौथी पंक्ति महर्लोक कही गयी है, यह ब्राह्मण श्रोताओंका स्थान है। पाँचवीं पंक्तिको स्वर्लोक कहते हैं। इसमें क्षत्रिय श्रोताओंको बैठाना चाहिये। छठी पंक्तिका नाम भुवर्लोक है, जो वैश्य श्रोताओंका स्थान है। सातवीं पंक्ति भूर्लोक मानी गयी है, उसमें शूद्रजातीय श्रोताओंको बैठाना चाहिये। स्त्रियाँ वक्ताके वामभागकी भूमिपर कथा सुनें। ये स्थान उन लोगोंके लिये नियत किये गये हैं, जो प्रतिदिन नियमपूर्वक कथा सुनते हैं। जो श्रोता कथा प्रारम्भ होनेपर कुछ समयके लिये अनियमितरूपसे आते हैं, उनके लिये वक्ताके दक्षिण भागमें स्थान रहना

******ebook converter DEMO Watermarks*******

चाहिये ।

श्रोताओंके नियम—श्रोता प्रतिदिन एक बार हविष्यान्न भोजन करें। पतित, दुर्जन आदिका संग तो दूर रहा, उनसे वार्तालाप भी न करें। ब्रह्मचर्यपालन, भूमिशयन (नीचे आसन बिछाकर या तख्तपर सोना) सबके लिये अनिवार्य है। एकाग्रचित्त होकर कथा सुननी चाहिये। जितने दिन कथा सुनें—धन, स्त्री, पुत्र, घर एवं लौकिक लाभकी समस्त चिन्ताएँ त्याग दें। मल-मूत्रपर काबू रखनेके लिये हलका आहार सुखद होता है। यदि शक्ति हो तो सात दिनतक उपवास करके कथा सुनें। अन्यथा दूध पीकर सुखपूर्वक कथा सुनें। इससे भी काम न चले तो फलाहार या एक समय अन्न-भोजन करें। जिस तरह भी सुखपूर्वक कथा सुननेकी सुविधा हो, वैसे कर लें। प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर ही भोजन करना उचित है। दाल, शहद, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित अन्न तथा बासी अन्नका परित्याग करें। काम, क्रोध, मद, मान, ईर्ष्या, लोभ, दम्भ, मोह तथा द्वेषसे दूर रहें। वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गौ, व्रती, स्त्री, राजा तथा महापुरुषोंकी कभी भूलकर भी निन्दा न करें। रजस्वला, चाण्डाल, म्लेच्छ, पतित, व्रतहीन, ब्राह्मणद्रोही तथा वेद-बहिष्कृत मनुष्योंसे वार्तालाप न करें। मनमें सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय तथा उदारताको स्थान दें। श्रोताओंको वक्तासे ऊँचे आसनपर कभी नहीं बैठना चाहिये ।

कुछ विशेष बातें—प्रत्येक स्कन्धकी समाप्ति होनेपर चन्दन, पुष्प, नैवेद्य आदिसे पुस्तककी पूजा करके आरती उतारनी चाहिये। शुकदेवजीके आगमन तथा श्रीकृष्णके प्राकट्यका प्रसंग आनेपर भी आरती करनी चाहिये। बारहवें स्कन्धकी समाप्ति होनेपर पुस्तक और वक्ताका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। वक्ता गृहस्थ हों तो, उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार उदारतापूर्वक वस्त्राभूषण तथा नकद रुपये भेंट देने चाहिये। मृदंग आदि बजाकर जोर-जोरसे कीर्तन करना चाहिये। जय-जयकार, नमस्कार और शंखनाद करने चाहिये। ब्राह्मणों और याचकोंको अन्न एवं धन देना चाहिये। वक्ताके हाथोंसे श्रोताओंको प्रसाद एवं तुलसीदल मिलने चाहिये। प्रतिदिन कथाके प्रारम्भ और अन्तमें आरती होनी आवश्यक है। (श्रीमद्भागवतकी आरती इसीमें अन्यत्र दी गयी है।)

कथाका विश्राम प्रतिदिन नियत स्थलपर ही करना चाहिये। प्रथम दिन मनु-कर्दम-संवादतक। दूसरे दिन भरत-चरित्रतक। तीसरे दिन सातवें-स्कन्धकी समाप्तितक। चौथे दिन श्रीकृष्णके प्राकट्यतक। पाँचवें दिन रुक्मिणी-विवाहतक और छठे दिन हंसोपाख्यानतककी कथा बाँचकर, सातवें दिन अवशिष्ट भागको पूर्ण कर देना चाहिये।* स्कन्धके आदि और अन्तिम श्लोकको कई बार उच्च स्वरसे पढ़ना चाहिये। कथा-समाप्तिके दूसरे दिन वहाँ स्थापित हुए सम्पूर्ण देवताओंका पूजन करके हवनकी वेदीपर पंचभूसंस्कार, अग्निस्थापन एवं कुशकण्डिका करे। फिर विधिपूर्वक वृत ब्राह्मणोंद्वारा हवन, तर्पण एवं मार्जन कराकर श्रीमद्भागवतकी शोभायात्रा निकाले और ब्राह्मण-भोजन कराये। मधु-मिश्रित खीर और तिल आदिसे भागवतके श्लोकोंका

******ebook converter DEMO Watermarks*******

दशांश (अर्थात् १,८००) आहुति देनी चाहिये। खीरके अभावमें तिल, चावल, जौ, मेवा, शुद्ध घी और चीनीको मिलाकर हवनीय पदार्थ तैयार कर लेना चाहिये। इसमें सुगन्धित पदार्थ (कपूर-काचरी, नागरमोथा, छड़छड़ीला, अगर-तगर, चन्दनचूर्ण आदि) भी मिलाने चाहिये। पूर्वोक्त अठारह सौ आहुति गायत्री-मन्त्र अथवा दशम-स्कन्धके प्रति श्लोकसे देनी चाहिये। हवनके अन्तमें दिक्पाल आदिके लिये बलि, क्षेत्रपाल-पूजन, छायापात्र-दान, हवनका दशांश तर्पण एवं तर्पणका दशांश मार्जन करना चाहिये। फिर आरतीके पश्चात् किसी नदी, सरोवर या कूपादिपर जाकर अवभृथस्नान (यज्ञान्त-स्नान) भी करना चाहिये। इसके लिये समूहके साथ शोभायात्रा निकालकर गाजे-बाजेके साथ कीर्तन करते हुए जाना चाहिये। यजमान श्रीमद्भागवतग्रन्थको अपने मस्तकपर रखकर उसकी शोभायात्रा निकाले, जिसमें वक्ता तथा सब श्रोता सम्मिलित हों। हरिकीर्तन होता चले। भागवत-ग्रन्थपर चँवर डुलते रहें। घड़ियाल, घण्टा, झाँझ, शंख आदि बाजे बजते रहें। जो पूर्ण हवन करनेमें असमर्थ हो, वह यथाशक्ति हवनीय पदार्थ दान करे। अन्तमें कम-से-कम बारह ब्राह्मणोंको मधुयुक्त खीरका भोजन कराना चाहिये। व्रतकी पूर्तिके लिये सुवर्ण-दान और गोदान करना चाहिये। सिंहासनपर विराजित सुन्दर अक्षरोंमें लिखित श्रीमद्भागवतकी पूजा करके उसे दक्षिणासहित कथावाचक आचार्यको दान कर देना चाहिये। अन्तमें सब प्रकारकी त्रुटियोंकी पूर्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ कथावाचक आचार्यके द्वारा सुनना चाहिये। विरक्त श्रोताओंको 'गीता' सुननी चाहिये ।

---

* संतानकी इच्छासे प्रयोग करना हो तो संकल्पके उद्देश्यमें इस प्रकार योजना कर लेनी चाहिये।

'अतीतानन्तजन्मसम्पादितदुष्कृतपरिपाकवशप्राप्तजन्माङ्गक्रूरग्रहसूचितपत्नीवन्ध्य सद्गुणसम्पन्नचिरञ्जीविस्वस्थसुन्दरसुपुत्रप्राप्तये च..... ।'

यदि किसी मृत व्यक्तिकी सद्गतिके उद्देश्यसे भागवत-सप्ताह करना हो तो संकल्पके उद्देश्यमें इस प्रकार योजना कर ले—

'स्वीयानन्तदुष्कृतपरिपाकवशान्नानाविधदुःखक्षेत्रयोनिनाम् पितॄणाम् अमुकामुकशर्मणाम् (.....योनेः पितुः अमुकशर्मणः अन्यस्य वा कस्यचित्) प्रेतत्वनिवृत्तिपूर्वकमुत्तमवैकुण्ठधामोपलब्धये..... ।'

इसी प्रकार आवश्यकताके अनुसार अन्यान्य उद्देश्यकी भी योजना कर लेनी चाहिये।

* मनुकर्दमसंवादपर्यन्तं प्रथमेऽहनि । भरताख्यानपर्यन्तं द्वितीयेऽहनि वाचयेत् ।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्धपूरणम् । कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थे दिवसे वदेत् ।।

रुक्मिण्युद्वाहपर्यन्तं पञ्चमेऽहनि शस्यते । श्रीहंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठेऽहनि वदेत् सुधीः ।।

सप्तमे तु दिने कुर्यात् पूर्तिं भागवतस्य वै । एवं निर्विघ्नतासिद्धिर्विपर्यय इतोऽन्यथा ।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सप्ताह-कथाके प्रारम्भमें संग्रहणीय सामग्रीकी सूची

पूजन-सामग्री

गंगाजल, रोली (कुंकुम), मोली (रक्षासूत्र), चन्दन, शुद्ध केसर, कपूर, पुष्प, पुष्पमाला, तुलसीदल, बिल्वपत्र, दूर्वादल, धूप, शुद्ध अगरबत्ती, पंचामृत (दूध ऽ ।, दही ऽ =, मधु दो पैसे भर, चीनी ऽ =, घी छटाँक भर), दीप (यथासम्भव शुद्ध, गोघृत और रूई), पानका पत्ता पचास, सुपारी पचीस, यज्ञोपवीत पचीस, इलायची, लौंग, पेड़ा ऽ ।।, मेवा ऽ ।।, गुड़ ऽ ।, चावल ऽ ।, गेहूँ ऽ५, कुण्डे मिट्टीके दो गेहूँ बोनेके लिये, पीली सरसों, अबीर, गुलाल, ऋतुफल—केला-संतरा आदि, कपड़ा सफेद ५ गज, कपड़ा लाल ५ गज, कपड़ा पीला ५ गज, कपड़ा शुद्ध रेशमी १ $\frac{१}{२}$ गज, सर्वतोभद्रकी रचनाके लिये हरा, लाल, काला, पीला और गुलाबी रंग, गोबर, नारियल दो या सात, शुद्ध इत्र, कुशा, सिन्दूर, रुपये-रेजगी-पैसे, आरतीका पात्र, घण्टा, घड़ियाल, शंख-झाँझ आदि, कोसा पचास, दियासलाई, चौकी एक सर्वतोभद्रके लिये, चौकी एक नारदजीके लिये, चौकी एक नवग्रह, षोडशमातृका और गणेशके लिये, चौकी एक व्यास, शुकदेव, सप्त-चिरजीवी तथा पौराणिकोंके लिये, पाटा एक शेष-सनत्कुमारादिके लिये ।

कलशस्थापनकी सामग्री

कलश ताँबेका एक, ताँबे या काँसीका पात्र एक, कलश मिट्टीके पाँच, सप्तधान्य (जौ, गेहूँ, धान, तिल, कँगनी, साँवा, चना), पंचपल्लव (आम, पीपल, पाकर, गूलर और बड़के पत्ते) दूर्वा, कुशा, सुपारी, दक्षिणा, चन्दन, अक्षत, फूल, तीर्थोदक, समुद्रजल, सप्तमृत्तिका (घुड़सालकी, हाथीशालाकी, दीमककी, नदी-संगमकी, राजद्वारकी, गोशालाकी, तालाबकी), सर्वौषधि (कूट, जटामाशी, हल्दी गाँठ २, राभट, मुरा, शैलेभ, चन्दन, बचा, चम्पक और नागरमोथा—अभावमें केवल हल्दी), नदीसंगमका जल, श्रीलक्ष्मी-नारायणकी प्रतिमा ।

कथामण्डपके लिये सामग्री

चँदोवेका कपड़ा, चौकोर मण्डप, केलेके खम्भे चार, बाँसके खम्भे, मण्डपको चारों ओरसे माला, फूल और पत्तोंसे सजाना, चारों दिशाओंमें झंडी लगाना, वस्त्र और गोटे आदिसे सजाना, चौकी व्यासके लिये, गद्दी, मसनद, तकिये, कम्बल, चद्दर, पाँच झंडियाँ, पुस्तकका वेष्टन, पुस्तकके लिये चौकी, आमके पत्तोंके बंदनवार ।

गणेशजी, देवता, श्रीमद्भागवत और आचार्यकी पूजाके लिये प्रतिदिन चन्दन, पुष्प, पुष्पमाला, धूप, दीपादि सामग्री ।

वरणकी सामग्री

वक्ताके लिये चादर, धोती, गमछा, आसन, दक्षिणा, तुलसीमाला, जलपात्र आदि, जप

******ebook converter DEMO Watermarks*******

करनेवालोंके लिये भी यथासम्भव वस्त्र-द्रव्य आदि।

पाठके लिये पुस्तक

भागवत, रामायण, गीता, सहस्रनाम आदि ।

हवनके लिये सामग्री

वेदीके लिये स्वच्छ बालू एक बोरा, सूखी आमकी लकड़ी दो मन, कुशकण्डिकाके लिये कुशा, दूर्वा, अग्नि लानेके लिये दो कांस्यपात्र, एक पूर्णपात्र पीतलका बड़ा-सा, यज्ञपात्र—प्रणीता, प्रोक्षणी, स्रुवा, स्रुक्, पूर्णाहुतिपात्र, चरुस्थाली, आज्यस्थाली (काँसीका बड़ा-सा कटोरा), हवनीय पदार्थ—मधुमिश्रित खीर, छायापात्र-दानके लिये काँसेकी छोटी एक कटोरी तथा उसके लिये घी ।

तिल १० सेर, चावल ५ सेर, जौ १½ सेर शुद्ध घी ४ सेर, शुद्ध चीनी १½ सेर, पंचमेवा २ सेर (पिश्ता, बादाम, किशमिश अखरोट और काँजू)—इन सबको मिलाकर हवनसामग्री बनायी जाती है। फिर इसमें सुगन्धित द्रव्य (कपूरकाचरी, छड़छड़ीला, नागरमोथा, अगर-तगर, चन्दनचूर्ण आदि) आवश्यकतानुसार मिला देने चाहिये। बलिके लिये पापड़, उड़द, दही, चावल, रूईकी बत्ती, दक्षिणा, क्षेत्रपाल-बलिके लिये हँड़िया, काजल, सिंदूर, दीपक, दक्षिणा आदि। पूर्णाहुतिके लिये नारियलका गोला इत्यादि, वितरणके लिये प्रसाद। ब्राह्मण-भोजनके लिये मधुमिश्रित खीर तथा अन्यान्य मधुर पकवान, पूरी-साग आदि। हवनकर्ता ब्राह्मणोंके लिये वरण और दक्षिणा आदि ।

कथा-समाप्तिके पश्चात् कथावाचकको भेंट देनेके लिये वस्त्र, आभूषण, नकद रुपये आदि ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

वन्दनम्

सर्गस्थितिनिरोधार्थं कामाकाममयो हि यः ।
तं कामं कामकामघ्नं कामाभावाय कामये ।।

यत्कामिनीकेलिकलापकुण्ठितः कामोऽप्यकामा विमदो बभूव ह ।
तं मानिनीमानदमानदं सदा श्रीमोहनं मोहनमानतोऽस्म्यहम् ।।
यस्याङ्घ्रिपङ्कजपरागपरप्रभावाद् भूत्वा कृती कृतिमतां सृतिमाचरामि ।
तं सद्गुरुं सततसर्वसुखं सदग्रयं वन्दे सदा विमलबोधघनं विचित्रम् ।।

व्यासं व्यासकरं वन्दे मुनिं नारायणं स्वयम् ।
यतः प्राप्तकृपालोका लोका मुक्ताः कलेर्ग्रहात् ।।
यस्य तुण्डाच्च्युतश्चूतो राजतेऽयं रसात्मकः ।
तमच्युतकथाकुञ्जे सुकूजन्तं शुकं भजे ।।
श्रीधरं श्रीधरं वन्दे श्रीधरैकपरायणम् ।
यस्यैव श्रीप्रसादेन श्रीधरेयं कृतिः कृता ।।
राधा भक्तिर्हरिर्ज्ञानं ताभ्यां या च समन्विता ।
तां श्रीभागवतीं गाथां वन्दे युगलरूपिणीम् ।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

।। श्रीहरिः ।।

श्रीमद्भागवतकी आरती

आरति अतिपावन पुरानकी ।
धर्म-भक्ति-विज्ञान-खानकी ।।टेक।।
महापुरान भागवत निरमल ।
शुक-मुख-विगलित निगम-कल्प-फल ।
परमानन्द-सुधा-रसमय कल ।
लीला-रति-रस रसनिधानकी ।।आरति०।।
कलि-मल-मथनि त्रिताप-निवारिनि ।
जन्म-मृत्युमय भव-भय-हारिनि ।
सेवत सतत सकल सुख-कारिनि ।
सुमहौषधि हरि-चरित-गानकी ।।आरति०।।
विषय-विलास-विमोह-विनाशिनि ।
विमल विराग विवेक विकाशिनि ।
भगवत्-तत्त्व-रहस्य-प्रकाशिनि ।
परम ज्योति परमात्म-ज्ञानकी ।।आरति०।।
परमहंस-मुनि-मन उल्लासिनि ।
रसिक-हृदय रस-रास विलासिनि ।
भुक्ति मुक्ति रति प्रेम सुदासिनि ।
कथा अकिञ्चनप्रिय सुजानकी ।।आरति०।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

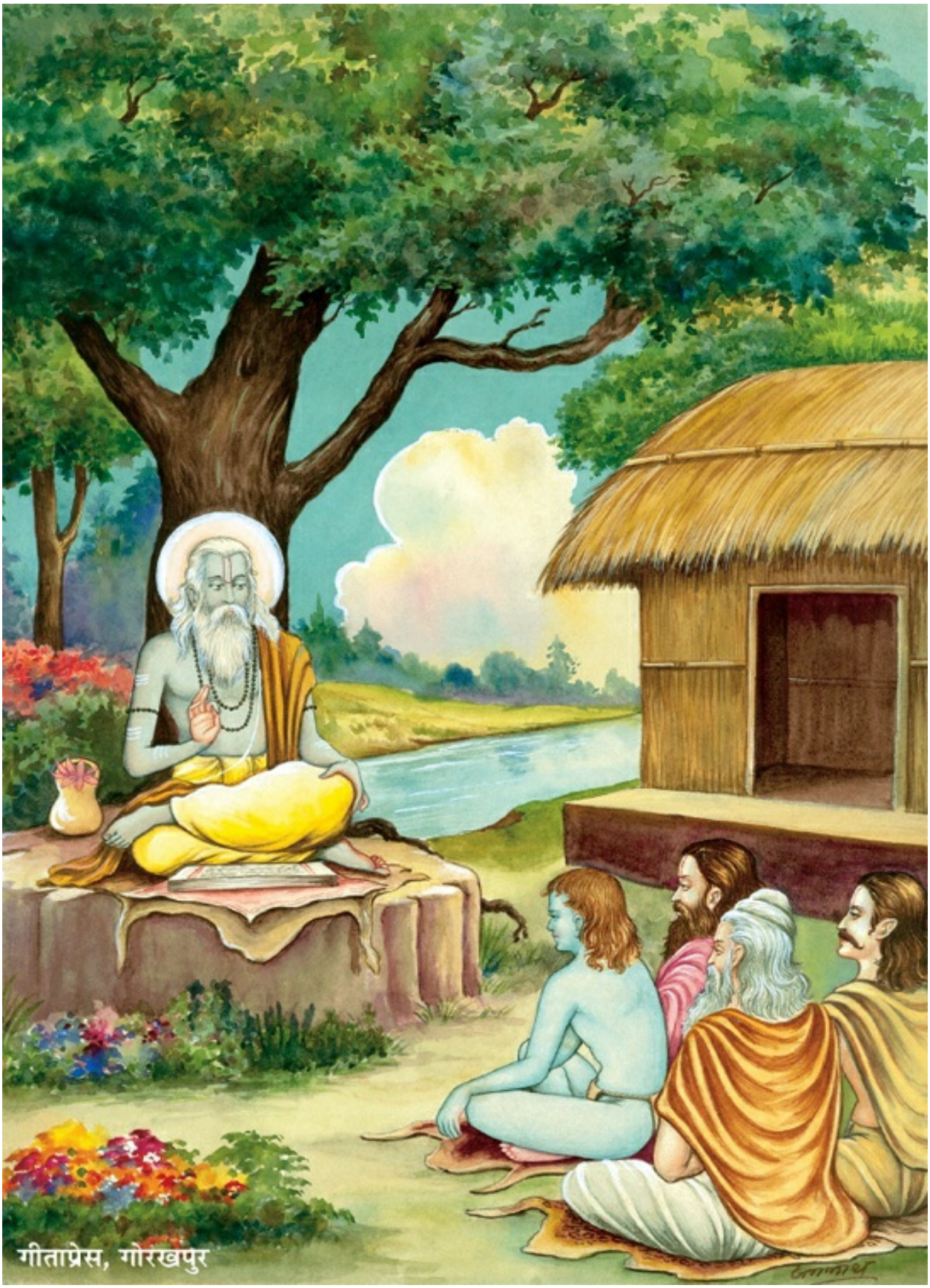

******ebook converter DEMO Watermarks*******

भगवान् व्यासका पुराण-प्रवचन
Vyāsa discourses on Purāṇas

******ebook converter DEMO Watermarks*******

महाप्रयाणके समय भीष्मपर भगवान्‌की कृपा
The departing Bhīṣma graced by the Lord

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

भगवान् नारायणके नाभि-कमलसे लोकपितामह ब्रह्माकी उत्पत्ति
Brahmā emanates from the navel-lotus of Nārāyaṇa

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

देवों तथा ऋषिगणोंको भगवान् वराहके दिव्य दर्शन
Vision of Lord Varāha to Gods and Ṛṣis

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

माता देवहूतिको भगवान् कपिलका तत्त्वोपदेश
Kapila preaches knowledge to mother Devahūti

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

बालक ध्रुवपर भगवान्‌का अनुग्रह
The grace of Lord descends on Dhruva

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

भक्तिके नौ प्रकार
Ninefold devotion

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

भगवान् विष्णु वामन-रूपमें
Lord Viṣṇu as a Dwarf

******ebook converter DEMO Watermarks*******

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।।

श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्

कृष्णं नारायणं वन्दे कृष्णं वन्दे व्रजप्रियम् ।
कृष्णं द्वैपायनं वन्दे कृष्णं वन्दे पृथासुतम् ।।

अथ प्रथमोऽध्यायः
देवर्षि नारदकी भक्तिसे भेंट

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ।।१

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ।।२

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ।
कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ।।३

शौनक उवाच

अज्ञानध्वान्तविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ।
सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ।।४

भक्तिज्ञानविरागाप्तो विवेको वर्धते महान् ।
मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ।।५

इह घोरे कलौ प्रायो जीवश्चासुरतां गतः ।
क्लेशाक्रान्तस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ।।६

सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको हम नमस्कार करते हैं, जो जगत्की उत्पत्ति,

******ebook converter DEMO Watermarks*******

स्थिति और विनाशके हेतु तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों प्रकारके तापोंका नाश करनेवाले हैं ।।१।।

जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था तथा लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, तभी उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके लिये घरसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा! बेटा! तुम कहाँ जा रहे हो?' उस समय वृक्षोंने तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे उत्तर दिया था। ऐसे सर्वभूत-हृदयस्वरूप श्रीशुकदेवमुनिको मैं नमस्कार करता हूँ।।२।।

एक बार भगवत्कथामृतका रसास्वादन करनेमें कुशल मुनिवर शौनकजीने नैमिषारण्य क्षेत्रमें विराजमान महामति सूतजीको नमस्कार करके उनसे पूछा ।।३।।

शौनकजी बोले—सूतजी! आपका ज्ञान अज्ञानान्धकारको नष्ट करनेके लिये करोड़ों सूर्योंके समान है। आप हमारे कानोंके लिये रसायन—अमृत-स्वरूप सारगर्भित कथा कहिये ।।४।। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे प्राप्त होनेवाले महान् विवेककी वृद्धि किस प्रकार होती है तथा वैष्णवलोग किस तरह इस माया-मोहसे अपना पीछा छुड़ाते हैं? ।।५।। इस घोर कलि-कालमें जीव प्रायः आसुरी स्वभावके हो गये हैं, विविध क्लेशोंसे आक्रान्त इन जीवोंको शुद्ध (दैवीशक्तिसम्पन्न) बनानेका सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है? ।।६।।

श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् ।
कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाधुना ।।७

चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्गसम्पदम् ।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् ।।८

सूत उवाच

प्रीतिः शौनक चित्ते ते ह्यतो वच्मि विचार्य च ।
सर्वसिद्धान्तनिष्पन्नं संसारभयनाशनम् ।।९

भक्त्योघवर्धनं यच्च कृष्णसंतोषहेतुकम् ।
तदहं तेऽभिधास्यामि सावधानतया शृणु ।।१०

कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे ।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ।।११

एतस्मादपरं किंचिन्मनः शुद्ध्यै न विद्यते ।
जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ।।१२

******ebook converter DEMO Watermarks*******

परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ।
सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन् ।।१३

शुकं नत्वावदन् सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ।
कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ।।१४

एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ।
प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ।।१५

क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान् ।
ब्रह्मरातो विचार्यैवं तदा देवाञ्जहास ह ।।१६

अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम् ।
श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ।।१७

सूतजी! आप हमें कोई ऐसा शाश्वत साधन बताइये जो सबसे अधिक कल्याणकारी तथा पवित्र करनेवालोंमें भी पवित्र हो; तथा जो भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करा दे ।।७।। चिन्तामणि केवल लौकिक सुख दे सकती है और कल्पवृक्ष अधिक-से-अधिक स्वर्गीय सम्पत्ति दे सकता है; परन्तु गुरुदेव प्रसन्न होकर भगवान्‌का योगिदुर्लभ नित्य वैकुण्ठधाम दे देते हैं ।।८।।

सूतजीने कहा—शौनकजी! तुम्हारे हृदयमें भगवान्‌का प्रेम है; इसलिये मैं विचारकर तुम्हें सम्पूर्ण सिद्धान्तोंका निष्कर्ष सुनाता हूँ, जो जन्म-मृत्युके भयका नाश कर देता है ।।९।। जो भक्तिके प्रवाहको बढ़ाता है और भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताका प्रधान कारण है, मैं तुम्हें वह साधन बतलाता हूँ; उसे सावधान होकर सुनो ।।१०।। श्रीशुकदेवजीने कलियुगमें जीवोंके कालरूपी सर्पके मुखका ग्रास होनेके त्रासका आत्यन्तिक नाश करनेके लिये श्रीमद्भागवतशास्त्रका प्रवचन किया है ।।११।। मनकी शुद्धिके लिये इससे बढ़कर कोई साधन नहीं है। जब मनुष्यके जन्म-जन्मान्तरका पुण्य उदय होता है, तभी उसे इस भागवतशास्त्रकी प्राप्ति होती है ।।१२।। जब शुकदेवजी राजा परीक्षित्‌को यह कथा सुनानेके लिये सभामें विराजमान हुए, तब देवतालोग उनके पास अमृतका कलश लेकर आये ।।१३।। देवता अपना काम बनानेमें बड़े कुशल होते हैं; अतः यहाँ भी सबने शुकदेवमुनिको नमस्कार करके कहा; 'आप यह अमृत लेकर बदलेमें हमें कथामृतका दान दीजिये ।।१४।। इस प्रकार परस्पर विनिमय (अदला-बदली) हो जानेपर राजा परीक्षित् अमृतका पान करें और हम सब श्रीमद्भागवतरूप अमृतका पान करेंगे' ।।१५।। इस संसारमें कहाँ काँच और कहाँ महामूल्य मणि तथा कहाँ सुधा और कहाँ कथा? श्रीशुकदेवजीने (यह सोचकर) उस समय देवताओंकी हँसी उड़ा दी ।।१६।। उन्हें भक्तिशून्य (कथाका अनधिकारी) जानकर कथामृतका दान नहीं

******ebook converter DEMO Watermarks*******

किया। इस प्रकार यह श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुर्लभ है ।।१७।।

राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धातापि विस्मितः ।
सत्यलोके तुलां बद्ध्वातोलयत्साधनान्यजः ।।१८
लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ।
तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ।।१९
मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
पठनाच्छ्रवणात्सद्यो वैकुण्ठफलदायकम् ।।२०
सप्ताहेन श्रुतं चैतत्सर्वथा मुक्तिदायकम् ।
सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ।।२१
यद्यपि ब्रह्मसम्बन्धाच्छ्रुतमेतत्सुरर्षिणा ।
सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ।।२२

शौनक उवाच

लोकविग्रहमुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ।
विधिश्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ।।२३

सूत उवाच

अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तियुक्तं कथानकम् ।
शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ।।२४
एकदा हि विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः ।
सत्सङ्गार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ।।२५

कुमारा ऊचुः

कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चिन्तातुरो भवान् ।
त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ।।२६
इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ।
तवेदं मुक्तसङ्गस्य नोचितं वद कारणम् ।।२७

नारद उवाच

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति ।
पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ।।२८
हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरङ्गं सेतुबन्धनम् ।
एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ।।२९
नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनःसंतोषकारकम् ।
कलिनाधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताधुना ।।३०

पूर्वकालमें श्रीमद्भागवतके श्रवणसे ही राजा परीक्षित्‌की मुक्ति देखकर ब्रह्माजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ था। उन्होंने सत्यलोकमें तराजू बाँधकर सब साधनोंको तौला ।।१८।। अन्य सभी साधन तौलमें हलके पड़ गये, अपने महत्त्वके कारण भागवत ही सबसे भारी रहा। यह देखकर सभी ऋषियोंको बड़ा विस्मय हुआ ।।१९।। उन्होंने कलियुगमें इस भगवद्रूप भागवतशास्त्रको ही पढ़ने-सुननेसे तत्काल मोक्ष देनेवाला निश्चय किया ।।२०।। सप्ताह-विधिसे श्रवण करनेपर यह निश्चय भक्ति प्रदान करता है। पूर्वकालमें इसे दयापरायण सनकादिने देवर्षि नारदको सुनाया था ।।२१।। यद्यपि देवर्षिने पहले ब्रह्माजीके मुखसे इसे श्रवण कर लिया था, तथापि सप्ताहश्रवणकी विधि तो उन्हें सनकादिने ही बतायी थी ।।२२।।

शौनकजीने पूछा—सांसारिक प्रपंचसे मुक्त एवं विचरणशील नारदजीका सनकादिके साथ संयोग कहाँ हुआ और विधि-विधानके श्रवणमें उनकी प्रीति कैसे हुई? ।।२३।।

सूतजीने कहा—अब मैं तुम्हें वह भक्तिपूर्ण कथानक सुनाता हूँ, जो श्रीशुकदेवजीने मुझे अपना अनन्य शिष्य जानकर एकान्तमें सुनाया था ।।२४।। एक दिन विशालापुरीमें वे चारों निर्मल ऋषि सत्संगके लिये आये। वहाँ उन्होंने नारदजीको देखा ।।२५।।

सनकादिने पूछा—ब्रह्मन्! आपका मुख उदास क्यों हो रहा है? आप चिन्तातुर कैसे हैं? इतनी जल्दी-जल्दी आप कहाँ जा रहे हैं? और आपका आगमन कहाँसे हो रहा है? ।।२६।। इस समय तो आप उस पुरुषके समान व्याकुल जान पड़ते हैं जिसका सारा धन लुट गया हो; आप-जैसे आसक्तिरहित पुरुषोंके लिये यह उचित नहीं है। इसका कारण बताइये ।।२७।।

नारदजीने कहा—मैं सर्वोत्तम लोक समझकर पृथ्वीमें आया था। यहाँ पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी (नासिक), हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग और सेतुबन्ध आदि कई तीर्थोंमें मैं इधर-उधर विचरता रहा; किन्तु मुझे कहीं भी मनको संतोष देनेवाली शान्ति नहीं मिली। इस समय अधर्मके सहायक कलि-युगने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रखा है ।।२८-३०।। अब यहाँ सत्य, तप, शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), दया, दान आदि कुछ भी नहीं है। बेचारे जीव केवल अपना पेट पालनेमें लगे हुए हैं; वे असत्यभाषी, आलसी, मन्दबुद्धि, भाग्यहीन, उपद्रवग्रस्त हो गये हैं। जो साधु-संत कहे जाते हैं वे पूरे पाखण्डी हो गये हैं; देखनेमें तो वे विरक्त हैं, किन्तु स्त्री-धन आदि सभीका परिग्रह करते हैं। घरोंमें स्त्रियोंका राज्य है, साले सलाहकार बने हुए हैं, लोभसे लोग कन्या-विक्रय करते हैं और स्त्री-पुरुषोंमें कलह मचा रहता है ।।३१-३३।। महात्माओंके आश्रम, तीर्थ और नदियोंपर यवनों (विधर्मियों) का अधिकार हो गया है; उन

******ebook converter DEMO Watermarks*******

दुष्टोंने बहुत-से देवालय भी नष्ट कर दिये हैं ।।३४।। इस समय यहाँ न कोई योगी है न सिद्ध है; न ज्ञानी है और न सत्कर्म करनेवाला ही है। सारे साधन इस समय कलिरूप दावानलसे जलकर भस्म हो गये हैं ।।३५।। इस कलियुगमें सभी देशवासी बाजारोंमें अन्न बेचने लगे हैं, ब्राह्मणलोग पैसा लेकर वेद पढ़ाते हैं और स्त्रियाँ वेश्या-वृत्तिसे निर्वाह करने लगी हैं।।३६।।

सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ।
उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ।।३१

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ।
पाखण्डनिरताः सन्तो विरक्ताः सपरिग्रहाः ।।३२

तरुणीप्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः ।
कन्याविक्रयिणो लोभाद्दम्पतीनां च कल्कनम् ।।३३

आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा ।
देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ।।३४

न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः ।
कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ।।३५

अट्टशूला* जनपदाः शिवशूला द्विजातयः ।
कामिन्यः केशशूलिन्यः सम्भवन्ति कलाविह ।।३६

एवं पश्यन् कलेर्दोषान् पर्यटन्नवनीमहम् ।
यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ।।३७

तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ।
एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ।।३८

वृद्धौ द्वौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्तावचेतनौ ।
शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदती च तयोः पुरः ।।३९

दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः ।
वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ।।४०

******ebook converter DEMO Watermarks*******

दृष्ट्वा दूराद्गतः सोऽहं कौतुकेन तदन्तिकम् ।
मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ।।४१

इस तरह कलियुगके दोष देखता और पृथ्वीपर विचरता हुआ मैं यमुनाजीके तटपर पहुँचा जहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों लीलाएँ हो चुकी हैं ।।३७।। मुनिवरो! सुनिये, वहाँ मैंने एक बड़ा आश्चर्य देखा। वहाँ एक युवती स्त्री खिन्न मनसे बैठी थी ।।३८।। उसके पास दो वृद्ध पुरुष अचेत अवस्थामें पड़े जोर-जोरसे साँस ले रहे थे। वह तरुणी उनकी सेवा करती हुई कभी उन्हें चेत करानेका प्रयत्न करती और कभी उनके आगे रोने लगती थी ।।३९।। वह अपने शरीरके रक्षक परमात्माको दशों दिशाओंमें देख रही थी। उसके चारों ओर सैकड़ों स्त्रियाँ उसे पंखा झल रही थीं और बार-बार समझाती जाती थीं ।।४०।। दूरसे यह सब चरित देखकर मैं कुतूहलवश उसके पास चला गया। मुझे देखकर वह युवती खड़ी हो गयी और बड़ी व्याकुल होकर कहने लगी ।।४१।।

बालोवाच

भो भोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिन्तामपि नाशय ।
दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाघहरं परम् ।।४२

बहुधा तव वाक्येन दुःखशान्तिर्भविष्यति ।
यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ।।४३

नारद उवाच

कासि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ।
वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ।।४४

बालोवाच

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ।।४५
गङ्गाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागताः ।
तथापि न च मे श्रेयः सेविताया सुरैरपि ।।४६
इदानीं शृणु मद्वार्तां सचित्तस्त्वं तपोधन ।
वार्ता मे विततापास्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ।।४७

******ebook converter DEMO Watermarks*******

उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता ।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ।।४८
तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गका ।
दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ।।४९
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ।
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ।।५०
इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् ।
इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ।।५१
जरठत्वं समायातौ तेन दुःखेन दुःखिता ।
साहं तु तरुणी कस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ।।५२
त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ।
घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ।।५३

युवतीने कहा—अजी महात्माजी! क्षणभर ठहर जाइये और मेरी चिन्ताको भी नष्ट कर दीजिये। आपका दर्शन तो संसारके सभी पापोंको सर्वथा नष्ट कर देनेवाला है ।।४२।। आपके वचनोंसे मेरे दुःखकी भी बहुत कुछ शान्ति हो जायगी। मनुष्यका जब बड़ा भाग्य होता है, तभी आपके दर्शन हुआ करते हैं ।।४३।।

नारदजी कहते हैं—तब मैंने उस स्त्रीसे पूछा—देवि! तुम कौन हो? ये दोनों पुरुष तुम्हारे क्या होते हैं? और तुम्हारे पास ये कमलनयनी देवियाँ कौन हैं? तुम हमें विस्तारसे अपने दुःखका कारण बताओ ।।४४।।

युवतीने कहा—मेरा नाम भक्ति है, ये ज्ञान और वैराग्य नामक मेरे पुत्र हैं। समयके फेरसे ही ये ऐसे जर्जर हो गये हैं ।।४५।। ये देवियाँ गंगाजी आदि नदियाँ हैं। ये सब मेरी सेवा करनेके लिये ही आयी हैं। इस प्रकार साक्षात् देवियोंके द्वारा सेवित होनेपर भी मुझे सुख-शान्ति नहीं है ।।४६।। तपोधन! अब ध्यान देकर मेरा वृत्तान्त सुनिये। मेरी कथा वैसे तो प्रसिद्ध है, फिर भी उसे सुनकर आप मुझे शान्ति प्रदान करें ।।४७।।

मैं द्रविड़ देशमें उत्पन्न हुई, कर्णाटकमें बढ़ी, कहीं-कहीं महाराष्ट्रमें सम्मानित हुई; किन्तु गुजरातमें मुझको बुढ़ापेने आ घेरा ।।४८।। वहाँ घोर कलियुगके प्रभावसे पाखण्डियोंने मुझे अंग-भंग कर दिया। चिरकालतक यह अवस्था रहनेके कारण मैं अपने पुत्रोंके साथ दुर्बल और निस्तेज हो गयी ।।४९।। अब जबसे मैं वृन्दावन आयी, तबसे पुनः परम सुन्दरी सुरूपवती नवयुवती हो गयी हूँ ।।५०।। किन्तु सामने पड़े हुए ये दोनों मेरे पुत्र थके-माँदे दुःखी हो रहे हैं। अब मैं यह स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना चाहती हूँ ।।५१।। ये दोनों बूढ़े हो गये हैं—इसी दुःखसे मैं दुःखी हूँ। मैं तरुणी क्यों और ये दोनों मेरे पुत्र बूढ़े क्यों? ।।५२।। हम तीनों साथ-साथ रहनेवाले हैं। फिर यह विपरीतता क्यों? होना तो यह चाहिये कि माता बूढ़ी

******ebook converter DEMO Watermarks*******

हो और पुत्र तरुण ।।५३।।

अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा ।
वद योगनिधे धीमन् कारणं चात्र किं भवेत् ।।५४

नारद उवाच

ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे ।
न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ।।५५

सूत उवाच

क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ।।५६

नारद उवाच

शृणुष्वावहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ।
तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ।।५७
जना अघासुरायन्ते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ।
इह सन्तो विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः ।
धत्ते धैर्यं तु यो धीमान् स धीरः पण्डितोऽथवा ।।५८
अस्पृश्यानवलोक्येयं शेषभारकरी धरा ।
वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मङ्गलं नापि दृश्यते ।।५९
न त्वामपि सुतैः साकं कोऽपि पश्यति साम्प्रतम् ।
उपेक्षितानुरागान्धैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ।।६०
वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ।।६१
अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुञ्चतः ।
किञ्चिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ।।६२

भक्तिरुवाच

कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ।
प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ।।६३

******ebook converter DEMO Watermarks*******

करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ।
इमं मे संशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखितास्म्यहम् ।।६४

इसीसे मैं आश्चर्यचकित चित्तसे अपनी इस अवस्थापर शोक करती रहती हूँ। आप परम बुद्धिमान् एवं योगनिधि हैं; इसका क्या कारण हो सकता है, बताइये? ।।५४।।

नारदजीने कहा—साध्वि! मैं अपने हृदयमें ज्ञानदृष्टिसे तुम्हारे सम्पूर्ण दुःखका कारण देखता हूँ, तुम्हें विषाद नहीं करना चाहिये। श्रीहरि तुम्हारा कल्याण करेंगे ।।५५।।

सूतजी कहते हैं—मुनिवर नारदजीने एक क्षणमें ही उसका कारण जानकर कहा ।।५६।।

नारदजीने कहा—देवि! सावधान होकर सुनो। यह दारुण कलियुग है। इसीसे इस समय सदाचार, योगमार्ग और तप आदि सभी लुप्त हो गये हैं ।।५७।। लोग शठता और दुष्कर्ममें लगकर अघासुर बन रहे हैं। संसारमें जहाँ देखो, वहीं सत्पुरुष दुःखसे म्लान हैं और दुष्ट सुखी हो रहे हैं। इस समय जिस बुद्धिमान् पुरुषका धैर्य बना रहे, वही बड़ा ज्ञानी या पण्डित है ।।५८।। पृथ्वी क्रमशः प्रतिवर्ष शेषजीके लिये भाररूप होती जा रही है। अब यह छूनेयोग्य तो क्या, देखनेयोग्य भी नहीं रह गयी है और न इसमें कहीं मंगल ही दिखायी देता है ।।५९।। अब किसीको पुत्रोंके साथ तुम्हारा दर्शन भी नहीं होता। विषयानुरागके कारण अंधे बने हुए जीवोंसे उपेक्षित होकर तुम जर्जर हो रही थी ।।६०।। वृन्दावनके संयोगसे तुम फिर नवीन तरुणी हो गयी हो। अतः यह वृन्दावनधाम धन्य है जहाँ भक्ति सर्वत्र नृत्य कर रही है ।।६१।। परंतु तुम्हारे इन दोनों पुत्रोंका यहाँ कोई ग्राहक नहीं है, इसलिये इनका बुढ़ापा नहीं छूट रहा है। यहाँ इनको कुछ आत्मसुख (भगवत्स्पर्शजनित आनन्द)-की प्राप्ति होनेके कारण ये सोते-से जान पड़ते हैं ।।६२।।

भक्तिने कहा—राजा परीक्षित्‌ने इस पापी कलियुगको क्यों रहने दिया? इसके आते ही सब वस्तुओंका सार न जाने कहाँ चला गया? ।।६३।। करुणामय श्रीहरिसे भी यह अधर्म कैसे देखा जाता है? मुने! मेरा यह संदेह दूर कीजिये, आपके वचनोंसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है ।।६४।।

नारद उवाच

यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु ।
सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ।।६५
यदा मुकुन्दो भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः ।
तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ।।६६
दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ।
न मया मारणीयोऽयं सारङ्ग इव सारभुक् ।।६७

******ebook converter DEMO Watermarks*******

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ।।६८
एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ।
विष्णुरातः स्थापितवान् कलिजानां सुखाय च ।।६९
कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ।
पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ।।७०
विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ।
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ।।७१
अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ।।७२
कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तपसि तपःसारस्ततो गतः ।।७३
मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात्पाखण्डसंश्रयात् ।
शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ।।७४
पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ।
पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ।।७५
न हि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदायपुरःसरा ।
एवं प्रलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ।।७६

नारदजीने कहा—बाले! यदि तुमने पूछा है तो प्रेमसे सुनो; कल्याणी! मैं तुम्हें सब बताऊँगा और तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा ।।६५।। जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण इस भूलोकको छोड़कर अपने परमधामको पधारे उसी दिनसे यहाँ सम्पूर्ण साधनोंमें बाधा डालनेवाला कलियुग आ गया ।।६६।। दिग्विजयके समय राजा परीक्षित्की दृष्टि पड़नेपर कलियुग दीनके समान उनकी शरणमें आया। भ्रमरके समान सारग्राही राजाने यह निश्चय किया कि इसका वध मुझे नहीं करना चाहिये ।।६७।। क्योंकि जो फल तपस्या, योग एवं समाधिसे भी नहीं मिलता, कलियुगमें वही फल श्रीहरिकीर्तनसे ही भलीभाँति मिल जाता है ।।६८।। इस प्रकार सारहीन होनेपर भी उसे इस एक ही दृष्टिसे सारयुक्त देखकर उन्होंने कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सुखके लिये ही इसे रहने दिया था ।।६९।।

इस समय लोगोंके कुकर्ममें प्रवृत्त होनेके कारण सभी वस्तुओंका सार निकल गया है और पृथ्वीके सारे पदार्थ बीजहीन भूसीके समान हो गये हैं ।।७०।। ब्राह्मण केवल अन्न-धनादिके लोभवश घर-घर एवं जन-जनको भागवतकी कथा सुनाने लगे हैं, इसलिये कथाका सार चला गया ।।७१।। तीर्थोंमें नाना प्रकारके अत्यन्त घोर कर्म करनेवाले, नास्तिक और नारकी पुरुष भी रहने लगे हैं; इसलिये तीर्थोंका भी प्रभाव जाता रहा ।।७२।। जिनका चित्त

******ebook converter DEMO Watermarks*******

निरन्तर काम, क्रोध, महान् लोभ और तृष्णासे तपता रहता है वे भी तपस्याका ढोंग करने लगे हैं, इसलिये तपका भी सार निकल गया ।।७३।। मनपर काबू न होनेके कारण तथा लोभ, दम्भ और पाखण्डका आश्रय लेनेके कारण एवं शास्त्रका अभ्यास न करनेसे ध्यानयोगका फल मिट गया ।।७४।। पण्डितोंकी यह दशा है कि वे अपनी स्त्रियोंके साथ पशुकी तरह रमण करते हैं; उनमें संतान पैदा करनेकी ही कुशलता पायी जाती है, मुक्ति-साधनमें वे सर्वथा अकुशल हैं ।।७५।। सम्प्रदायानुसार प्राप्त हुई वैष्णवता भी कहीं देखनेमें नहीं आती। इस प्रकार जगह-जगह सभी वस्तुओंका सार लुप्त हो गया है ।।७६।।

अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् ।
अतस्तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ।।७७

सूत उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ।
भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ।।७८

भक्तिरुवाच

सुरर्षे त्वं हि धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ।
साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ।।७९
जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते
वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ।।८०

यह तो इस युगका स्वभाव ही है, इसमें किसीका दोष नहीं है। इसीसे पुण्डरीकाक्षभगवान् बहुत समीप रहते हुए भी यह सब सह रहे हैं ।।७७।।

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! इस प्रकार देवर्षि नारदके वचन सुनकर भक्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ; फिर उसने जो कुछ कहा, उसे सुनिये ।।७८।।

भक्तिने कहा—देवर्षे! आप धन्य हैं! मेरा बड़ा सौभाग्य था जो आपका समागम हुआ। संसारमें साधुओंका दर्शन ही समस्त सिद्धियोंका परम कारण है ।।७९।। आपका केवल एक बारका उपदेश धारण करके कयाधूकुमार प्रह्लादने मायापर विजय प्राप्त कर ली थी। ध्रुवने भी आपकी कृपासे ही ध्रुवपद प्राप्त किया था। आप सर्वमंगलमय और साक्षात् श्रीब्रह्माजीके पुत्र हैं, मैं आपको नमस्कार करती हूँ ।।८०।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

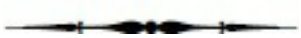

* अट्टमन्नं शिवो वेदः शूलो विक्रय उच्यते । केशो भगमिति प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ द्वितीयोऽध्यायः
भक्तिका दुःख दूर करनेके लिये नारदजीका उद्योग

नारद उवाच

वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ।।१
द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ।
पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः ।।२
त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ।
त्वयाऽऽहूतस्तु भगवान् याति नीचगृहेष्वपि ।।३
सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ।।४
इति निश्चित्य चिद्रूपः सद्रूपां त्वां ससर्ज ह ।
परमानन्दचिन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ।।५

नारदजीने कहा—बाले! तुम व्यर्थ ही अपनेको क्यों खेदमें डाल रही हो? अरे! तुम इतनी चिन्तातुर क्यों हो? भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करो, उनकी कृपासे तुम्हारा सारा दुःख दूर हो जायगा ।।१।। जिन्होंने कौरवोंके अत्याचारसे द्रौपदीकी रक्षा की थी और गोपसुन्दरियोंको सनाथ किया था, वे श्रीकृष्ण कहीं चले थोड़े ही गये हैं ।।२।। फिर तुम तो भक्ति हो और सदा उन्हें प्राणोंसे भी प्यारी हो; तुम्हारे बुलानेपर तो भगवान् नीचोंके घरोंमें भी चले जाते हैं ।।३।। सत्य, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंमें ज्ञान और वैराग्य मुक्तिके साधन थे; किन्तु कलियुगमें तो केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्य (मोक्ष)-की प्राप्ति करानेवाली है ।।४।। यह सोचकर ही परमानन्दचिन्मूर्ति ज्ञानस्वरूप श्रीहरिने अपने सत्स्वरूपसे तुम्हें रचा है; तुम साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रिया और परम सुन्दरी हो ।।५।। एक बार जब तुमने हाथ जोड़कर पूछा था कि 'मैं क्या करूँ?' तब भगवान्‌ने तुम्हें यही आज्ञा दी थी कि 'मेरे भक्तोंका पोषण करो।' ।।६।। तुमने भगवान्‌की वह आज्ञा स्वीकार कर ली; इससे तुमपर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए और तुम्हारी सेवा करनेके लिये मुक्तिको तुम्हें दासीके रूपमें दे दिया और इन ज्ञान-वैराग्यको पुत्रोंके रूपमें ।।७।। तुम अपने साक्षात् स्वरूपसे वैकुण्ठधाममें ही भक्तोंका पोषण करती हो, भूलोकमें तो तुमने उनकी पुष्टिके लिये केवल छायारूप धारण कर रखा है ।।८।।

बद्ध्वाञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ।
त्वां तदाऽऽज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान् पोषयेति च ।।६

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अङ्गीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ।
मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ।।७
पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च ।
भूमौ भक्तविपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ।।८
मुक्ति ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ।
कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ।।९
कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्डामयपीडिता ।
त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनरेव सा ।।१०
स्मृता त्वयापि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ।
पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ।।११
उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ।
तथापि चिन्तां मुञ्च त्वमुपायं चिन्तयाम्यहम् ।।१२
कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ।
तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ।।१३
अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ।
तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ।।१४
त्वदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ।
पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्णमन्दिरम् ।।१५
येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी ।
न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः ।।१६
न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वासुरोऽपि वा ।
भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ।।१७

तब तुम मुक्ति, ज्ञान और वैराग्यको साथ लिये पृथ्वीतलपर आयीं और सत्ययुगसे द्वापरपर्यन्त बड़े आनन्दसे रहीं ।।९।। कलियुगमें तुम्हारी दासी मुक्ति पाखण्डरूप रोगसे पीड़ित होकर क्षीण होने लगी थी, इसलिये वह तो तुरन्त ही तुम्हारी आज्ञासे वैकुण्ठलोकको चली गयी ।।१०।। इस लोकमें भी तुम्हारे स्मरण करनेसे ही वह आती है और फिर चली जाती है; किंतु इन ज्ञान-वैराग्यको तुमने पुत्र मानकर अपने पास ही रख छोड़ा है ।।११।। फिर भी कलियुगमें इनकी उपेक्षा होनेके कारण तुम्हारे ये पुत्र उत्साहहीन और वृद्ध हो गये हैं; फिर भी तुम चिन्ता न करो, मैं इनके नवजीवनका उपाय सोचता हूँ ।।१२।। सुमुखि! कलिके समान कोई भी युग नहीं है, इस युगमें मैं तुम्हें घर-घरमें प्रत्येक पुरुषके हृदयमें स्थापित कर दूँगा ।।१३।। देखो, अन्य सब धर्मोंको दबाकर और भक्तिविषयक महोत्सवोंको आगे रखकर

******ebook converter DEMO Watermarks*******

यदि मैंने लोकमें तुम्हारा प्रचार न किया तो मैं श्रीहरिका दास नहीं ।।१४।। इस कलियुगमें जो जीव तुमसे युक्त होंगे, वे पापी होनेपर भी बेखटके भगवान् श्रीकृष्णके अभय धामको प्राप्त होंगे ।।१५।। जिनके हृदयमें निरन्तर प्रेमरूपिणी भक्ति निवास करती है, वे शुद्धान्तःकरण पुरुष स्वप्नमें भी यमराजको नहीं देखते ।।१६।। जिनके हृदयमें भक्ति महारानीका निवास है, उन्हें प्रेत, पिशाच, राक्षस या दैत्य आदि स्पर्श करनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते ।।१७।।

न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ।
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ।।१८
नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ।
कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ।।१९
भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये ।
दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तविनिन्दकः ।।२०
अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ।
अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ।।२१

सूत उवाच

इति नारदनिर्णीतं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ।
सर्वाङ्गपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ।।२२

भक्तिरुवाच

अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ।
न कदाचिद्विमुञ्चामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ।।२३
कृपालुना त्वया साधो मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् ।
पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ।।२४

सूत उवाच

तस्या वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः ।
तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ।।२५
मुखं संयोज्य कर्णान्ते शब्दमुच्चैः समुच्चरन् ।
ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ।।२६

******ebook converter DEMO Watermarks*******

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ।
बोध्यमानौ तदा तेन कथंचिच्चोत्थितौ बलात् ।।२७
नेत्रैरनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसावुभौ ।
बकवत्पलितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमाङ्गकौ ।।२८

तप, वेदाध्ययन, ज्ञान और कर्म आदि किसी भी साधनसे भगवान् वशमें नहीं किये जा सकते; वे केवल भक्तिसे ही वशीभूत होते हैं। इसमें श्रीगोपीजन प्रमाण हैं ।।१८।। मनुष्योंका सहस्रों जन्मके पुण्य-प्रतापसे भक्तिमें अनुराग होता है। कलियुगमें केवल भक्ति, केवल भक्ति ही सार है। भक्तिसे तो साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र सामने उपस्थित हो जाते हैं ।।१९।। जो लोग भक्तिसे द्रोह करते हैं वे तीनों लोकोंमें दुःख-ही-दुःख पाते हैं। पूर्वकालमें भक्तका तिरस्कार करनेवाले दुर्वासा ऋषिको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था ।।२०।। बस, बस—व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ और ज्ञानचर्चा आदि बहुत-से साधनोंकी कोई आवश्यकता नहीं है; एकमात्र भक्ति ही मुक्ति देनेवाली है ।।२१।।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार नारदजीके निर्णय किये हुए अपने माहात्म्यको सुनकर भक्तिके सारे अंग पुष्ट हो गये और वे उनसे कहने लगीं ।।२२।।

भक्तिने कहा—नारदजी! आप धन्य हैं। आपकी मुझमें निश्चल प्रीति है। मैं सदा आपके हृदयमें रहूँगी, कभी आपको छोड़कर नहीं जाऊँगी ।।२३।। साधो! आप बड़े कृपालु हैं। आपने क्षणभरमें ही मेरा सारा दुःख दूर कर दिया। किन्तु अभी मेरे पुत्रोंमें चेतना नहीं आयी है; आप इन्हें शीघ्र ही सचेत कर दीजिये, जगा दीजिये ।।२४।।

सूतजी कहते हैं—भक्तिके ये वचन सुनकर नारदजीको बड़ी करुणा आयी और वे उन्हें हाथसे हिला-डुलाकर जगाने लगे ।।२५।। फिर उनके कानके पास मुँह लगाकर जोरसे कहा, 'ओ ज्ञान! जल्दी जग पड़ो; ओ वैराग्य! जल्दी जग पड़ो।' ।।२६।। फिर उन्होंने वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बार-बार गीतापाठ करके उन्हें जगाया; इससे वे जैसे-तैसे बहुत जोर लगाकर उठे ।।२७।। किन्तु आलस्यके कारण वे दोनों जँभाई लेते रहे, नेत्र उघाड़कर देख भी नहीं सके। उनके बाल बगुलोंकी तरह सफेद हो गये थे, उनके अंग प्रायः सूखे काठके समान निस्तेज और कठोर हो गये थे ।।२८।। इस प्रकार भूख-प्यासके मारे अत्यन्त दुर्बल होनेके कारण उन्हें फिर सोते देख नारदजीको बड़ी चिन्ता हुई और वे सोचने लगे, 'अब मुझे क्या करना चाहिये? ।।२९।। इनकी यह नींद और इससे भी बढ़कर इनकी वृद्धावस्था कैसे दूर हो?' शौनकजी! इस प्रकार चिन्ता करते-करते वे भगवान्का स्मरण करने लगे ।।३०।। उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि 'मुने! खेद मत करो, तुम्हारा यह उद्योग निःसंदेह सफल होगा ।।३१।। देवर्षे! इसके लिये तुम एक सत्कर्म करो, वह कर्म तुम्हें संतशिरोमणि महानुभाव बतायेंगे ।।३२।। उस सत्कर्मका अनुष्ठान करते ही क्षणभरमें इनकी नींद और वृद्धावस्था चली जायँगी तथा सर्वत्र भक्तिका प्रसार होगा' ।।३३।। यह आकाशवाणी वहाँ सभीको साफ-साफ सुनाई दी। इससे नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ और वे कहने लगे, 'मुझे तो इसका कुछ आशय समझमें नहीं आया' ।।३४।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ ।
ऋषिश्चिन्तापरो जातः किं विधेयं मयेति च ।।२९
अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरम् ।
चिन्तयन्निति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ।।३०
व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ।
उद्यमः सफलस्तेऽयं भविष्यति न संशयः ।।३१
एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ।
तत्ते कर्माभिधास्यन्ति साधवः साधुभूषणाः ।।३२
सत्कर्मणि कृते तस्मिन् सनिद्रा वृद्धतानयोः ।
गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ।।३३
इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् ।
नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ।।३४

नारद उवाच

अनयाऽऽकाशवाण्यापि गोप्यत्वेन निरूपितम् ।
किं वा तत्साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः ।।३५
क्व भविष्यन्ति सन्तस्ते कथं दास्यन्ति साधनम् ।
मयात्र किं प्रकर्तव्यं यदुक्तं व्योमभाषया ।।३६

सूत उवाच

तत्र द्वावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः ।
तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ।।३७
वृत्तान्तः श्रूयते सर्वैः किञ्चिन्निश्चित्य नोच्यते ।
असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ।
मूकीभूतास्तथान्ये तु कियन्तस्तु पलायिताः ।।३८

नारदजी बोले—इस आकाशवाणीने भी गुप्त-रूपमें ही बात कही है। यह नहीं बताया कि वह कौन-सा साधन किया जाय जिससे इनका कार्य सिद्ध हो ।।३५।। वे संत न जाने कहाँ मिलेंगे और किस प्रकार उस साधनको बतायेंगे? अब आकाश-वाणीने जो कुछ कहा है, उसके अनुसार मुझे क्या करना चाहिये? ।।३६।।

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! तब ज्ञान-वैराग्य दोनोंको वहीं छोड़कर नारदमुनि वहाँसे

******ebook converter DEMO Watermarks*******

चल पड़े और प्रत्येक तीर्थमें जा-जाकर मार्गमें मिलनेवाले मुनीश्वरोंसे वह साधन पूछने लगे ।।३७।। उनकी उस बातको सुनते तो सब थे, किंतु उसके विषयमें कोई कुछ भी निश्चित उत्तर न देता। किन्हींने उसे असाध्य बताया; कोई बोले—'इसका ठीक-ठीक पता लगना ही कठिन है।' कोई सुनकर चुप रह गये और कोई-कोई तो अपनी अवज्ञा होनेके भयसे बातको टाल-टूलकर खिसक गये ।।३८।। त्रिलोकीमें महान् आश्चर्यजनक हाहाकार मच गया। लोग आपसमें कानाफूसी करने लगे—'भाई! जब वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बार-बार गीतापाठ सुनानेपर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जगाये जा सके, तब और कोई उपाय नहीं है ।।३९-४०।। स्वयं योगिराज नारदको भी जिसका ज्ञान नहीं है, उसे दूसरे संसारी लोग कैसे बता सकते हैं?' ।।४१।। इस प्रकार जिन-जिन ऋषियोंसे इसके विषयमें पूछा गया, उन्होंने निर्णय करके यही कहा कि यह बात दुःसाध्य ही है ।।४२।।

हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये विस्मयावहः ।
वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ।।३९
भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ।
उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ।।४०
योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत् ।
तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ।।४१
एवमृषिगणैः पृष्टैर्निर्णीयोक्तं दुरासदम् ।।४२
ततश्चिन्तातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः ।
तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ।।४३
तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ।
कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ।।४४

नारद उवाच

इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः सङ्गमोऽभवत् ।
कुमारा ब्रुवतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ।।४५
भवन्तो योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ।
पञ्चहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ।।४६
सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः ।
लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ।।४७
हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः ।
अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ।।४८

******ebook converter DEMO Watermarks*******

येषां भ्रूभङ्गमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ।
भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः पुरं गतौ ।।४९
अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह ।
अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयापरैः ।।५०

तब नारदजी बहुत चिन्तातुर हुए और बदरीवनमें आये। ज्ञान-वैराग्यको जगानेके लिये वहाँ उन्होंने यह निश्चय किया कि 'मैं तप करूँगा' ।।४३।। इसी समय उन्हें अपने सामने करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी सनकादि मुनीश्वर दिखायी दिये। उन्हें देखकर वे मुनिश्रेष्ठ कहने लगे ।।४४।।

नारदजीने कहा—महात्माओ! इस समय बड़े भाग्यसे मेरा आपलोगोंके साथ समागम हुआ है, आप मुझपर कृपा करके शीघ्र ही वह साधन बताइये ।।४५।। आप सभी लोग बड़े योगी, बुद्धिमान् और विद्वान् हैं। आप देखनेमें पाँच-पाँच वर्षके बालक-से जान पड़ते हैं, किंतु हैं पूर्वजोंके भी पूर्वज ।।४६।। आपलोग सदा वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं, निरन्तर हरिकीर्तनमें तत्पर रहते हैं, भगवल्लीलामृतका रसास्वादन कर सदा उसीमें उन्मत्त रहते हैं और एकमात्र भगवत्कथा ही आपके जीवनका आधार है ।।४७।। 'हरिः शरणम्' (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) यह वाक्य (मन्त्र) सर्वदा आपके मुखमें रहता है; इसीसे कालप्रेरित वृद्धावस्था भी आपको बाधा नहीं पहुँचाती ।।४८।। पूर्वकालमें आपके भ्रूभंगमात्रसे भगवान् विष्णुके द्वारपाल जय और विजय तुरंत पृथ्वीपर गिर गये थे और फिर आपकी ही कृपासे वे पुनः वैकुण्ठलोक पहुँच गये ।।४९।। धन्य है, इस समय आपका दर्शन बड़े सौभाग्यसे ही हुआ है। मैं बहुत दीन हूँ और आपलोग स्वभावसे ही दयालु हैं; इसलिये मुझपर आपको अवश्य कृपा करनी चाहिये ।।५०।।

अशरीरगिरोक्तं यत्तत्किं साधनमुच्यताम् ।
अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ।।५१
भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् ।
स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ।।५२

कुमारा ऊचुः

मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ।
उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ।।५३
अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ।
सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ।।५४
त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

घटते कृष्णदासस्य भक्तेः संस्थापना सदा ।।५५
ऋषिभिर्बहवो लोके पन्थानः प्रकटीकृताः ।
श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ।।५६
वैकुण्ठसाधकः पन्थाः स तु गोप्यो हि वर्तते ।
तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ।।५७
सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत्पुरा ।
तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ।।५८
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः ।।५९
सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ।
श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ।।६०
भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ।
व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ।।६१
प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः ।
कलेर्दोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद् वृका इव ।।६२

बताइये—आकाशवाणीने जिसके विषयमें कहा है, वह कौन-सा साधन है, और मुझे किस प्रकार उसका अनुष्ठान करना चाहिये। आप इसका विस्तारसे वर्णन कीजिये ।।५१।। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको किस प्रकार सुख मिल सकता है? और किस तरह इनकी प्रेमपूर्वक सब वर्णोंमें प्रतिष्ठा की जा सकती है?' ।।५२।।

सनकादिने कहा—देवर्षे! आप चिन्ता न करें, मनमें प्रसन्न हों; उनके उद्धारका एक सरल उपाय पहलेसे ही विद्यमान है ।।५३।। नारदजी! आप धन्य हैं। आप विरक्तोंके शिरोमणि हैं। श्रीकृष्ण-दासोंके शाश्वत पथ-प्रदर्शक एवं भक्तियोगके भास्कर हैं ।।५४।। आप भक्तिके लिये जो उद्योग कर रहे हैं, यह आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये। भगवान्‌के भक्तके लिये तो भक्तिकी सम्यक् स्थापना करना सदा उचित ही है ।।५५।। ऋषियोंने संसारमें अनेकों मार्ग प्रकट किये हैं; किंतु वे सभी कष्टसाध्य हैं और परिणाममें प्रायः स्वर्गकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं ।।५६।। अभीतक भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला मार्ग तो गुप्त ही रहा है। उसका उपदेश करनेवाला पुरुष प्रायः भाग्यसे ही मिलता है ।।५७।। आपको आकाशवाणीने जिस सत्कर्मका संकेत किया है, उसे हम बतलाते हैं; आप प्रसन्न और समाहितचित्त होकर सुनिये ।।५८।।

नारदजी! द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ और स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ—ये सब तो स्वर्गादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मकी ही ओर संकेत करते हैं ।।५९।। पण्डितोंने ज्ञानयज्ञको ही सत्कर्म (मुक्तिदायक कर्म)-का सूचक माना है। वह श्रीमद्भागवतका पारायण है, जिसका

******ebook converter DEMO Watermarks*******

गान शुकादि महानुभावोंने किया है ।।६०।। उसके शब्द सुननेसे ही भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बड़ा बल मिलेगा। इससे ज्ञान-वैराग्यका कष्ट मिट जायगा और भक्तिको आनन्द मिलेगा ।।६१।। सिंहकी गर्जना सुनकर जैसे भेड़िये भाग जाते हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी ध्वनिसे कलियुगके सारे दोष नष्ट हो जायँगे ।।६२।।

ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा ।
प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ।।६३

नारद उवाच

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ।।६४
श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ।
तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ।।६५
छिन्दन्तु संशयं ह्येनं भवन्तोऽमोघदर्शनाः ।
विलम्बो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलाः ।।६६

कुमारा ऊचुः

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ।
अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलाकृतिः ।।६७
आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वाद्यते यथा ।
स भूयः संपृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ।।६८
यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ।
पृथग्भूतं हि तद्गव्यं देवानां रसवर्धनम् ।।६९
ईक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ।
पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ।।७०
इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ।।७१
वेदान्तवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि ।
परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ।।७२
तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् ।
तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ।।७३

******ebook converter DEMO Watermarks*******

तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान् ।
श्रीमद्भागवतं श्राव्यं शोकदुःखविनाशनम् ।।७४

तब प्रेमरस प्रवाहित करनेवाली भक्ति ज्ञान और वैराग्यको साथ लेकर प्रत्येक घर और व्यक्तिके हृदयमें क्रीड़ा करेगी ।।६३।।

नारदजीने कहा—मैंने वेद-वेदान्तकी ध्वनि और गीतापाठ करके उन्हें बहुत जगाया, किंतु फिर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जगे ।।६४।। ऐसी स्थितिमें श्रीमद्भागवत सुनानेसे वे कैसे जगेंगे? क्योंकि उस कथाके प्रत्येक श्लोक और प्रत्येक पदमें भी वेदोंका ही तो सारांश है ।।६५।। आपलोग शरणागतवत्सल हैं तथा आपका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं होता; इसलिये मेरा यह संदेह दूर कर दीजिये, इस कार्यमें विलम्ब न कीजिये ।।६६।।

सनकादिने कहा—श्रीमद्भागवतकी कथा वेद और उपनिषदोंके सारसे बनी है। इसलिये उनसे अलग उनकी फलरूपा होनेके कारण वह बड़ी उत्तम जान पड़ती है ।।६७।। जिस प्रकार रस वृक्षकी जड़से लेकर शाखाग्रपर्यन्त रहता है, किंतु इस स्थितिमें उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता; वही जब अलग होकर फलके रूपमें आ जाता है, तब संसारमें सभीको प्रिय लगने लगता है ।।६८।। दूधमें घी रहता ही है, किन्तु उस समय उसका अलग स्वाद नहीं मिलता; वही जब उससे अलग हो जाता है, तब देवताओंके लिये भी स्वादवर्धक हो जाता है ।।६९।। खाँड ईखके ओर-छोर और बीचमें भी व्याप्त रहती है, तथापि अलग होनेपर उसकी कुछ और ही मिठास होती है। ऐसी ही यह भागवतकी कथा है ।।७०।। यह भागवतपुराण वेदोंके समान है। श्रीव्यासदेवने इसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी स्थापनाके लिये प्रकाशित किया है ।।७१।। पूर्वकालमें जिस समय वेद-वेदान्तके पारगामी और गीताकी भी रचना करनेवाले भगवान् व्यासदेव खिन्न होकर अज्ञानसमुद्रमें गोते खा रहे थे, उस समय आपने ही उन्हें चार श्लोकोंमें इसका उपदेश किया था। उसे सुनते ही उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी थी ।।७२-७३।। फिर इसमें आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है, जो आप हमसे प्रश्न कर रहे हैं? आपको उन्हें शोक और दुःखका विनाश करनेवाला श्रीमद्भागवत-पुराण ही सुनाना चाहिये ।।७४।।

नारद उवाच

यद्दर्शनं च विनिहन्त्यशुभानि सद्यः
श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ।
निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानाः
प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ।।७५
भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन
सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकार-
नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ।।७६

नारदजीने कहा—महानुभावो! आपका दर्शन जीवके सम्पूर्ण पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है और जो संसार-दुःखरूप दावानलसे तपे हुए हैं उनपर शीघ्र ही शान्तिकी वर्षा करता है। आप निरन्तर शेषजीके सहस्र मुखोंसे गाये हुए भगवत्कथामृतका ही पान करते रहते हैं। मैं प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रकाश करनेके उद्देश्यसे आपकी शरण लेता हूँ ।।७५।। जब अनेकों जन्मोंके संचित पुण्यपुंजका उदय होनेसे मनुष्यको सत्संग मिलता है, तब वह उसके अज्ञान-जनित मोह और मदरूप अन्धकारका नाश करके विवेक उदय होता है ।।७६।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसंवादो नाम
द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ तृतीयोऽध्यायः
भक्तिके कष्टकी निवृत्ति

नारद उवाच

ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ।।१
कुत्र कार्यो मया यज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह ।
महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ।।२
कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
को विधिस्तत्र कर्तव्यो ममेदं ब्रुवतामितः ।।३

कुमारा ऊचुः

शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने ।
गङ्गाद्वारसमीपे तु तटमानन्दनामकम् ।।४
नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम् ।
नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ।।५
रम्यमेकान्तदेशस्थं हेमपद्मसुसौरभम् ।
यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ।।६

नारदजी कहते हैं—अब मैं भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको स्थापित करनेके लिये प्रयत्नपूर्वक श्रीशुकदेवजीके कहे हुए भागवतशास्त्रकी कथाद्वारा उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूँगा ।।१।। यह यज्ञ मुझे कहाँ करना चाहिये, आप इसके लिये कोई स्थान बता दीजिये। आपलोग वेदके पारगामी हैं, इसलिये मुझे इस शुकशास्त्रकी महिमा सुनाइये ।।२।। यह भी बताइये कि श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनोंमें सुनानी चाहिये और उसके सुननेकी विधि क्या है ।।३।।

सनकादि बोले—नारदजी! आप बड़े विनीत और विवेकी हैं। सुनिये, हम आपको ये सब बातें बताते हैं। हरिद्वारके पास आनन्द नामका एक घाट है ।।४।। वहाँ अनेकों ऋषि रहते हैं तथा देवता और सिद्धलोग भी उसका सेवन करते रहते हैं। भाँति-भाँतिके वृक्ष और लताओंके कारण वह बड़ा सघन है और वहाँ बड़ी कोमल नवीन बालू बिछी हुई है ।।५।। वह घाट बड़ा ही सुरम्य और एकान्त प्रदेशमें है, वहाँ हर समय सुनहले कमलोंकी सुगन्ध आया करती है। उसके आस-पास रहनेवाले सिंह, हाथी आदि परस्पर-विरोधी जीवोंके चित्तमें भी

******ebook converter DEMO Watermarks*******

वैरभाव नहीं है ।।६।। वहाँ आप बिना किसी विशेष प्रयत्नके ही ज्ञानयज्ञ आरम्भ कर दीजिये, उस स्थानपर कथामें अपूर्व रसका उदय होगा ।।७।। भक्ति भी अपनी आँखोंके ही सामने निर्बल और जराजीर्ण अवस्थामें पड़े हुए ज्ञान और वैराग्यको साथ लेकर वहाँ आ जायगी ।।८।। क्योंकि जहाँ भी श्रीमद्भागवतकी कथा होती है वहाँ ये भक्ति आदि अपने-आप पहुँच जाते हैं। वहाँ कानोंमें कथाके शब्द पड़नेसे ये तीनों तरुण हो जायँगे ।।९।।

ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ।
अपूर्वरसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ।।७
पुरःस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णकलेवरम् ।
तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्रागमिष्यति ।।८
यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ।
कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं तरुणायते ।।९

सूत उवाच

एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ।
गङ्गातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ।।१०
यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् ।
भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ।।११
श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ।
धावन्तोऽप्याययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ।।१२
भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो
मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ।
रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो
मृकण्डुपुत्रात्रिजपिप्पलादाः ।।१३
योगेश्वरौ व्यासपराशरौ च
छायाशुको जाजलिजह्नुमुख्याः ।
सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः
स्वस्त्रीभिराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ।।१४
वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राः समूर्तयः ।
दशसप्तपुराणानि षट्शास्त्राणि तथाऽऽययुः ।।१५
गङ्गाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च ।
क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकादिवनानि च ।।१६

******ebook converter DEMO Watermarks*******

नगादयो ययुस्तत्र देवगन्धर्वदानवाः ।
गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः सम्बोध्य चानयत् ।।१७
दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासनमुत्तमम् ।
कुमारा वन्दिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ।।१८
वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ।
मुखभागे स्थितास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ।।१९

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर नारदजीके साथ सनकादि भी श्रीमद्भागवतकथामृतका पान करनेके लिये वहाँसे तुरंत गंगातटपर चले आये ।।१०।। जिस समय वे तटपर पहुँचे, भूलोक, देवलोक और ब्रह्मलोक—सभी जगह इस कथाका हल्ला हो गया ।।११।। जो-जो भगवत्कथाके रसिक विष्णुभक्त थे, वे सभी श्रीमद्भागवतामृतका पान करनेके लिये सबसे आगे दौड़-दौड़कर आने लगे ।।१२।। भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, पिप्पलाद, योगेश्वर व्यास और पराशर, छायाशुक, जाजलि और जह्नु आदि सभी प्रधान-प्रधान मुनिगण अपने-अपने पुत्र, शिष्य और स्त्रियोंसमेत बड़े प्रेमसे वहाँ आये ।।१३-१४।। इनके सिवा वेद, वेदान्त (उपनिषद्), मन्त्र, तन्त्र, सत्रह पुराण और छहों शास्त्र भी मूर्तिमान् होकर वहाँ उपस्थित हुए ।।१५।।

गंगा आदि नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर, कुरुक्षेत्र आदि समस्त क्षेत्र, सारी दिशाएँ, दण्डक आदि वन, हिमालय आदि पर्वत तथा देव, गन्धर्व और दानव आदि सभी कथा सुनने चले आये। जो लोग अपने गौरवके कारण नहीं आये, महर्षि भृगु उन्हें समझा-बुझाकर ले आये ।।१६-१७।।

तब कथा सुनानेके लिये दीक्षित होकर श्रीकृष्णपरायण सनकादि नारदजीके दिये हुए श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए। उस समय सभी श्रोताओंने उनकी वन्दना की ।।१८।। श्रोताओंमें वैष्णव, विरक्त, संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग आगे बैठे और उन सबके आगे नारदजी विराजमान हुए ।।१९।।

एकभागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः ।
वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियोऽन्यतः ।।२०
जयशब्दो नमःशब्दः शङ्खशब्दस्तथैव च ।
चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ।।२१
विमानानि समारुह्य कियन्तो देवनायकाः ।
कल्पवृक्षप्रसूनैस्तान् सर्वांस्तत्र समाकिरन् ।।२२

सूत उवाच

******ebook converter DEMO Watermarks*******

एवं तेष्वेकचित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च ।
माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ।।२३

कुमारा ऊचुः

अथ ते वर्ण्यतेऽस्माभिर्महिमा शुकशास्त्रजः ।
यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ।।२४
सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ।।२५
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसम्मितः ।
परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च तत् ।।२६
तावत्संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् ।
यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम् ।।२७
किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ।
एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ।।२८
कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे ।
तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ।।२९
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।३०
तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसन्ति तपोधनाः ।
यावन्न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरैः ।।३१
न गङ्गा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ।
शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ।।३२

एक ओर ऋषिगण, एक ओर देवता, एक ओर वेद और उपनिषदादि तथा एक ओर तीर्थ बैठे, और दूसरी ओर स्त्रियाँ बैठीं ।।२०।। उस समय सब ओर जय-जयकार, नमस्कार और शंखोंका शब्द होने लगा और अबीर-गुलाल, खील एवं फूलोंकी खूब वर्षा होने लगी ।।२१।। कोई-कोई देवश्रेष्ठ तो विमानोंपर चढ़कर वहाँ बैठे हुए सब लोगोंपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ।।२२।।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार पूजा समाप्त होनेपर जब सब लोग एकाग्रचित्त हो गये, तब सनकादि ऋषि महात्मा नारदको श्रीमद्भागवतका माहात्म्य स्पष्ट करके सुनाने लगे ।।२३।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सनकादिने कहा—अब हम आपको इस भागवतशास्त्रकी महिमा सुनाते हैं। इसके श्रवणमात्रसे मुक्ति हाथ लग जाती है ।।२४।। श्रीमद्भागवतकी कथाका सदा-सर्वदा सेवन, आस्वादन करना चाहिये। इसके श्रवणमात्रसे श्रीहरि हृदयमें आ विराजते हैं ।।२५।। इस ग्रन्थमें अठारह हजार श्लोक और बारह स्कन्ध हैं तथा श्रीशुकदेव और राजा परीक्षित्का संवाद है। आप यह भागवतशास्त्र ध्यान देकर सुनिये ।।२६।। यह जीव तभीतक अज्ञानवश इस संसारचक्रमें भटकता है, जबतक क्षणभरके लिये भी कानोंमें इस शुकशास्त्र-की कथा नहीं पड़ती ।।२७।। बहुत-से शास्त्र और पुराण सुननेसे क्या लाभ है, इससे तो व्यर्थका भ्रम बढ़ता है। मुक्ति देनेके लिये तो एकमात्र भागवतशास्त्र ही गरज रहा है ।।२८।। जिस घरमें नित्यप्रति श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वह तीर्थरूप हो जाता है और जो लोग उसमें रहते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ।।२९।। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ इस शुकशास्त्रकी कथाका सोलहवाँ अंश भी नहीं हो सकते ।।३०।। तपोधनो! जबतक लोग अच्छी तरह श्रीमद्भागवतका श्रवण नहीं करते, तभीतक उनके शरीरमें पाप निवास करते हैं ।।३१।। फलकी दृष्टिसे इस शुकशास्त्रकथाकी समता गंगा, गया, काशी, पुष्कर या प्रयाग —कोई तीर्थ भी नहीं कर सकता ।।३२।।

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ।
पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ।।३३
वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च ।
त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च ।।३४
द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः ।
ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा ।।३५
तुलसी च वसन्तश्च पुरुषोत्तम एव च ।
एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते ।।३६
यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम् ।
जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ।।३७
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः ।
नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ।।३८
उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिन्तनम् ।
तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ।।३९
अन्तकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ।
प्रीत्या तस्यैव वैकुण्ठं गोविन्दोऽपि प्रयच्छति ।।४०
हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ।
कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ।।४१

******ebook converter DEMO Watermarks*******

आजन्ममात्रमपि येन शठेन किञ्चि-
च्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ।
चाण्डालवच्च खरवद्धृत तेन नीतं
मिथ्या स्वजन्म जननीजनिदुःखभाजा ।।४२
जीवच्छवोनिगदितः स तु पापकर्मा
येन श्रुतं शुककथावचनं न किञ्चित् ।
धिक् तं नरं पशुसमं भुवि भाररूप-
मेवं वदन्ति दिवि देवसमाजमुख्याः ।।४३
दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा ।
कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ।।४४
तेन योगनिधे धीमन् श्रोतव्या सा प्रयत्नतः ।
दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ।।४५

यदि आपको परम गतिकी इच्छा है तो अपने मुखसे ही श्रीमद्भागवतके आधे अथवा चौथाई श्लोकका भी नित्य नियमपूर्वक पाठ कीजिये ।।३३।। ॐकार, गायत्री, पुरुषसूक्त, तीनों वेद, श्रीमद्भागवत **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—यह द्वादशाक्षर मन्त्र, बारह मूर्तियोंवाले सूर्यभगवान्, प्रयाग, संवत्सररूप काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, गौ, द्वादशी तिथि, तुलसी, वसन्त ऋतु और भगवान् पुरुषोत्तम—इन सबमें बुद्धिमान् लोग वस्तुतः कोई अन्तर नहीं मानते ।।३४-३६।। जो पुरुष अहर्निश अर्थसहित श्रीमद्भागवतशास्त्रका पाठ करता है, उसके करोड़ों जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।।३७।। जो पुरुष नित्यप्रति भागवतका आधा या चौथाई श्लोक भी पढ़ता है, उसे राजसूय और अश्वमेधयज्ञोंका फल मिलता है ।।३८।। नित्य भागवतका पाठ करना, भगवान्का चिन्तन करना, तुलसीको सींचना और गौकी सेवा करना—ये चारों समान हैं ।।३९।। जो पुरुष अन्तसमयमें श्रीमद्भागवतका वाक्य सुन लेता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् उसे वैकुण्ठधाम देते हैं ।।४०।। जो पुरुष इसे सोनेके सिंहासनपर रखकर विष्णुभक्तको दान करता है, वह अवश्य ही भगवान्का सायुज्य प्राप्त करता है ।।४१।।

जिस दुष्टने अपनी सारी आयुमें चित्तको एकाग्र करके श्रीमद्भागवतामृतका थोड़ा-सा भी रसास्वादन नहीं किया, उसने तो अपना सारा जन्म चाण्डाल और गधेके समान व्यर्थ ही गँवा दिया; वह तो अपनी माताको प्रसव-पीड़ा पहुँचानेके लिये ही उत्पन्न हुआ ।।४२।। जिसने इस शुकशास्त्रके थोड़े-से भी वचन नहीं सुने, वह पापात्मा तो जीता हुआ ही मुर्देके समान है । 'पृथ्वीके भारस्वरूप उस पशुतुल्य मनुष्यको धिक्कार है'—यों स्वर्गलोकमें देवताओंमें प्रधान इन्द्रादि कहा करते हैं ।।४३।।

संसारमें श्रीमद्भागवतकी कथाका मिलना अवश्य ही कठिन है; जब करोड़ों जन्मोंका पुण्य होता है, तभी इसकी प्राप्ति होती है ।।४४।। नारदजी! आप बड़े ही बुद्धिमान् और

******ebook converter DEMO Watermarks*******

योगनिधि हैं। आप प्रयत्नपूर्वक कथाका श्रवण कीजिये। इसे सुननेके लिये दिनोंका कोई नियम नहीं है, इसे तो सर्वदा ही सुनना अच्छा है ।।४५।। इसे सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक सर्वदा ही सुनना श्रेष्ठ माना गया है। किन्तु कलियुगमें ऐसा होना कठिन है; इसलिये इसकी शुकदेवजीने जो विशेष विधि बतायी है, वह जान लेनी चाहिये ।।४६।। कलियुगमें बहुत दिनोंतक चित्तकी वृत्तियोंको वशमें रखना, नियमोंमें बँधे रहना और किसी पुण्यकार्यके लिये दीक्षित रहना कठिन है; इसलिये सप्ताहश्रवणकी विधि है ।।४७।। श्रद्धापूर्वक कभी भी श्रवण करनेसे अथवा माघमासमें श्रवण करनेसे जो फल होता है, वही फल श्रीशुकदेवजीने सप्ताहश्रवणमें निर्धारित किया है ।।४८।। मनके असंयम, रोगोंकी बहुलता और आयुकी अल्पताके कारण तथा कलियुगमें अनेकों दोषोंकी सम्भावनासे ही सप्ताहश्रवणका विधान किया गया है ।।४९।। जो फल तप, योग और समाधिसे भी प्राप्त नहीं हो सकता, वह सर्वांगरूपमें सप्ताहश्रवणसे सहजमें ही मिल जाता है ।।५०।। सप्ताहश्रवण यज्ञसे बढ़कर है, व्रतसे बढ़कर है, तपसे कहीं बढ़कर है। तीर्थसेवनसे तो सदा ही बड़ा है, योगसे बढ़कर है—यहाँतक कि ध्यान और ज्ञानसे भी बढ़कर है, अजी! इसकी विशेषताका कहाँतक वर्णन करें, यह तो सभीसे बढ़-चढ़कर है ।।५१-५२।।

सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् ।
अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्र शुकाज्ञया ।।४६
मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा ।
दीक्षा कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम् ।।४७
श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलम् ।
तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ।।४८
मनसश्चाजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् ।
कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ।।४९
यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणे लभेत् ।।५०
यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् ।
तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति ।।५१
योगाद्गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति ।
किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ।।५२

शौनक उवाच

साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं
ज्ञानादिधर्मान् विगणय्य साम्प्रतम् ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

निःश्रेयसे भागवतं पुराणं
जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ।।५३

सूत उवाच

यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुमुद्यतः ।
एकादशं परिश्रुत्याप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ।।५४

उद्धव उवाच

त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च ।
मच्चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखमावह ।।५५

शौनकजीने पूछा—सूतजी! यह तो आपने बड़े आश्चर्यकी बात कही। अवश्य ही यह भागवतपुराण योगवेत्ता ब्रह्माजीके भी आदिकारण श्रीनारायणका निरूपण करता है; परन्तु यह मोक्षकी प्राप्तिमें ज्ञानादि सभी साधनोंका तिरस्कार करके इस युगमें उनसे भी कैसे बढ़ गया? ।।५३।।

सूतजीने कहा—शौनकजी! जब भगवान् श्रीकृष्ण इस धराधामको छोड़कर अपने नित्यधामको जाने लगे, तब उनके मुखारविन्दसे एकादश स्कन्धका ज्ञानोपदेश सुनकर भी उद्धवजीने पूछा ।।५४।।

उद्धवजी बोले—गोविन्द! अब आप तो अपने भक्तोंका कार्य करके परमधामको पधारना चाहते हैं; किन्तु मेरे मनमें एक बड़ी चिन्ता है। उसे सुनकर आप मुझे शान्त कीजिये ।।५५।। अब घोर कलिकाल आया ही समझिये, इसलिये संसारमें फिर अनेकों दुष्ट प्रकट हो जायँगे; उनके संसर्गसे जब अनेकों सत्पुरुष भी उग्र प्रकृतिके हो जायँगे, तब उनके भारसे दबकर यह गोरूपिणी पृथ्वी किसकी शरणमें जायगी? कमलनयन! मुझे तो आपको छोड़कर इसकी रक्षा करनेवाला कोई दूसरा नहीं दिखायी देता ।।५६-५७।। इसलिये भक्तवत्सल! आप साधुओंपर कृपा करके यहाँसे मत जाइये। भगवन्! आपने निराकार और चिन्मात्र होकर भी भक्तोंके लिये ही तो यह सगुण रूप धारण किया है ।।५८।। फिर भला, आपका वियोग होनेपर वे भक्तजन पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे? निर्गुणोपासनामें तो बड़ा कष्ट है। इसलिये कुछ और विचार कीजिये ।।५९।।

आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यन्ति पुनः खलाः ।
तत्सङ्गेनैव सन्तोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा ।।५६
तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ।
अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ।।५७

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ।
भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः ।।५८
त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले ।
निर्गुणोपासने कष्टमतः किञ्चिद्विचारय ।।५९
इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः ।
भक्तावलम्बनार्थाय किं विधेयं मयेति च ।।६०
स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ।।६१
तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ।।६२
सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम् ।
साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ।।६३
दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ।
कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोऽयमीरितः ।।६४
अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ।
कथं त्याज्या भवेत्पुम्भिः सप्ताहोऽतः प्रकीर्तितः ।।६५

सूत उवाच

एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे
प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम् ।
आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं
तदुच्यते संशृणु शौनक त्वम् ।।६६

प्रभासक्षेत्रमें उद्धवजीके ये वचन सुनकर भगवान् सोचने लगे कि भक्तोंके अवलम्बके लिये मुझे क्या व्यवस्था करनी चाहिये ।।६०।। शौनकजी! तब भगवान्ने अपनी सारी शक्ति भागवतमें रख दी; वे अन्तर्धान होकर इस भागवतसमुद्रमें प्रवेश कर गये ।।६१।। इसलिये यह भगवान्की साक्षात् शब्दमयी मूर्ति है। इसके सेवन, श्रवण, पाठ अथवा दर्शनसे ही मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ।।६२।। इसीसे इसका सप्ताहश्रवण सबसे बढ़कर माना गया है और कलियुगमें तो अन्य सब साधनोंको छोड़कर यही प्रधान धर्म बताया गया है ।।६३।। कलिकालमें यही ऐसा धर्म है, जो दुःख, दरिद्रता, दुर्भाग्य और पापोंकी सफाई कर देता है तथा काम-क्रोधादि शत्रुओंपर विजय दिलाता है ।।६४।। अन्यथा, भगवान्की इस मायासे पीछा छुड़ाना देवताओंके लिये भी कठिन है, मनुष्य तो इसे छोड़ ही कैसे सकते हैं। अतः

******ebook converter DEMO Watermarks*******

इससे छूटनेके लिये भी सप्ताहश्रवणका विधान किया गया है ।।६५।।

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! जिस समय सनकादि मुनीश्वर इस प्रकार सप्ताहश्रवणकी महिमाका बखान कर रहे थे, उस सभामें एक बड़ा आश्चर्य हुआ; उसे मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ।।६६।। वहाँ तरुणावस्थाको प्राप्त हुए अपने दोनों पुत्रोंको साथ लिये विशुद्ध प्रेमरूपा भक्ति बार-बार 'श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे! हे नाथ! नारायण! वासुदेव!' आदि भगवन्नामोंका उच्चारण करती हुई अकस्मात् प्रकट हो गयीं ।।६७।। सभी सदस्योंने देखा कि परम सुन्दरी भक्तिरानी भागवतके अर्थोंका आभूषण पहने वहाँ पधारीं। मुनियोंकी उस सभामें सभी यह तर्क-वितर्क करने लगे कि ये यहाँ कैसे आयीं, कैसे प्रविष्ट हुईं ।।६८।। तब सनकादिने कहा—'ये भक्तिदेवी अभी-अभी कथाके अर्थसे निकली हैं।' उनके ये वचन सुनकर भक्तिने अपने पुत्रोंसमेत अत्यन्त विनम्र होकर सनत्कुमारजीसे कहा ।।६९।।

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा
प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ।
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ।।६७
तां चागतां भागवतार्थभूषां
सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ।
कथं प्रविष्टा कथमागतेयं
मध्ये मुनीनामिति तर्कयन्तः ।।६८
ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं
कथार्थतो निष्पतिताधुनेयम् ।
एवं गिरः सा ससुता निशम्य
सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ।।६९

भक्तिरुवाच

भवद्भिरद्यैव कृतास्मि पुष्टा
कलिप्रणष्टापि कथारसेन ।
क्वाहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवन्तु
ब्राह्मा इदं तां गिरमूचिरे ते ।।७०
भक्तेषु गोविन्दस्वरूपकर्त्री
प्रेमैकधर्त्री भवरोगहन्त्री ।
सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया
निरन्तरं वैष्णवमानसानि ।।७१
ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वां

******ebook converter DEMO Watermarks*******

द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ।
एवं तदाज्ञावसरेऽपि भक्ति-
स्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ।।७२
सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ।।७३
ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं
ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ।
यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता
श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ।।७४

भक्ति बोलीं—मैं कलियुगमें नष्टप्राय हो गयी थी, आपने कथामृतसे सींचकर मुझे फिर पुष्ट कर दिया। अब आप यह बताइये कि मैं कहाँ रहूँ? यह सुनकर सनकादिने उससे कहा — ।।७०।। 'तुम भक्तोंको भगवान्‌का स्वरूप प्रदान करनेवाली, अनन्यप्रेमका सम्पादन करनेवाली और संसाररोगको निर्मूल करनेवाली हो; अतः तुम धैर्य धारण करके नित्य-निरन्तर विष्णुभक्तोंके हृदयोंमें ही निवास करो ।।७१।। ये कलियुगके दोष भले ही सारे संसारपर अपना प्रभाव डालें, किन्तु वहाँ तुमपर इनकी दृष्टि भी नहीं पड़ सकेगी।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाते ही भक्ति तुरन्त भगवद्‌भक्तोंके हृदयोंमें जा विराजीं ।।७२।।

जिनके हृदयमें एकमात्र श्रीहरिकी भक्ति निवास करती है; वे त्रिलोकीमें अत्यन्त निर्धन होनेपर भी परम धन्य हैं; क्योंकि इस भक्तिकी डोरीसे बँधकर तो साक्षात् भगवान् भी अपना परमधाम छोड़कर उनके हृदयमें आकर बस जाते हैं ।।७३।। भूलोकमें यह भागवत साक्षात् परब्रह्मका विग्रह है, हम इसकी महिमा कहाँतक वर्णन करें। इसका आश्रय लेकर इसे सुनानेसे तो सुनने और सुनानेवाले दोनोंको ही भगवान् श्रीकृष्णकी समता प्राप्त हो जाती है। अतः इसे छोड़कर अन्य धर्मोंसे क्या प्रयोजन है ।।७४।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम
तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ चतुर्थोऽध्यायः
गोकर्णोपाख्यान प्रारम्भ

सूत उवाच

अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ।
निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्तवत्सलः ।।१
वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः ।
काञ्चीकलापरुचिरो लसन्मुकुटकुण्डलः ।।२
त्रिभङ्गललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः ।
कोटिमन्मथलावण्यो हरिचन्दनचर्चितः ।।३
परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ।
आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ।।४
वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः ।
तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः ।।५
तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी ।
चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शङ्खरवोऽप्यभूत् ।।६
तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः ।
दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत् ।।७
अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः
सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ।
मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र
सर्वेऽपि निष्पापतमा भवन्ति ।।८
अतो नृलोके ननु नास्ति किञ्चि-
च्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ।
अघौघविध्वंसकरं तथैव
कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ।।९
के के विशुद्ध्यन्ति वदन्तु मह्यं
सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ।
कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य
प्रकाशितः कोऽपि नवीनमार्गः ।।१०

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सूतजी कहते हैं—मुनिवर! उस समय अपने भक्तोंके चित्तमें अलौकिक भक्तिका प्रादुर्भाव हुआ देख भक्तवत्सल श्रीभगवान् अपना धाम छोड़कर वहाँ पधारे ।।१।। उनके गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी, श्रीअंग सजल जलधरके समान श्यामवर्ण था, उसपर मनोहर पीताम्बर सुशोभित था, कटिप्रदेश करधनीकी लड़ियोंसे सुसज्जित था, सिरपर मुकुटकी लटक और कानोंमें कुण्डलोंकी झलक देखते ही बनती थी ।।२।। वे त्रिभंगललित भावसे खड़े हुए चित्तको चुराये लेते थे। वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि दमक रही थी, सारा श्रीअंग हरिचन्दनसे चर्चित था। उस रूपकी शोभा क्या कहें, उसने तो मानो करोड़ों कामदेवोंकी रूपमाधुरी छीन ली थी ।।३।। वे परमानन्दचिन्मूर्ति मधुरातिमधुर मुरलीधर ऐसी अनुपम छबिसे अपने भक्तोंके निर्मल चित्तोंमें आविर्भूत हुए ।।४।। भगवान्के नित्य लोक-निवासी लीलापरिकर उद्धवादि वहाँ गुप्तरूपसे उस कथाको सुननेके लिये आये हुए थे ।।५।। प्रभुके प्रकट होते ही चारों ओर 'जय हो! जय हो!!' की ध्वनि होने लगी। उस समय भक्तिरसका अद्भुत प्रवाह चला, बार-बार अबीर-गुलाल और पुष्पोंकी वर्षा तथा शंखध्वनि होने लगी ।।६।। उस सभामें जो लोग बैठे थे, उन्हें अपने देह, गेह और आत्माकी भी कोई सुधि न रही। उनकी ऐसी तन्मयता देखकर नारदजी कहने लगे— ।।७।।

मुनीश्वरगण! आज सप्ताहश्रवणकी मैंने यह बड़ी ही अलौकिक महिमा देखी। यहाँ तो जो बड़े मूर्ख, दुष्ट और पशु-पक्षी भी हैं, वे सभी अत्यन्त निष्पाप हो गये हैं ।।८।। अतः इसमें संदेह नहीं कि कलिकालमें चित्तकी शुद्धिके लिये इस भागवतकथाके समान मर्त्यलोकमें पापपुंजका नाश करनेवाला कोई दूसरा पवित्र साधन नहीं है ।।९।। मुनिवर! आपलोग बड़े कृपालु हैं, आपने संसारके कल्याणका विचार करके यह बिलकुल निराला ही मार्ग निकाला है। आप कृपया यह तो बताइये कि इस कथारूप सप्ताहयज्ञके द्वारा संसारमें कौन-कौन लोग पवित्र हो जाते हैं ।।१०।।

कुमारा ऊचुः

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा
सदा दुराचाररता विमार्गगाः ।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः
सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ।।११
सत्येन हीनाः पितृमातृदूषका-
स्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः ।
ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः
सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ।।१२
पञ्चोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः
क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ।
ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ।।१३
कायेन वाचा मनसापि पातकं
नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये ।
परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः
सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ।।१४
अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ।।१५
तुङ्गभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम् ।
यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ।।१६
आत्मदेव: पुरे तस्मिन् सर्ववेदविशारदः ।
श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ।।१७
भिक्षुको वित्तवाल्लोँके तत्प्रिया धुन्धुली स्मृता ।
स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुलोद्भवा ।।१८
लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका ।
शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ।।१९

सनकादिने कहा—जो लोग सदा तरह-तरहके पाप किया करते हैं, निरन्तर दुराचारमें ही तत्पर रहते हैं और उलटे मार्गोंसे चलते हैं तथा जो क्रोधाग्निसे जलते रहनेवाले कुटिल और कामपरायण हैं, वे सभी इस कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ।।११।। जो सत्यसे च्युत, माता-पिताकी निन्दा करनेवाले, तृष्णाके मारे व्याकुल, आश्रमधर्मसे रहित, दम्भी, दूसरोंकी उन्नति देखकर कुढ़नेवाले और दूसरोंको दुःख देनेवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ।।१२।। जो मदिरापान, ब्रह्महत्या, सुवर्णकी चोरी, गुरुस्त्रीगमन और विश्वासघात—ये पाँच महापाप करनेवाले, छल-छद्मपरायण, क्रूर, पिशाचोंके समान निर्दयी, ब्राह्मणोंके धनसे पुष्ट होनेवाले और व्यभिचारी हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ।।१३।। जो दुष्ट आग्रहपूर्वक सर्वदा मन, वाणी या शरीरसे पाप करते रहते हैं, दूसरेके धनसे ही पुष्ट होते हैं तथा मलिन मन और दुष्ट हृदयवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ।।१४।।

नारदजी! अब हम तुम्हें इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं, उसके सुननेसे ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।।१५।। पूर्वकालमें तुंगभद्रा नदीके तटपर एक अनुपम नगर बसा हुआ था। वहाँ सभी वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्मोंका आचरण करते हुए सत्य और सत्कर्मोंमें तत्पर रहते थे ।।१६।। उस नगरमें समस्त वेदोंका विशेषज्ञ और श्रौत-स्मार्त कर्मोंमें निपुण एक आत्मदेव नामक ब्राह्मण रहता था, वह साक्षात् दूसरे सूर्यके समान तेजस्वी था ।।१७।। वह धनी होनेपर भी भिक्षाजीवी था। उसकी प्यारी पत्नी धुन्धुली कुलीन एवं

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सुन्दरी होनेपर भी सदा अपनी बातपर अड़ जानेवाली थी ।।१८।। उसे लोगोंकी बात करनेमें सुख मिलता था। स्वभाव था क्रूर। प्रायः कुछ-न-कुछ बकवाद करती रहती थी। गृहकार्यमें निपुण थी, कृपण थी और थी झगड़ालू भी ।।१९।। इस प्रकार ब्राह्मण दम्पति प्रेमसे अपने घरमें रहते और विहार करते थे। उनके पास अर्थ और भोग-विलासकी सामग्री बहुत थी। घर-द्वार भी सुन्दर थे, परन्तु उससे उन्हें सुख नहीं था ।।२०।। जब अवस्था बहुत ढल गयी, तब उन्होंने सन्तानके लिये तरह-तरहके पुण्यकर्म आरम्भ किये और वे दीन-दुःखियोंको गौ, पृथ्वी, सुवर्ण और वस्त्रादि दान करने लगे ।।२१।। इस प्रकार धर्ममार्गमें उन्होंने अपना आधा धन समाप्त कर दिया, तो भी उन्हें पुत्र या पुत्री किसीका भी मुख देखनेको न मिला। इसलिये अब वह ब्राह्मण बहुत ही चिन्तातुर रहने लगा ।।२२।।

एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्यो रममाणयोः ।
अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम् ।।२०
पश्चाद्धर्माः समारब्धास्ताभ्यां संतानहेतवे ।
गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ।।२१
धनार्धं धर्ममार्गेण ताभ्यां नीतं तथापि च ।
न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिन्तातुरो भृशम् ।।२२
एकदा स द्विजो दुःखाद् गृहं त्यक्त्वा वनं गतः ।
मध्याह्ने तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान् ।।२३
पीत्वा जलं निषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः ।
मुहूर्तादपि तत्रैव संन्यासी कश्चिदागतः ।।२४
दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदन्तिकम् ।
नत्वा च पादयोस्तस्य निःश्वसन् संस्थितः पुरः ।।२५

यतिरुवाच

कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी ।
वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ।।२६

ब्राह्मण उवाच

किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन संचितम् ।
मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुञ्जते ।।२७
मद्दत्तं नैव गृह्णन्ति प्रीत्या देवा द्विजातयः ।
प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः ।।२८

******ebook converter DEMO Watermarks*******

धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना ।
धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं संततिं विना ।।२९

एक दिन वह ब्राह्मणदेवता बहुत दुःखी होकर घरसे निकलकर वनको चल दिया। दोपहरके समय उसे प्यास लगी, इसलिये वह एक तालाबपर आया ।।२३।। सन्तानके अभावके दुःखने उसके शरीरको बहुत सुखा दिया था, इसलिये थक जानेके कारण जल पीकर वह वहीं बैठ गया। दो घड़ी बीतनेपर वहाँ एक संन्यासी महात्मा आये ।।२४।। जब ब्राह्मणदेवताने देखा कि वे जल पी चुके हैं, तब वह उनके पास गया और चरणोंमें नमस्कार करनेके बाद सामने खड़े होकर लंबी-लंबी साँसें लेने लगा ।।२५।।

संन्यासीने पूछा—कहो, ब्राह्मणदेवता! रोते क्यों हो? ऐसी तुम्हें क्या भारी चिन्ता है? तुम जल्दी ही मुझे अपने दुःखका कारण बताओ ।।२६।।

ब्राह्मणने कहा—महाराज! मैं अपने पूर्वजन्मके पापोंसे संचित दुःखका क्या वर्णन करूँ? अब मेरे पितर मेरे द्वारा दी हुई जलांजलिके जलको अपनी चिन्ताजनित साँससे कुछ गरम करके पीते हैं ।।२७।। देवता और ब्राह्मण मेरा दिया हुआ प्रसन्न मनसे स्वीकार नहीं करते। सन्तानके लिये मैं इतना दुःखी हो गया हूँ कि मुझे सब सूना-ही-सूना दिखायी देता है। मैं प्राण त्यागनेके लिये यहाँ आया हूँ ।।२८।। सन्तानहीन जीवनको धिक्कार है, सन्तानहीन गृहको धिक्कार है! सन्तानहीन धनको धिक्कार है और सन्तानहीन कुलको धिक्कार है!! ।।२९।।

पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्या सर्वथा भवेत् ।
यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि वन्ध्यत्वमाश्रयेत् ।।३०
यत्फलं मद्गृहायातं तच्च शीघ्रं विनश्यति ।
निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ।।३१
इत्युक्त्वा स रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वं दुःखपीडितः ।
तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाभूद्गरीयसी ।।३२
तद्बालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ।
सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ।।३३

यतिरुवाच

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ।
विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ।।३४
शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ।
सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ।।३५

******ebook converter DEMO Watermarks*******

संततेः सगरो दुःखमवापाङ्गः पुरा तथा ।
रे मुञ्चाद्य कुटुम्बाशां संन्यासे सर्वथा सुखम् ।।३६

ब्राह्मण उवाच

विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि ।
नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्च्छितः ।।३७
पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि ।
गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ।।३८
इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ।
चित्रकेतुर्गतः कष्टं विधिलेखविमार्जनात् ।।३९
न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ।
अतो हठेन युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम् ।।४०

मैं जिस गायको पालता हूँ, वह भी सर्वथा बाँझ हो जाती है; जो पेड़ लगाता हूँ, उसपर भी फल-फूल नहीं लगते ।।३०।। मेरे घरमें जो फल आता है, वह भी बहुत जल्दी सड़ जाता है। जब मैं ऐसा अभागा और पुत्रहीन हूँ, तब फिर इस जीवनको ही रखकर मुझे क्या करना है ।।३१।। यों कहकर वह ब्राह्मण दुःखसे व्याकुल हो उन संन्यासी महात्माके पास फूट-फूटकर रोने लगा। तब उन यतिवरके हृदयमें बड़ी करुणा उत्पन्न हुई ।।३२।। वे योगनिष्ठ थे; उन्होंने उसके ललाटकी रेखाएँ देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया और फिर उसे विस्तारपूर्वक कहने लगे ।।३३।।

संन्यासीने कहा—ब्राह्मणदेवता! इस प्रजाप्राप्तिका मोह त्याग दो। कर्मकी गति प्रबल है, विवेकका आश्रय लेकर संसारकी वासना छोड़ दो ।।३४।। विप्रवर! सुनो; मैंने इस समय तुम्हारा प्रारब्ध देखकर निश्चय किया है कि सात जन्मतक तुम्हारे कोई सन्तान किसी प्रकार नहीं हो सकती ।।३५।। पूर्वकालमें राजा सगर एवं अंगको सन्तानके कारण दुःख भोगना पड़ा था। ब्राह्मण! अब तुम कुटुम्बकी आशा छोड़ दो। संन्यासमें ही सब प्रकारका सुख है ।।३६।।

ब्राह्मणने कहा—महात्माजी! विवेकसे मेरा क्या होगा। मुझे तो बलपूर्वक पुत्र दीजिये; नहीं तो मैं आपके सामने ही शोकमूर्च्छित होकर अपने प्राण त्यागता हूँ ।।३७।। जिसमें पुत्र-स्त्री आदिका सुख नहीं है, ऐसा संन्यास तो सर्वथा नीरस ही है। लोकमें सरस तो पुत्र-पौत्रादिसे भरा-पूरा गृहस्थाश्रम ही है ।।३८।।

ब्राह्मणका ऐसा आग्रह देखकर उन तपोधनने कहा, 'विधाताके लेखको मिटानेका हठ करनेसे राजा चित्रकेतुको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था ।।३९।। इसलिये दैव जिसके उद्योगको कुचल देता है, उस पुरुषके समान तुम्हें भी पुत्रसे सुख नहीं मिल सकेगा। तुमने तो बड़ा हठ

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पकड़ रखा है और अर्थीके रूपमें तुम मेरे सामने उपस्थित हो; ऐसी दशामें मैं तुमसे क्या कहूँ' ।।४०।।

तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान् ।
इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ।।४१
सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम् ।
वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ।।४२
एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः ।
पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ।।४३
तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोद ह ।
अहो चिन्ता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये ।।४४
फलभक्षेण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता ।
स्वल्पभक्षं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ।।४५
दैवाद्धाटी व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ।
शुकवन्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत् ।।४६
तिर्यक्चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं भवेत् ।
प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ।।४७
मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत्तदा ।
सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ।।४८
लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते ।
वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः ।।४९
एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् ।
पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ।।५०

जब महात्माजीने देखा कि यह किसी प्रकार अपना आग्रह नहीं छोड़ता, तब उन्होंने उसे एक फल देकर कहा—'इसे तुम अपनी पत्नीको खिला देना, इससे उसके एक पुत्र होगा ।।४१।। तुम्हारी स्त्रीको एक सालतक सत्य, शौच, दया, दान और एक समय एक ही अन्न खानेका नियम रखना चाहिये। यदि वह ऐसा करेगी तो बालक बहुत शुद्ध स्वभाववाला होगा' ।।४२।।

यों कहकर वे योगिराज चले गये और ब्राह्मण अपने घर लौट आया। वहाँ आकर उसने वह फल अपनी स्त्रीके हाथमें दे दिया और स्वयं कहीं चला गया ।।४३।। उसकी स्त्री तो कुटिल स्वभावकी थी ही, वह रो-रोकर अपनी एक सखीसे कहने लगी—'सखी! मुझे तो बड़ी चिन्ता हो गयी, मैं तो यह फल नहीं खाऊँगी ।।४४।। फल खानेसे गर्भ रहेगा और गर्भसे

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पेट बढ़ जायगा। फिर कुछ खाया-पीया जायगा नहीं, इससे मेरी शक्ति क्षीण हो जायगी; तब बता, घरका धंधा कैसे होगा? ।।४५।। और—दैववश—यदि कहीं गाँवमें डाकुओंका आक्रमण हो गया तो गर्भिणी स्त्री कैसे भागेगी। यदि शुकदेवजीकी तरह यह गर्भ भी पेटमें ही रह गया तो इसे बाहर कैसे निकाला जायगा ।।४६।। और कहीं प्रसवकालके समय वह टेढ़ा हो गया तो फिर प्राणोंसे ही हाथ धोना पड़ेगा। यों भी प्रसवके समय बड़ी भयंकर पीड़ा होती है; मैं सुकुमारी भला, यह सब कैसे सह सकूँगी? ।।४७।। मैं जब दुर्बल पड़ जाऊँगी, तब ननदरानी आकर घरका सब माल-मता समेट ले जायँगी। और मुझसे तो सत्य-शौचादि नियमोंका पालन होना भी कठिन ही जान पड़ता है ।।४८।। जो स्त्री बच्चा जनती है, उसे उस बच्चेके लालन-पालनमें भी बड़ा कष्ट होता है। मेरे विचारसे तो वन्ध्या या विधवा स्त्रियाँ ही सुखी हैं' ।।४९।।

मनमें ऐसे ही तरह-तरहके कुतर्क उठनेसे उसने वह फल नहीं खाया और जब उसके पतिने पूछा—'फल खा लिया?' तब उसने कह दिया—'हाँ, खा लिया' ।।५०।।

एकदा भगिनी तस्यास्तद्गृहं स्वेच्छयाऽऽगता ।
तदग्रे कथितं सर्वं चिन्तेयं महती हि मे ।।५१
दुर्बला तेन दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम् ।
साब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ।।५२
तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम् ।
वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ।।५३
षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ।
तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ।।५४
फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु साम्प्रतम् ।
तत्तदाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ।।५५
अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ।
आनीय जनको बालं रहस्ये धुन्धुलीं ददौ ।।५६
तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ।
लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ।।५७
ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ।
गीतवादित्रघोषोऽभूत्तद्द्वारे मङ्गलं बहु ।।५८
भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ।
अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ।।५९
मत्स्वसुश्च प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्तते ।
तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ।।६०

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहेतवे ।
पुत्रस्य धुन्धुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ।।६१
त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ।
सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ।।६२

एक दिन उसकी बहिन अपने-आप ही उसके घर आयी; तब उसने अपनी बहिनको सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा कि 'मेरे मनमें इसकी बड़ी चिन्ता है ।।५१।। मैं इस दुःखके कारण दिनोंदिन दुबली हो रही हूँ। बहिन! मैं क्या करूँ?' बहिनने कहा, 'मेरे पेटमें बच्चा है, प्रसव होनेपर वह बालक मैं तुझे दे दूँगी ।।५२।। तबतक तू गर्भवतीके समान घरमें गुप्त-रूपसे सुखसे रह। तू मेरे पतिको कुछ धन दे देगी तो वे तुझे अपना बालक दे देंगे ।।५३।। (हम ऐसी युक्ति करेंगी) कि जिसमें सब लोग यही कहें कि 'इसका बालक छः महीनेका होकर मर गया' और मैं नित्यप्रति तेरे घर आकर उस बालकका पालन-पोषण करती रहूँगी ।।५४।। तू इस समय इसकी जाँच करनेके लिये यह फल गौको खिला दे।' ब्राह्मणीने स्त्रीस्वभाववश जो-जो उसकी बहिनने कहा था, वैसे ही सब किया ।।५५।।

इसके पश्चात् समयानुसार जब उस स्त्रीके पुत्र हुआ, तब उसके पिताने चुपचाप लाकर उसे धुन्धुलीको दे दिया ।।५६।। और उसने आत्मदेवको सूचना दे दी कि मेरे सुखपूर्वक बालक हो गया है। इस प्रकार आत्मदेवके पुत्र हुआ सुनकर सब लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ ।।५७।। ब्राह्मणने उसका जातकर्म-संस्कार करके ब्राह्मणोंको दान दिया और उसके द्वारपर गाना-बजाना तथा अनेक प्रकारके मांगलिक कृत्य होने लगे ।।५८।। धुन्धुलीने अपने पतिसे कहा, 'मेरे स्तनोंमें तो दूध ही नहीं है; फिर गौ आदि किसी अन्य जीवके दूधसे मैं इस बालकका किस प्रकार पालन करूँगी? ।।५९।। मेरी बहिनके अभी बालक हुआ था, वह मर गया है; उसे बुलाकर अपने यहाँ रख लें तो वह आपके इस बच्चेका पालन-पोषण कर लेगी ।।६०।। तब पुत्रकी रक्षाके लिये आत्मदेवने वैसा ही किया तथा माता धुन्धुलीने उस बालकका नाम धुन्धुकारी रखा ।।६१।।

इसके बाद तीन महीने बीतनेपर उस गौके भी एक मनुष्याकार बच्चा हुआ। वह सर्वांगसुन्दर, दिव्य, निर्मल तथा सुवर्णकी-सी कान्तिवाला था ।।६२।। उसे देखकर ब्राह्मणदेवताको बड़ा आनन्द हुआ और उसने स्वयं ही उसके सब संस्कार किये। इस समाचारसे और सब लोगोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बालकको देखनेके लिये आये ।।६३।। तथा आपसमें कहने लगे, 'देखो, भाई! अब आत्मदेवका कैसा भाग्य उदय हुआ है! कैसे आश्चर्यकी बात है कि गौके भी ऐसा दिव्यरूप बालक उत्पन्न हुआ है ।।६४।। दैवयोगसे इस गुप्त रहस्यका किसीको भी पता न लगा। आत्मदेवने उस बालकके गौके-से कान देखकर उसका नाम 'गोकर्ण' रखा ।।६५।।

दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान् स्वयमादधे ।
मत्वाऽऽश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षार्थं समागताः ।।६३

******ebook converter DEMO Watermarks*******

भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ।
धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ।।६४

न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ।
गोकर्णं तं सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ।।६५

कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ ।
गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुन्धुकारी महाखलः ।।६६

स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधवर्धितः ।
दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनम् ।।६७

चौरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः ।
लालनायार्भकान्धृत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत् ।।६८

हिंसकः शस्त्रधारी च दीनान्धानां प्रपीडकः ।
चाण्डालाभिरतो नित्यं पाशहस्तः श्वसंगतः ।।६९

तेन वेश्याकुसङ्गेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् ।
एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत् ।।७०

तत्पिता कृपणः प्रोच्चैर्धनहीनो रुरोद ह ।
वन्ध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ।।७१

कुछ काल बीतनेपर वे दोनों बालक जवान हो गये। उनमें गोकर्ण तो बड़ा पण्डित और ज्ञानी हुआ, किन्तु धुन्धुकारी बड़ा ही दुष्ट निकला ।।६६।। स्नान-शौचादि ब्राह्मणोचित आचारोंका उसमें नाम भी न था और न खान-पानका ही कोई परहेज था। क्रोध उसमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वह बुरी-बुरी वस्तुओंका संग्रह किया करता था। मुर्देके हाथसे छुआया हुआ अन्न भी खा लेता था ।।६७।। दूसरोंकी चोरी करना और सब लोगोंसे द्वेष बढ़ाना उसका स्वभाव बन गया था। छिपे-छिपे वह दूसरोंके घरोंमें आग लगा देता था। दूसरोंके बालकोंको खेलानेके लिये गोदमें लेता और उन्हें चट कुएँमें डाल देता ।।६८।। हिंसाका उसे व्यसन-सा हो गया था। हर समय वह अस्त्र-शस्त्र धारण किये रहता और बेचारे अंधे और दीन-दुःखियोंको व्यर्थ तंग करता। चाण्डालोंसे उसका विशेष प्रेम था; बस, हाथमें फंदा लिये कुत्तोंकी टोलीके साथ शिकारकी टोहमें घूमता रहता ।।६९।। वेश्याओंके जालमें फँसकर उसने अपने पिताकी सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी। एक दिन माता-पिताको मार-पीटकर घरके

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सब बर्तन-भाँड़े उठा ले गया ।।७०।।

इस प्रकार जब सारी सम्पत्ति स्वाहा हो गयी, तब उसका कृपण पिता फूट-फूटकर रोने लगा और बोला—'इससे तो इसकी माँका बाँझ रहना ही अच्छा था; कुपुत्र तो बड़ा ही दुःखदायी होता है ।।७१।। अब मैं कहाँ रहूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे इस संकटको कौन काटेगा? हाय! मेरे ऊपर तो बड़ी विपत्ति आ पड़ी है, इस दुःखके कारण अवश्य मुझे एक दिन प्राण छोड़ने पड़ेंगे ।।७२।। उसी समय परम ज्ञानी गोकर्णजी वहाँ आये और उन्होंने पिताको वैराग्यका उपदेश करते हुए बहुत समझाया ।।७३।। वे बोले, 'पिताजी! यह संसार असार है। यह अत्यन्त दुःखरूप और मोहमें डालनेवाला है। पुत्र किसका? धन किसका? स्नेहवान् पुरुष रात-दिन दीपकके समान जलता रहता है ।।७४।। सुख न तो इन्द्रको है और न चक्रवर्ती राजाको ही; सुख है तो केवल विरक्त, एकान्तजीवी मुनिको ।।७५।। 'यह मेरा पुत्र है' इस अज्ञानको छोड़ दीजिये। मोहसे नरककी प्राप्ति होती है। यह शरीर तो नष्ट होगा ही। इसलिये सब कुछ छोड़कर वनमें चले जाइये ।।७६।।

क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ।
प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ।।७२
तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ।
बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ।।७३
असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ।
सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ।।७४
न चेन्द्रस्य सुखं किञ्चिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ।।७५
मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ।
निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ।।७६
तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गन्तुकामः पिताब्रवीत् ।
किं कर्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सविस्तरम् ।।७७
अन्धकूपे स्नेहपाशे बद्धः पङ्गुरहं शठः ।
कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ।।७८

गोकर्ण उवाच

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ।।७९

******ebook converter DEMO Watermarks*******

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम् ।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ।।८०

गोकर्णके वचन सुनकर आत्मदेव वनमें जानेके लिये तैयार हो गया और उनसे कहने लगा, 'बेटा! वनमें रहकर मुझे क्या करना चाहिये, यह मुझसे विस्तारपूर्वक कहो ।।७७।। मैं बड़ा मूर्ख हूँ, अबतक कर्मवश स्नेहपाशमें बँधा हुआ अपंगकी भाँति इस घररूप अँधेरे कुएँमें ही पड़ा रहा हूँ। तुम बड़े दयालु हो, इससे मेरा उद्धार करो' ।।७८।।

गोकर्णने कहा—पिताजी! यह शरीर हड्डी, मांस और रुधिरका पिण्ड है; इसे आप 'मैं' मानना छोड़ दें और स्त्री-पुत्रादिको 'अपना' कभी न मानें। इस संसारको रात-दिन क्षणभंगुर देखें, इसकी किसी भी वस्तुको स्थायी समझकर उसमें राग न करें। बस, एकमात्र वैराग्यरसके रसिक होकर भगवान्‌की भक्तिमें लगे रहें ।।७९।। भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है, निरन्तर उसीका आश्रय लिये रहें। अन्य सब प्रकारके लौकिक धर्मोंसे मुख मोड़ लें। सदा साधुजनोंकी सेवा करें। भोगोंकी लालसाको पास न फटकने दें तथा जल्दी-से-जल्दी दूसरोंके गुण-दोषोंका विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान्‌की कथाओंके रसका ही पान करें ।।८०।।

एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय
यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ।
युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययासौ
श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ।।८१

इस प्रकार पुत्रकी वाणीसे प्रभावित होकर आत्मदेवने घर छोड़ दिया और वनकी यात्रा की। यद्यपि उसकी आयु उस समय साठ वर्षकी हो चुकी थी, फिर भी बुद्धिमें पूरी दृढ़ता थी। वहाँ रात-दिन भगवान्‌की सेवा-पूजा करनेसे और नियमपूर्वक भागवतके दशमस्कन्धका पाठ करनेसे उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्त कर लिया ।।८१।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ पञ्चमोऽध्यायः
धुन्धुकारीको प्रेतयोनिकी प्राप्ति और उससे उद्धार

सूत उवाच

पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ।
क्व वित्तं तिष्ठति ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ।।१
इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः ।
कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता ।।२
गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः ।
न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बान्धवः ।।३
धुन्धुकारी गृहेऽतिष्ठत्पञ्चपण्यवधूवृतः ।
अत्युग्रकर्मकर्ता च तत्पोषणविमूढधीः ।।४
एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः ।
तदर्थं निर्गतो गेहात्कामान्धो मृत्युमस्मरन् ।।५
यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः ।
ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च ।।६
बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यो व्यचारयन् ।
चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ।।७

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! पिताके वन चले जानेपर एक दिन धुन्धुकारीने अपनी माताको बहुत पीटा और कहा—'बता, धन कहाँ रखा है? नहीं तो अभी तेरी लुआठी (जलती लकड़ी)-से खबर लूँगा ।।१।। उसकी इस धमकीसे डरकर और पुत्रके उपद्रवोंसे दुःखी होकर वह रात्रिके समय कुएँमें जा गिरी और इसीसे उसकी मृत्यु हो गयी ।।२।। योगनिष्ठ गोकर्णजी तीर्थयात्राके लिये निकल गये। उन्हें इन घटनाओंसे कोई सुख या दुःख नहीं होता था; क्योंकि उनका न कोई मित्र था न शत्रु ।।३।।

धुन्धुकारी पाँच वेश्याओंके साथ घरमें रहने लगा। उनके लिये भोग-सामग्री जुटानेकी चिन्ताने उसकी बुद्धि नष्ट कर दी और वह नाना प्रकारके अत्यन्त क्रूर कर्म करने लगा ।।४।। एक दिन उन कुलटाओंने उससे बहुत-से गहने माँगे। वह तो कामसे अंधा हो रहा था, मौतकी उसे कभी याद नहीं आती थी। बस, उन्हें जुटानेके लिये वह घरसे निकल पड़ा ।।५।। वह जहाँ-तहाँसे बहुत-सा धन चुराकर घर लौट आया तथा उन्हें कुछ सुन्दर वस्त्र और आभूषण लाकर दिये ।।६।। चोरीका बहुत माल देखकर रात्रिके समय स्त्रियोंने विचार किया कि 'यह

******ebook converter DEMO Watermarks*******

नित्य ही चोरी करता है, इसलिये इसे किसी दिन अवश्य राजा पकड़ लेगा ।।७।। राजा यह सारा धन छीनकर इसे निश्चय ही प्राणदण्ड देगा। जब एक दिन इसे मरना ही है, तब हम ही धनकी रक्षाके लिये गुप्तरूपसे इसको क्यों न मार डालें ।।८।। इसे मारकर हम इसका माल-मता लेकर जहाँ-कहीं चली जायँगी।' ऐसा निश्चय कर उन्होंने सोये हुए धुन्धुकारीको रस्सियोंसे कस दिया और उसके गलेमें फाँसी लगाकर उसे मारनेका प्रयत्न किया। इससे जब वह जल्दी न मरा तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई ।।९-१०।। तब उन्होंने उसके मुखपर बहुत-से दहकते अँगारे डाले; इससे वह अग्निकी लपटोंसे बहुत छटपटाकर मर गया ।।११।। उन्होंने उसके शरीरको एक गड्ढेमें डालकर गाड़ दिया। सच है, स्त्रियाँ प्रायः बड़ी दुःसाहसी होती हैं। उनके इस कृत्यका किसीको भी पता न चला ।।१२।। लोगोंके पूछनेपर कह देती थीं कि 'हमारे प्रियतम पैसेके लोभसे अबकी बार कहीं दूर चले गये हैं, इसी वर्षके अन्दर लौट आयेंगे' ।।१३।। बुद्धिमान् पुरुषको दुष्टा स्त्रियोंका कभी विश्वास न करना चाहिये। जो मूर्ख इनका विश्वास करता है, उसे दुःखी होना पड़ता है ।।१४।। इनकी वाणी तो अमृतके समान कामियोंके हृदयमें रसका संचार करती है; किन्तु हृदय छूरेकी धारके समान तीक्ष्ण होता है। भला, इन स्त्रियोंका कौन प्यारा है? ।।१५।।

वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ।
अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ।।८
निहत्यैनं गृहीत्वार्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ।
इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं सम्बद्ध्य रश्मिभिः ।।९
पाशं कण्ठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः ।
त्वरितं न ममारासौ चिन्तायुक्तास्तदाभवन् ।।१०
तप्ताङ्गारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ।
अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ।।११
तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः ।
न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापीदं तथैव च ।।१२
लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ।
आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन् वित्तलोभविकर्षितः ।।१३
स्त्रीणां नैव तु विश्वासं दुष्टानां कारयेद्बुधः ।
विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखैः परिभूयते ।।१४
सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ।
हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ।।१५
संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः ।
धुन्धुकारी बभूवाथ महान् प्रेतः कुकर्मतः ।।१६

******ebook converter DEMO Watermarks*******

वात्यारूपधरो नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ।
शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ।।१७
न लेभे शरणं क्वापि हा दैवेति मुहुर्वदन् ।
कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ।।१८
अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत् ।
यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धमवर्तयत् ।।१९

वे कुलटाएँ धुन्धुकारीकी सारी सम्पत्ति समेटकर वहाँसे चंपत हो गयीं; उनके ऐसे न जाने कितने पति थे। और धुन्धुकारी अपने कुकर्मोंके कारण भयंकर प्रेत हुआ ।।१६।। वह बवंडरके रूपमें सर्वदा दसों दिशाओंमें भटकता रहता था तथा शीत-घामसे सन्तप्त और भूख-प्याससे व्याकुल होनेके कारण 'हा दैव! हा दैव!' चिल्लाता रहता था। परन्तु उसे कहीं भी कोई आश्रय न मिला। कुछ काल बीतनेपर गोकर्णने भी लोगोंके मुखसे धुन्धुकारीकी मृत्युका समाचार सुना ।।१७-१८।। तब उसे अनाथ समझकर उन्होंने उसका गयाजीमें श्राद्ध किया; और भी जहाँ-जहाँ वे जाते थे, उसका श्राद्ध अवश्य करते थे ।।१९।।

एवं भ्रमन् स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ।
रात्रौ गृहाङ्गणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः ।।२०

तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबान्धवम् ।
निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ।।२१

सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ।
सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ।।२२

वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ।
अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तमब्रवीत् ।।२३

गोकर्ण उवाच

कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ।
किं वा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ।।२४

सूत उवाच

एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह ।।२५

ततोऽञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदैरयत् ।
तत्सेकहतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।२६

प्रेत उवाच

अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः ।
स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ।।२७

कर्मणो नास्ति संख्या मे महाज्ञाने विवर्तिनः ।
लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ।।२८

अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ।
वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ।।२९

अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातर्मामाशु मोचय ।
गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाब्रवीत् ।।३०

इस प्रकार घूमते-घूमते गोकर्णजी अपने नगरमें आये और रात्रिके समय दूसरोंकी दृष्टिसे बचकर सीधे अपने घरके आँगनमें सोनेके लिये पहुँचे ।।२०।।

वहाँ अपने भाईको सोया देख आधी रातके समय धुन्धुकारीने अपना बड़ा विकट रूप दिखाया ।।२१।। वह कभी भेड़ा, कभी हाथी, कभी भैंसा, कभी इन्द्र और कभी अग्निका रूप धारण करता। अन्तमें वह मनुष्यके आकारमें प्रकट हुआ ।।२२।।

ये विपरीत अवस्थाएँ देखकर गोकर्णने निश्चय किया कि यह कोई दुर्गतिको प्राप्त हुआ जीव है। तब उन्होंने उससे धैर्यपूर्वक पूछा ।।२३।।

गोकर्णने कहा—तू कौन है? रात्रिके समय ऐसे भयानक रूप क्यों दिखा रहा है? तेरी यह दशा कैसे हुई? हमें बता तो सही—तू प्रेत है, पिशाच है अथवा कोई राक्षस है? ।।२४।।

सूतजी कहते हैं—गोकर्णके इस प्रकार पूछनेपर वह बार-बार जोर-जोरसे रोने लगा। उसमें बोलनेकी शक्ति नहीं थी, इसलिये उसने केवल संकेतमात्र किया ।।२५।।

तब गोकर्णने अंजलिमें जल लेकर उसे अभिमन्त्रित करके उसपर छिड़का। इससे उसके पापोंका कुछ शमन हुआ और वह इस प्रकार कहने लगा ।।२६।।

प्रेत बोला—'मैं तुम्हारा भाई हूँ। मेरा नाम है धुन्धुकारी। मैंने अपने ही दोषसे अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया ।।२७।। मेरे कुकर्मोंकी गिनती नहीं की जा सकती। मैं तो महान्

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अज्ञानमें चक्कर काट रहा था। इसीसे मैंने लोगोंकी बड़ी हिंसा की। अन्तमें कुलटा स्त्रियोंने मुझे तड़पा-तड़पाकर मार डाला ।।२८।। इसीसे अब प्रेतयोनिमें पड़कर यह दुर्दशा भोग रहा हूँ। अब दैववश कर्मफलका उदय होनेसे मैं केवल वायुभक्षण करके जी रहा हूँ ।।२९।।

भाई! तुम दयाके समुद्र हो; अब किसी प्रकार जल्दी ही मुझे इस योनिसे छुड़ाओ।' गोकर्णने धुन्धुकारीकी सारी बातें सुनीं और तब उससे बोले ।।३०।।

गोकर्ण उवाच

त्वदर्थं तु गयापिण्डो मया दत्तो विधानतः ।
तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ।।३१
गयाश्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह ।
किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम् ।।३२

प्रेत उवाच

गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ।
उपायमपरं कञ्चित्त्वं विचारय साम्प्रतम् ।।३३
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ।
शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ।।३४
इदानीं तु निजं स्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ।
त्वन्मुक्तिसाधकं किञ्चिदाचरिष्ये विचार्य च ।।३५
धुन्धुकारी निजस्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ।
गोकर्णश्चिन्तयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ।।३६
प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः ।
तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि ।।३७
विद्वांसो योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः ।
तन्मुक्तिं नैव तेऽपश्यन् पश्यन्तः शास्त्रसंचयान् ।।३८
ततः सर्वैः सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम् ।
गोकर्णः स्तम्भनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा ।।३९
तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन् ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् ।
तच्छ्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमित्यभ्यभाषत ।।४०
श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम् ।।४१

गोकर्णने कहा—भाई! मुझे इस बातका बड़ा आश्चर्य है—मैंने तुम्हारे लिये विधिपूर्वक गयाजीमें पिण्डदान किया, फिर भी तुम प्रेतयोनिसे मुक्त कैसे नहीं हुए? ।।३१।। यदि गया-श्राद्धसे भी तुम्हारी मुक्ति नहीं हुई, तब इसका और कोई उपाय ही नहीं है। अच्छा, तुम सब बात खोलकर कहो—मुझे अब क्या करना चाहिये? ।।३२।।

प्रेतने कहा—मेरी मुक्ति सैकड़ों गया-श्राद्ध करनेसे भी नहीं हो सकती। अब तो तुम इसका कोई और उपाय सोचो ।।३३।।

प्रेतकी यह बात सुनकर गोकर्णको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे—'यदि सैकड़ों गया-श्राद्धोंसे भी तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती, तब तो तुम्हारी मुक्ति असम्भव ही है ।।३४।। अच्छा, अभी तो तुम निर्भय होकर अपने स्थानपर रहो; मैं विचार करके तुम्हारी मुक्तिके लिये कोई दूसरा उपाय करूँगा' ।।३५।।

गोकर्णकी आज्ञा पाकर धुन्धुकारी वहाँसे अपने स्थानपर चला आया। इधर गोकर्णने रातभर विचार किया, तब भी उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा ।।३६।। प्रातःकाल उनको आया देख लोग प्रेमसे उनसे मिलने आये। तब गोकर्णने रातमें जो कुछ जिस प्रकार हुआ था, वह सब उन्हें सुना दिया ।।३७।। उनमें जो लोग विद्वान्, योगनिष्ठ, ज्ञानी और वेदज्ञ थे, उन्होंने भी अनेकों शास्त्रोंको उलट-पलटकर देखा; तो भी उसकी मुक्तिका कोई उपाय न मिला ।।३८।। तब सबने यही निश्चय किया कि इस विषयमें सूर्यनारायण जो आज्ञा करें, वही करना चाहिये। अतः गोकर्णने अपने तपोबलसे सूर्यकी गतिको रोक दिया ।।३९।। उन्होंने स्तुति की —'भगवन्! आप सारे संसारके साक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मुझे कृपा करके धुन्धुकारीकी मुक्तिका साधन बताइये।' गोकर्णकी यह प्रार्थना सुनकर सूर्यदेवने दूरसे ही स्पष्ट शब्दोंमें कहा—'श्रीमद्भागवतसे मुक्ति हो सकती है, इसलिये तुम उसका सप्ताह पारायण करो।' सूर्यका यह धर्ममय वचन वहाँ सभीने सुना ।।४०-४१।। तब सबने यही कहा कि 'प्रयत्नपूर्वक यही करो, है भी यह साधन बहुत सरल।' अतः गोकर्णजी भी तदनुसार निश्चय करके कथा सुनानेके लिये तैयार हो गये ।।४२।।

सर्वेऽब्रुवन् प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं त्विदम् ।
गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ।।४२
तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः ।
पङ्गवन्धवृद्धमन्दाश्च तेऽपि पापक्षयाय वै ।।४३
समाजस्तु महाञ्जातो देवविस्मयकारकः ।
यदैवासनमास्थाय गोकर्णोऽकथयत्कथाम् ।।४४
स प्रेतोऽपि तदाऽऽयातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः ।
सप्तग्रन्थियुतं तत्रापश्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ।।४५
तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणार्थं स्थितो ह्यसौ ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

वातरूपी स्थितिं कर्तुमशक्तो वंशमाविशत् ।।४६
वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः ।
प्रथमस्कन्धतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजोऽकरोत् ।।४७
दिनान्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह ।
वंशैकग्रन्थिभेदोऽभूत्सशब्दं पश्यतां सताम् ।।४८
द्वितीयेऽह्नि तथा सायं द्वितीयग्रन्थिभेदनम् ।
तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रन्थिभेदनम् ।।४९
एवं सप्तदिनैश्चैव सप्तग्रन्थिविभेदनम् ।
कृत्वा स द्वादशस्कन्धश्रवणात्प्रेततां जहौ ।।५०
दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममण्डितः ।
पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ।।५१
ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत् ।
त्वयाहं मोचितो बन्धो कृपया प्रेतकश्मलात् ।।५२

देश और गाँवोंसे अनेकों लोग कथा सुननेके लिये आये। बहुत-से लँगड़े-लूले, अंधे, बूढ़े और मन्दबुद्धि पुरुष भी अपने पापोंकी निवृत्तिके उद्देश्यसे वहाँ आ पहुँचे ।।४३।। इस प्रकार वहाँ इतनी भीड़ हो गयी कि उसे देखकर देवताओंको भी आश्चर्य होता था। जब गोकर्णजी व्यासगद्दीपर बैठकर कथा कहने लगे, तब वह प्रेत भी वहाँ आ पहुँचा और इधर-उधर बैठनेके लिये स्थान ढूँढ़ने लगा। इतनेमें ही उसकी दृष्टि एक सीधे रखे हुए सात गाँठके बाँसपर पड़ी ।।४४-४५।। उसीके नीचेके छिद्रमें घुसकर वह कथा सुननेके लिये बैठ गया। वायुरूप होनेके कारण वह बाहर कहीं बैठ नहीं सकता था, इसलिये बाँसमें घुस गया ।।४६।।

गोकर्णजीने एक वैष्णव ब्राह्मणको मुख्य श्रोता बनाया और प्रथमस्कन्धसे ही स्पष्ट स्वरमें कथा सुनानी आरम्भ कर दी ।।४७।।

सायंकालमें जब कथाको विश्राम दिया गया, तब एक बड़ी विचित्र बात हुई। वहाँ सभासदोंके देखते-देखते उस बाँसकी एक गाँठ तड़-तड़ शब्द करती फट गयी ।।४८।। इसी प्रकार दूसरे दिन सायंकालमें दूसरी गाँठ फटी और तीसरे दिन उसी समय तीसरी ।।४९।। इस प्रकार सात दिनोंमें सातों गाँठोंको फोड़कर धुन्धुकारी बारहों स्कन्धोंके सुननेसे पवित्र होकर प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया और दिव्यरूप धारण करके सबके सामने प्रकट हुआ। उसका मेघके समान श्याम शरीर पीताम्बर और तुलसीकी मालाओंसे सुशोभित था तथा सिरपर मनोहर मुकुट और कानोंमें कमनीय कुण्डल झिलमिला रहे थे ।।५०-५१।।

उसने तुरन्त अपने भाई गोकर्णको प्रणाम करके कहा—'भाई! तुमने कृपा करके मुझे प्रेतयोनिकी यातनाओंसे मुक्त कर दिया ।।५२।।

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ।।५३

कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ।
अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ।।५४

आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनः कर्मभिः कृतम् ।
श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ।।५५

अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि ।
अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ।।५६

किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ।
अध्रुवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ।।५७

अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ।।५८

जराशोकविपाकार्तं रोगमन्दिरमातुरम् ।
दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभङ्गुरम् ।।५९

कृमिविड्भस्मसंज्ञान्तं शरीरमिति वर्णितम् ।
अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ।।६०

यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ।
तदीयरससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता ।।६१

यह प्रेतपीड़ाका नाश करनेवाली श्रीमद्भागवतकी कथा धन्य है तथा श्रीकृष्णचन्द्रके धामकी प्राप्ति करानेवाला इसका सप्ताह-पारायण भी धन्य है! ।।५३।। जब सप्ताहश्रवणका योग लगता है, तब सब पाप थर्रा उठते हैं कि अब यह भागवतकी कथा जल्दी ही हमारा अन्त कर देगी ।।५४।। जिस प्रकार आग गीली-सूखी, छोटी-बड़ी—सब तरहकी लकड़ियोंको जला डालती है, उसी प्रकार यह सप्ताहश्रवण मन, वचन और कर्मद्वारा किये हुए नये-पुराने, छोटे-बड़े—सभी प्रकारके पापोंको भस्म कर देता है ।।५५।।

विद्वानोंने देवताओंकी सभामें कहा है कि जो लोग इस भारतवर्षमें श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उनका जन्म वृथा ही है ।।५६।। भला, मोहपूर्वक लालन-पालन करके यदि इस अनित्य शरीरको हृष्ट-पुष्ट और बलवान् भी बना लिया तो भी श्रीमद्भागवतकी कथा सुने

******ebook converter DEMO Watermarks*******

बिना इससे क्या लाभ हुआ? ।।५७।। अस्थियाँ ही इस शरीरके आधारस्तम्भ हैं, नस-नाडीरूप रस्सियोंसे यह बँधा हुआ है, ऊपरसे इसपर मांस और रक्त थोपकर इसे चर्मसे मँढ़ दिया गया है। इसके प्रत्येक अंगमें दुर्गन्ध आती है; क्योंकि है तो यह मल-मूत्रका भाण्ड ही ।।५८।। वृद्धावस्था और शोकके कारण यह परिणाममें दुःखमय ही है, रोगोंका तो घर ही ठहरा। यह निरन्तर किसी-न-किसी कामनासे पीड़ित रहता है, कभी इसकी तृप्ति नहीं होती। इसे धारण किये रहना भी एक भार ही है; इसके रोम-रोममें दोष भरे हुए हैं और नष्ट होनेमें इसे एक क्षण भी नहीं लगता ।।५९।। अन्तमें यदि इसे गाड़ दिया जाता है तो इसके कीड़े बन जाते हैं; कोई पशु खा जाता है तो यह विष्ठा हो जाता है और अग्निमें जला दिया जाता है तो भस्मकी ढेरी हो जाता है। ये तीन ही इसकी गतियाँ बतायी गयी हैं। ऐसे अस्थिर शरीरसे मनुष्य अविनाशी फल देनेवाला काम क्यों नहीं बना लेता? ।।६०।। जो अन्न प्रातःकाल पकाया जाता है, वह सायंकालतक बिगड़ जाता है; फिर उसीके रससे पुष्ट हुए शरीरकी नित्यता कैसी ।।६१।।

सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः ।
अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ।।६२
बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु ।
जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ।।६३
जडस्य शुष्कवंशस्य यत्र ग्रन्थिविभेदनम् ।
चित्रं किमु तदा चित्तग्रन्थिभेदः कथाश्रवात् ।।६४
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते ।।६५
संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि ।
कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता ।।६६
एवं ब्रुवति वै तस्मिन् विमानमागमत्तदा ।
वैकुण्ठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ।।६७
सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुलीसुतः ।
विमाने वैष्णवान् वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत् ।।६८

गोकर्ण उवाच

अत्रैव बहवः सन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः ।
आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ।।६९
श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते ।
फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवन्तु हरिप्रियाः ।।७०

******ebook converter DEMO Watermarks*******

हरिदासा ऊचुः

श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽत्र संस्थितः ।
श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ।
फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ।।७१

इस लोकमें सप्ताहश्रवण करनेसे भगवान्‌की शीघ्र ही प्राप्ति हो सकती है। अतः सब प्रकारके दोषोंकी निवृत्तिके लिये एकमात्र यही साधन है ।।६२।। जो लोग भागवतकी कथासे वंचित हैं, वे तो जलमें बुद्‌बुदे और जीवोंमें मच्छरोंके समान केवल मरनेके लिये ही पैदा होते हैं ।।६३।। भला, जिसके प्रभावसे जड़ और सूखे हुए बाँसकी गाँठें फट सकती हैं, उस भागवतकथाका श्रवण करनेसे चित्तकी गाँठोंका खुल जाना कौन बड़ी बात है ।।६४।।

सप्ताहश्रवण करनेसे मनुष्यके हृदयकी गाँठ खुल जाती है, उसके समस्त संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं ।।६५।।

यह भागवतकथारूप तीर्थ संसारके कीचड़को धोनेमें बड़ा ही पटु है। विद्वानोंका कथन है कि जब यह हृदयमें स्थित हो जाता है, तब मनुष्यकी मुक्ति निश्चित ही समझनी चाहिये ।।६६।।

जिस समय धुन्धुकारी ये सब बातें कह रहा था, जिसके लिये वैकुण्ठवासी पार्षदोंके सहित एक विमान उतरा; उससे सब ओर मण्डलाकार प्रकाश फैल रहा था ।।६७।।

सब लोगोंके सामने ही धुन्धुकारी उस विमानपर चढ़ गया। तब उस विमानपर आये हुए पार्षदोंको देखकर उनसे गोकर्णने यह बात कही ।।६८।।

गोकर्णने पूछा—भगवान्‌के प्रिय पार्षदो! यहाँ हमारे अनेकों शुद्धहृदय श्रोतागण हैं, उन सबके लिये आपलोग एक साथ बहुत-से विमान क्यों नहीं लाये? हम देखते हैं कि यहाँ सभीने समानरूपसे कथा सुनी है, फिर फलमें इस प्रकारका भेद क्यों हुआ, यह बताइये ।।६९-७०।।

भगवान्‌के सेवकोंने कहा—हे मानद! इस फलभेदका कारण इनके श्रवणका भेद ही है। यह ठीक है कि श्रवण तो सबने समानरूपसे ही किया है, किन्तु इसके-जैसा मनन नहीं किया। इसीसे एक साथ भजन करनेपर भी उसके फलमें भेद रहा ।।७१।। इस प्रेतने सात दिनोंतक निराहार रहकर श्रवण किया था, तथा सुने हुए विषयका स्थिरचित्तसे यह खूब मनन-निदिध्यासन भी करता रहता था ।।७२।। जो ज्ञान दृढ़ नहीं होता, वह व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार ध्यान न देनेसे श्रवणका, संदेहसे मन्त्रका और चित्तके इधर-उधर भटकते रहनेसे जपका भी कोई फल नहीं होता ।।७३।। वैष्णवहीन देश, अपात्रको कराया हुआ श्राद्धका भोजन, अश्रोत्रियको दिया हुआ दान एवं आचारहीन कुल—इन सबका नाश हो जाता है ।।७४।। गुरुवचनोंमें विश्वास, दीनताका भाव, मनके दोषोंपर विजय और कथामें चित्तकी एकाग्रता इत्यादि नियमोंका यदि पालन किया जाय तो श्रवणका यथार्थ फल मिलता है। यदि ये श्रोता फिरसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनें तो निश्चय ही सबको वैकुण्ठकी प्राप्ति

******ebook converter DEMO Watermarks*******

होगी ।।७५-७६।। और गोकर्णजी! आपको तो भगवान् स्वयं आकर गोलोकधाममें ले जायँगे। यों कहकर वे सब पार्षद हरिकीर्तन करते वैकुण्ठलोकको चले गये ।।७७।।

सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् ।
मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ।।७२
अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ।
संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ।।७३
अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ।
हतमश्रोत्रिये दानमनाचारं हतं कुलम् ।।७४
विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन्दीनत्वभावना ।
मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ।।७५
एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ।
पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसतिर्ध्रुवम् ।।७६
गोकर्ण तव गोविन्दो गोलोकं दास्यति स्वयम् ।
एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरिकीर्तनाः ।।७७
श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः ।
सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ।।७८
कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद ।।७९
विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ।
जयशब्दा नमःशब्दास्तत्रासन् बहवस्तदा ।।८०
पाञ्चजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ।
गोकर्णं तु समालिङ्ग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ।।८१
श्रोतॄनन्यान् घनश्यामान् पीतकौशेयवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ।।८२
तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचाण्डालजातयः ।
विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ।।८३
प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः ।
गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम् ।
कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ।।८४

श्रावण मासमें गोकर्णजीने फिर उसी प्रकार सप्ताहक्रमसे कथा कही और उन श्रोताओंने उसे फिर सुना ।।७८।। नारदजी! इस कथाकी समाप्तिपर जो कुछ हुआ, वह

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सुनिये ।।७९।। वहाँ भक्तोंसे भरे हुए विमानोंके साथ भगवान् प्रकट हुए। सब ओरसे खूब जय-जयकार और नमस्कारकी ध्वनियाँ होने लगीं ।।८०।। भगवान् स्वयं हर्षित होकर अपने पांचजन्य शंखकी ध्वनि करने लगे और उन्होंने गोकर्णको हृदयसे लगाकर अपने ही समान बना लिया ।।८१।। उन्होंने क्षणभरमें ही अन्य सब श्रोताओंको भी मेघके समान श्यामवर्ण, रेशमी पीताम्बरधारी तथा किरीट और कुण्डलादिसे विभूषित कर दिया ।।८२।। उस गाँवमें कुत्ते और चाण्डालपर्यन्त जितने भी जीव थे, वे सभी गोकर्णजीकी कृपासे विमानोंपर चढ़ा लिये गये ।।८३।। तथा जहाँ योगिजन जाते हैं, उस भगवद्धाममें वे भेज दिये गये। इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण कथाश्रवणसे प्रसन्न होकर गोकर्णजीको साथ ले अपने ग्वालबालोंके प्रिय गोलोकधाममें चले गये ।।८४।। पूर्वकालमें जैसे अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामके साथ साकेतधाम सिधारे थे, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण उन सबको योगिदुर्लभ गोलोकधामको ले गये ।।८५।। जिस लोकमें सूर्य, चन्द्रमा और सिद्धोंकी भी कभी गति नहीं हो सकती, उसमें वे श्रीमद्भागवत श्रवण करनेसे चले गये ।।८६।।

अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ।
तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ।।८५
यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा ।
तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ।।८६
ब्रूमोऽत्र ते किं फलवृन्दमुज्ज्वलं
सप्ताहयज्ञेन कथासु सञ्चितम् ।
कर्णेन गोकर्णकथाक्षरो यैः
पीतश्च ते गर्भगता न भूयः ।।८७
वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणै-
स्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसञ्चितैः ।
योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै
सप्ताहगाथाश्रवणेन यान्ति याम् ।।८८
इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः ।
पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ।।८९
आख्यानमेतत्परमं पवित्रं
श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ।
श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहे-
न्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ।।९०

नारदजी! सप्ताहयज्ञके द्वारा कथाश्रवण करनेसे जैसा उज्ज्वल फल संचित होता है, उसके विषयमें हम आपसे क्या कहें? अजी! जिन्होंने अपने कर्णपुटसे गोकर्णजीकी कथाके एक अक्षरका भी पान किया था, वे फिर माताके गर्भमें नहीं आये ।।८७।। जिस गतिको लोग

******ebook converter DEMO Watermarks*******

वायु, जल या पत्ते खाकर शरीर सुखानेसे, बहुत कालतक घोर तपस्या करनेसे और योगाभ्याससे भी नहीं पा सकते, उसे वे सप्ताहश्रवणसे सहजमें ही प्राप्त कर लेते हैं ।।८८।। इस परम पवित्र इतिहासका पाठ चित्रकूटपर विराजमान मुनीश्वर शाण्डिल्य भी ब्रह्मानन्दमें मग्न होकर करते रहते हैं ।।८९।। यह कथा बड़ी ही पवित्र है। एक बारके श्रवणसे ही समस्त पापराशिको भस्म कर देती है। यदि इसका श्राद्धके समय पाठ किया जाय, तो इससे पितृगणको बड़ी तृप्ति होती है और नित्य पाठ करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ।।९०।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोकर्णमोक्षवर्णनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ षष्ठोऽध्यायः
सप्ताहयज्ञकी विधि

कुमारा ऊचुः

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् ।
सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ।।१

दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः ।
विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ।।२

श्रीसनकादि कहते हैं—नारदजी! अब हम आपको सप्ताहश्रवणकी विधि बताते हैं। यह विधि प्रायः लोगोंकी सहायता और धनसे साध्य कही गयी है ।।१।।

पहले तो यत्नपूर्वक ज्योतिषीको बुलाकर मुहूर्त पूछना चाहिये तथा विवाहके लिये जिस प्रकार धनका प्रबन्ध किया जाता है उस प्रकार ही धनकी व्यवस्था इसके लिये करनी चाहिये ।।२।।

नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः ।
एते मासाः कथारम्भे श्रोतॄणां मोक्षसूचकाः ।।३
मासानां विप्र हेयानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ।
सहायाश्चेतरे तत्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ।।४
देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ।
भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ।।५
दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ।।६
देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ।
तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ।।७
सतां समाजो भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः ।
अपूर्वरसरूपैव कथा चात्र भविष्यति ।।८
श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ।
भवन्तश्च तथा शीघ्रमायात प्रेमतत्पराः ।।९
नावकाशः कदाचिच्चेद् दिनमात्रं तथापि तु ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सर्वथाऽऽगमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ।।१०
एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च ।
आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ।।११
तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं मतम् ।
विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ।।१२
शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ।
गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।।१३
अर्वाक्पञ्चाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत् ।
कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीखण्डमण्डितः ।।१४
फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ।
चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसम्पद्विराजितः ।।१५

कथा आरम्भ करनेमें भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़ और श्रावण—ये छः महीने श्रोताओंके लिये मोक्षकी प्राप्तिके कारण हैं ।।३।। देवर्षे! इन महीनोंमें भी भद्रा-व्यतीपात आदि कुयोगोंको सर्वथा त्याग देना चाहिये तथा दूसरे लोग जो उत्साही हों, उन्हें अपना सहायक बना लेना चाहिये ।।४।। फिर प्रयत्न करके देश-देशान्तरोंमें यह संवाद भेजना चाहिये कि यहाँ कथा होगी, सब लोगोंको सपरिवार पधारना चाहिये ।।५।। जो स्त्री और शूद्रादि भगवत्कथा एवं संकीर्तनसे दूर पड़ गये हैं। उनको भी सूचना हो जाय, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये ।।६।। देश-देशमें जो विरक्त वैष्णव और हरिकीर्तनके प्रेमी हों, उनके पास निमन्त्रणपत्र अवश्य भेजे। उसे लिखनेकी विधि इस प्रकार बतायी गयी है ।।७।। 'महानुभावो! यहाँ सात दिनतक सत्पुरुषोंका बड़ा दुर्लभ समागम रहेगा और अपूर्व रसमयी श्रीमद्भागवतकी कथा होगी ।।८।। आपलोग भगवद्रसके रसिक हैं, अतः श्रीभागवतामृतका पान करनेके लिये प्रेमपूर्वक शीघ्र ही पधारनेकी कृपा करें ।।९।। यदि आपको विशेष अवकाश न हो, तो भी एक दिनके लिये तो अवश्य ही कृपा करनी चाहिये; क्योंकि यहाँका तो एक क्षण भी अत्यन्त दुर्लभ है' ।।१०।। इस प्रकार विनयपूर्वक उन्हें निमन्त्रित करे और जो लोग आयें, उनके लिये यथोचित निवास-स्थानका प्रबन्ध करे ।।११।।

कथाका श्रवण किसी तीर्थमें, वनमें अथवा अपने घरपर भी अच्छा माना गया है। जहाँ लम्बा-चौड़ा मैदान हो, वहीं कथास्थल रखना चाहिये ।।१२।। भूमिका शोधन, मार्जन और लेपन करके रंग-बिरंगी धातुओंसे चौक पूरे। घरकी सारी सामग्री उठाकर एक कोनेमें रख दे ।।१३।। पाँच दिन पहलेसे ही यत्नपूर्वक बहुत-से बिछानेके वस्त्र एकत्र कर ले तथा केलेके खंभोंसे सुशोभित एक ऊँचा मण्डप तैयार कराये ।।१४।। उसे सब ओर फल, पुष्प, पत्र और चँदोवेसे अलंकृत करे तथा चारों ओर झंडियाँ लगाकर तरह-तरहके सामानोंसे सजा दे ।।१५।। उस मण्डपमें कुछ ऊँचाईपर सात विशाल लोकोंकी कल्पना करे और उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर बैठाये ।।१६।। आगेकी ओर उनके लिये वहाँ यथोचित आसन

******ebook converter DEMO Watermarks*******

तैयार रखे। इनके पीछे वक्ताके लिये भी एक दिव्य सिंहासनका प्रबन्ध करे ।।१७।। यदि वक्ताका मुख उत्तरकी ओर रहे तो श्रोता पूर्वाभिमुख होकर बैठे और यदि वक्ता पूर्वाभिमुख रहे तो श्रोताको उत्तरकी ओर मुख करके बैठना चाहिये ।।१८।। अथवा वक्ता और श्रोताको पूर्वमुख होकर बैठना चाहिये। देश-काल आदिको जाननेवाले महानुभावोंने श्रोताके लिये ऐसा ही नियम बताया है ।।१९।। जो वेद-शास्त्रकी स्पष्ट व्याख्या करनेमें समर्थ हो, तरह-तरहके दृष्टान्त दे सकता हो तथा विवेकी और अत्यन्त निःस्पृह हो, ऐसे विरक्त और विष्णुभक्त ब्राह्मणको वक्ता बनाना चाहिये ।।२०।। श्रीमद्भागवतके प्रवचनमें ऐसे लोगोंको नियुक्त नहीं करना चाहिये जो पण्डित होनेपर भी अनेक धर्मोंके चक्करमें पड़े हुए, स्त्री-लम्पट एवं पाखण्डके प्रचारक हों ।।२१।। वक्ताके पास ही उसकी सहायताके लिये एक वैसा ही विद्वान् और स्थापित करना चाहिये। वह भी सब प्रकारके संशयोंकी निवृत्ति करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल हो ।।२२।।

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ।
तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ।।१६
पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ।
वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ।।१७
उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा ।
प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा ।।१८
अथवा पूर्वदिग्ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः ।
श्रोतृणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः ।।१९
विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् ।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः ।।२०
अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः ।
शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः ।।२१
वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ।
पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ।।२२
वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग्व्रताप्तये ।
अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ।।२३
नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं स्वं प्रयत्नतः ।
कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ।।२४
पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ।।२५
कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

प्रदक्षिणनमस्कारान् पूजान्ते स्तुतिमाचरेत् ।।२६

कथा-प्रारम्भके दिनसे एक दिन पूर्व व्रत ग्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये। तथा अरुणोदयके समय शौचसे निवृत्त होकर अच्छी तरह स्नान करे ।।२३।। और संध्यादि अपने नित्यकर्मोंको संक्षेपसे समाप्त करके कथाके विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये गणेशजीका पूजन करे ।।२४।।

तदनन्तर पितृगणका तर्पण कर पूर्व पापोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे और एक मण्डल बनाकर उसमें श्रीहरिको स्थापित करे ।।२५।।

फिर भगवान् श्रीकृष्णको लक्ष्य करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः षोडशोपचारविधिसे पूजन करे और उसके पश्चात् प्रदक्षिणा तथा नमस्कारादि कर इस प्रकार स्तुति करे ।।२६।।

संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ।
कर्ममोहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात् ।।२७
श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः ।
कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता ।।२८
ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ।
स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ।।२९
श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ।
स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ।।३०
मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया ।
निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ।।३१
एवं दीनवचः प्रोच्य वक्तारं चाथ पूजयेत् ।
सम्भूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत् ।।३२
शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ।।३३
तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा ।
सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ।।३४
वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये ।
कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ।।३५
ब्राह्मणान् वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ।
नत्वा सम्पूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ।।३६
लोकवित्तधनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च ।
कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम् ।।३७

******ebook converter DEMO Watermarks*******

आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरान्तकम् ।
वाचनीया कथा सम्यग्धीरकण्ठं सुधीमता ।।३८
कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् ।
तत्कथामनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ।।३९

'करुणानिधान! मैं संसारसागरमें डूबा हुआ और बड़ा दीन हूँ। कर्मोंके मोहरूपी ग्राहने मुझे पकड़ रखा है। आप इस संसारसागरसे मेरा उद्धार कीजिये' ।।२७।। इसके पश्चात् धूप-दीप आदि सामग्रियोंसे श्रीमद्भागवतकी भी बड़े उत्साह और प्रीतिपूर्वक विधि-विधानसे पूजा करे ।।२८।। फिर पुस्तकके आगे नारियल रखकर नमस्कार करे और प्रसन्नचित्तसे इस प्रकार स्तुति करे— ।।२९।। 'श्रीमद्भागवतके रूपमें आप साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान हैं। नाथ! मैंने भवसागरसे छुटकारा पानेके लिये आपकी शरण ली है ।।३०।। मेरा यह मनोरथ आप बिना किसी विघ्न-बाधाके सांगोपांग पूरा करें। केशव! मैं आपका दास हूँ' ।।३१।।

इस प्रकार दीन वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करे। उसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करे और फिर पूजाके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे— ।।३२।। 'शुकस्वरूप भगवन्! आप समझानेकी कलामें कुशल और सब शास्त्रोंमें पारंगत हैं; कृपया इस कथाको प्रकाशित करके मेरा अज्ञान दूर करें' ।।३३।। फिर अपने कल्याणके लिये प्रसन्नता-पूर्वक उसके सामने नियम ग्रहण करे और सात दिनोंतक यथाशक्ति उसका पालन करे ।।३४।। कथामें विघ्न न हो, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंको और वरण करे; वे द्वादशाक्षर मन्त्रद्वारा भगवान्‌के नामोंका जप करें ।।३५।। फिर ब्राह्मण, अन्य विष्णुभक्त एवं कीर्तन करनेवालोंको नमस्कार करके उनकी पूजा करे और उनकी आज्ञा पाकर स्वयं भी आसनपर बैठ जाय ।।३६।। जो पुरुष लोक, सम्पत्ति, धन, घर और पुत्रादिकी चिन्ता छोड़कर शुद्धचित्तसे केवल कथामें ही ध्यान रखता है, उसे इसके श्रवणका उत्तम फल मिलता है ।।३७।।

बुद्धिमान् वक्ताको चाहिये कि सूर्योदयसे कथा आरम्भ करके साढ़े तीन पहरतक मध्यम स्वरसे अच्छी तरह कथा बाँचे ।।३८।। दोपहरके समय दो घड़ीतक कथा बंद रखे। उस समय कथाके प्रसंगके अनुसार वैष्णवोंको भगवान्‌के गुणोंका कीर्तन करना चाहिये—व्यर्थ बातें नहीं करनी चाहिये ।।३९।। कथाके समय मल-मूत्रके वेगको काबूमें रखनेके लिये अल्पाहार सुखकारी होता है; इसलिये श्रोता केवल एक ही समय हविष्यान्न भोजन करे ।।४०।। यदि शक्ति हो तो सातों दिन निराहार रहकर कथा सुने अथवा केवल घी या दूध पीकर सुखपूर्वक श्रवण करे ।।४१।। अथवा फलाहार या एक समय ही भोजन करे। जिससे जैसा नियम सुभीतेसे सध सके, उसीको कथाश्रवणके लिये ग्रहण करे ।।४२।। मैं तो उपवासकी अपेक्षा भोजन करना अच्छा समझता हूँ, यदि वह कथाश्रवणमें सहायक हो। यदि उपवाससे श्रवणमें बाधा पहुँचती हो तो वह किसी कामका नहीं ।।४३।।

मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ।
हविष्यान्नेन कर्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ।।४०

******ebook converter DEMO Watermarks*******

उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ।
घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणुयात्सुखम् ।।४१
फलाहारेण वा भाव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ।
सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ।।४२
भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम् ।
नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ।।४३
सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमाञ्छृणु नारद ।
विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ।।४४
ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ।
कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ।।४५
द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ।
भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ।।४६
कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ।
दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ।।४७
वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ।
स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ।।४८
रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैस्तथा ।
द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ।।४९
सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ।
उदारमानसं तद्वदेवं कुर्यात्कथाव्रती ।।५०
दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ।
अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमाम् ।।५१
अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका ।
स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ।।५२
एतेषु विधिना श्रावे तदक्षयतरं भवेत् ।
अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ।।५३

नारदजी! नियमसे सप्ताह सुननेवाले पुरुषोंके नियम सुनिये। विष्णुभक्तकी दीक्षासे रहित पुरुष कथाश्रवणका अधिकारी नहीं है ।।४४।। जो पुरुष नियमसे कथा सुने, उसे ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना और नित्यप्रति कथा समाप्त होनेपर पत्तलमें भोजन करना चाहिये ।।४५।। दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित पदार्थ और बासी अन्न—इनका उसे

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सर्वदा ही त्याग करना चाहिये ।।४६।। काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह और द्वेषको तो अपने पास भी नहीं फटकने देना चाहिये ।।४७।। वह वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक तथा स्त्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दासे भी बचे ।।४८।। नियमसे कथा सुननेवाले पुरुषको रजस्वला स्त्री, अन्त्यज, म्लेच्छ, पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले तथा वेदको न माननेवाले पुरुषोंसे बात नहीं करनी चाहिये ।।४९।। सर्वदा सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय और उदारताका बर्ताव करना चाहिये ।।५०।। धनहीन, क्षयरोगी, किसी अन्य रोगसे पीड़ित, भाग्यहीन, पापी, पुत्रहीन और मुमुक्षु भी यह कथा श्रवण करे ।।५१।। जिस स्त्रीका रजोदर्शन रुक गया हो, जिसके एक ही संतान होकर रह गयी हो, जो बाँझ हो, जिसकी संतान होकर मर जाती हो अथवा जिसका गर्भ गिर जाता हो, वह यत्नपूर्वक इस कथाको सुने ।।५२।। ये सब यदि विधिवत् कथा सुनें तो इन्हें अक्षय फलकी प्राप्ति हो सकती है। यह अत्युत्तम दिव्य कथा करोड़ों यज्ञोंका फल देनेवाली है ।।५३।।

एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ।
जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ।।५४
अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः ।
श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ।।५५
एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ।
पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्यातिभक्तितः ।।५६
प्रसादतुलसीमाला श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ।
मृदङ्गतालललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ।।५७
जयशब्दं नमःशब्दं शङ्खशब्दं च कारयेत् ।
विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ।।५८
विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि ।
गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्तव्यः कर्मशान्तये ।।५९
प्रतिश्लोकं तु जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ।
पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ।।६०
अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ।
तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ।।६१
होमाशक्तौ बुधो हौम्यं दद्यात्तत्फलसिद्धये ।
नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकतानयोः ।।६२
दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ।
तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः ।।६३

******ebook converter DEMO Watermarks*******

द्वादश ब्राह्मणान् पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसैः ।
दद्यात्सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ।।६४
शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ।
तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ।।६५
सम्पूज्यावाहनाद्यैस्तदुपचारैः सदक्षिणम् ।
वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय यतात्मने ।।६६

इस प्रकार इस व्रतकी विधियोंका पालन करके फिर उद्यापन करे। जिन्हें इसके विशेष फलकी इच्छा हो, वे जन्माष्टमीव्रतके समान ही इस कथाव्रतका उद्यापन करें ।।५४।। किन्तु जो भगवान्‌के अकिंचन भक्त हैं, उनके लिये उद्यापनका कोई आग्रह नहीं है। वे श्रवणसे ही पवित्र हैं; क्योंकि वे तो निष्काम भगवद्भक्त हैं ।।५५।।

इस प्रकार जब सप्ताहयज्ञ समाप्त हो जाय, तब श्रोताओंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक पुस्तक और वक्ताकी पूजा करनी चाहिये ।।५६।। फिर वक्ता श्रोताओंको प्रसाद, तुलसी और प्रसादी मालाएँ दे तथा सब लोग मृदंग और झाँझकी मनोहर ध्वनिसे सुन्दर कीर्तन करें ।।५७।। जय-जयकार, नमस्कार और शंखध्वनिका घोष कराये तथा ब्राह्मण और याचकोंको धन और अन्न दे ।।५८।। श्रोता विरक्त हो तो कर्मकी शान्तिके लिये दूसरे दिन गीतापाठ करे; गृहस्थ हो तो हवन करे ।।५९।। उस हवनमें दशमस्कन्धका एक-एक श्लोक पढ़कर विधिपूर्वक खीर, मधु, घृत, तिल और अन्नादि सामग्रियोंसे आहुति दे ।।६०।।

अथवा एकाग्रचित्तसे गायत्री-मन्त्रद्वारा हवन करे; क्योंकि तत्त्वतः यह महापुराण गायत्रीस्वरूप ही है ।।६१।। होम करनेकी शक्ति न हो तो उसका फल प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणोंको हवनसामग्री दान करे तथा नाना प्रकारकी त्रुटियोंको दूर करनेके लिये और विधिमें फिर जो न्यूनाधिकता रह गयी हो, उसके दोषोंकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करे। उससे सभी कर्म सफल हो जाते हैं; क्योंकि कोई भी कर्म इससे बढ़कर नहीं है ।।६२-६३।।

फिर बारह ब्राह्मणोंको खीर और मधु आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ खिलाये तथा व्रतकी पूर्तिके लिये गौ और सुवर्णका दान करे ।।६४।। सामर्थ्य हो तो तीन तोले सोनेका एक सिंहासन बनवाये, उसपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पोथी रखकर उसकी आवाहनादि विविध उपचारोंसे पूजा करे और फिर जितेन्द्रिय आचार्यको—उसका वस्त्र, आभूषण एवं गन्धादिसे पूजनकर—दक्षिणाके सहित समर्पण कर दे ।।६५-६६।। यों करनेसे वह बुद्धिमान् दाता जन्म-मरणके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। यह सप्ताहपारायणकी विधि सब पापोंकी निवृत्ति करनेवाली है। इसका इस प्रकार ठीक-ठीक पालन करनेसे यह मंगलमय भागवतपुराण अभीष्ट फल प्रदान करता है तथा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारोंकी प्राप्तिका साधन हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं ।।६७-६८।।

आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ।।६७

फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ।
धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशयः ।।६८

कुमारा ऊचुः

इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।
श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्थिते ।।६९

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम् ।
सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ।।७०

शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम् ।
यथाविधि ततो देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ।।७१

तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता परा ।
तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोहरम् ।।७२

नारदश्च कृतार्थोऽभूत्सिद्धे स्वीये मनोरथे ।
पुलकीकृतसर्वाङ्गः परमानन्दसम्भृतः ।।७३

एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ।
प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः ।।७४

नारद उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ।
अद्य मे भगवाल्लँब्धः सर्वपापहरो हरिः ।।७५

श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः ।
वैकुण्ठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते ।।७६

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सनकादि कहते हैं—नारदजी! इस प्रकार तुम्हें यह सप्ताहश्रवणकी विधि हमने पूरी-पूरी सुना दी, अब और क्या सुनना चाहते हो? इस श्रीमद्भागवतसे भोग और मोक्ष दोनों ही हाथ लग जाते हैं ।।६९।।

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! यों कहकर महामुनि सनकादिने एक सप्ताहतक विधिपूर्वक इस सर्वपापनाशिनी, परम पवित्र तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली भागवतकथाका प्रवचन किया। सब प्राणियोंने नियमपूर्वक इसे श्रवण किया। इसके पश्चात् उन्होंने विधिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति की ।।७०-७१।। कथाके अन्तमें ज्ञान, वैराग्य और भक्तिको बड़ी पुष्टि मिली और वे तीनों एकदम तरुण होकर सब जीवोंका चित्त अपनी ओर आकर्षित करने लगे ।।७२।। अपना मनोरथ पूरा होनेसे नारदजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई, उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे परमानन्दसे पूर्ण हो गये ।।७३।। इस प्रकार कथा श्रवणकर भगवान्‌के प्यारे नारदजी हाथ जोड़कर प्रेमगद्गद वाणीसे सनकादिसे कहने लगे ।।७४।।

नारदजीने कहा—मैं धन्य हूँ, आपलोगोंने करुणा करके मुझे बड़ा ही अनुगृहीत किया है, आज मुझे सर्वपापहारी भगवान् श्रीहरिकी ही प्राप्ति हो गयी ।।७५।। तपोधनो! मैं श्रीमद्भागवतश्रवणको ही सब धर्मोंसे श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि जिसके श्रवणसे वैकुण्ठ (गोलोक)-विहारी श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है ।।७६।।

सूत उवाच

एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ।
परिभ्रमन् समायातः शुको योगेश्वरस्तदा ।।७७
तत्राययौ षोडशवार्षिकस्तदा
व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः ।
कथावसाने निजलाभपूर्णः
प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ।।७८
दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं
सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ।
प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं
स्थितोऽवदत्संशृणुतामलां गिरम् ।।७९

श्रीशुक उवाच

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।।८०
धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो
निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं
तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते
किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः
शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ।।८१
श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं
यद्वैष्णवानां धनं
यस्मिन् पारमहंस्यमेवममलं
ज्ञानं परं गीयते ।
यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं
नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् प्रपठन् विचारणपरो
भक्त्या विमुच्येन्नरः ।।८२
स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः ।
अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुञ्चत कर्हिचित् ।।८३

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! वैष्णवश्रेष्ठ नारदजी यों कह ही रहे थे कि वहाँ घूमते-फिरते योगेश्वर शुकदेवजी आ गये ।।७७।। कथा समाप्त होते ही व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी वहाँ पधारे। सोलह वर्षकी-सी आयु, आत्मलाभसे पूर्ण, ज्ञानरूपी महासागरका संवर्धन करनेके लिये चन्द्रमाके समान वे प्रेमसे धीरे-धीरे श्रीमद्भागवतका पाठ कर रहे थे ।।७८।। परम तेजस्वी शुकदेवजीको देखकर सारे सभासद् झटपट खड़े हो गये और उन्हें एक ऊँचे आसनपर बैठाया। फिर देवर्षि नारदजीने उनका प्रेमपूर्वक पूजन किया। उन्होंने सुखपूर्वक बैठकर कहा—'आपलोग मेरी निर्मल वाणी सुनिये' ।।७९।।

श्रीशुकदेवजी बोले—रसिक एवं भावुक जन! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका परिपक्व फल है। श्रीशुकदेवरूप शुकके मुखका संयोग होनेसे अमृतरससे परिपूर्ण है। यह रस-ही-रस है—इसमें न छिलका है न गुठली। यह इसी लोकमें सुलभ है। जबतक शरीरमें चेतना रहे तबतक आपलोग बार-बार इसका पान करें ।।८०।। महामुनि व्यासदेवने श्रीमद्भागवतमहापुराणकी रचना की है। इसमें निष्कपट—निष्काम परम धर्मका निरूपण है। इसमें शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषोंके जानने-योग्य कल्याणकारी वास्तविक वस्तुका वर्णन है,

******ebook converter DEMO Watermarks*******

जिससे तीनों तापोंकी शान्ति होती है। इसका आश्रय लेनेपर दूसरे शास्त्र अथवा साधनकी आवश्यकता नहीं रहती। जब कभी पुण्यात्मा पुरुष इसके श्रवणकी इच्छा करते हैं, तभी ईश्वर अविलम्ब उनके हृदयमें अवरुद्ध हो जाता है ।।८१।। यह भागवत पुराणोंका तिलक और वैष्णवोंका धन है। इसमें परमहंसोंके प्राप्य विशुद्ध ज्ञानका ही वर्णन किया गया है; तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित निवृत्तिमार्गको प्रकाशित किया गया है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसके श्रवण, पठन और मननमें तत्पर रहता है, वह मुक्त हो जाता है ।।८२।। यह रस स्वर्गलोक, सत्यलोक, कैलास और वैकुण्ठमें भी नहीं है। इसलिये भाग्यवान् श्रोताओ! तुम इसका खूब पान करो; इसे कभी मत छोड़ो, मत छोड़ो ।।८३।।

सूत उवाच

एवं ब्रुवाणे सति बादरायणौ
मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ।
प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभि-
र्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ।।८४
दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं
ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा ।
भवो भवान्या कमलासनस्तु
तत्रागमत्कीर्तनदर्शनाय ।।८५
प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया
चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया
रागकर्तार्जुनोऽभूत् ।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः
कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया
व्यासपुत्रो बभूव ।।८६
ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र
भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ।
अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य
हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत् ।।८७
मत्तो वरं भाववृताद् वृणुध्वं
प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि साम्प्रतम् ।
श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः

******ebook converter DEMO Watermarks*******

प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ।।८८

नगाहगाथासु च सर्वभक्तै-
रेभिस्त्वया भाव्यमिति प्रयत्नात् ।
मनोरथोऽयं परिपूरणीय-
स्तथेति चोक्त्वान्तरधीयताच्युतः ।।८९

सूतजी कहते हैं—श्रीशुकदेवजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि उस सभाके बीचोबीच प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुन आदि पार्षदोंके सहित साक्षात् श्रीहरि प्रकट हो गये। तब देवर्षि नारदने भगवान् और उनके भक्तोंकी यथोचित पूजा की ।।८४।।

भगवान्‌को प्रसन्न देखकर देवर्षिने उन्हें एक विशाल सिंहासनपर बैठा दिया और सब लोग उनके सामने संकीर्तन करने लगे। उस कीर्तनको देखनेके लिये श्रीपार्वतीजीके सहित महादेवजी और ब्रह्माजी भी आये ।।८५।।

कीर्तन आरम्भ हुआ। प्रह्लादजी तो चंचलगति (फुर्तीले) होनेके कारण करताल बजाने लगे, उद्धवजीने झाँझें उठा लीं, देवर्षि नारद वीणाकी ध्वनि करने लगे, स्वर-विज्ञान (गान-विद्या)-में कुशल होनेके कारण अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदंग बजाना आरम्भ किया, सनकादि बीच-बीचमें जयघोष करने लगे और इन सबके आगे शुकदेवजी तरह-तरहकी सरस अंगभंगी करके भाव बताने लगे ।।८६।।

इन सबके बीचमें परम तेजस्वी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नटोंके समान नाचने लगे। ऐसा अलौकिक कीर्तन देखकर भगवान् प्रसन्न हो गये और इस प्रकार कहने लगे— ।।८७।।

'मैं तुम्हारी इस कथा और कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे भक्तिभावने इस समय मुझे अपने वशमें कर लिया है। अतः तुमलोग मुझसे वर माँगो'। भगवान्‌के ये वचन सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और प्रेमार्द्रचित्तसे भगवान्‌से कहने लगे ।।८८।।

'भगवन्! हमारी यह अभिलाषा है कि भविष्यमें भी जहाँ-कहीं सप्ताह-कथा हो, वहाँ आप इन पार्षदोंके सहित अवश्य पधारें। हमारा यह मनोरथ पूर्ण कर दीजिये'। भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये ।।८९।।

ततोऽनमत्तच्चरणेषु नारद-
स्तथा शुकादीनपि तापसांश्च ।
अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः
सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ।।९०
भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा
शास्त्रे स्वकीयेऽपि तदा शुकेन ।
अतो हरिर्भागवतस्य सेवना-
च्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ।।९१
दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां

******ebook converter DEMO Watermarks*******

मायापिशाचीपरिमर्दितानाम् ।
संसारसिन्धौ परिपातितानां
क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ।।९२

शौनक उवाच

शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः ।
सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिन्धि मे संशयं त्विमम् ।।९३

सूत उवाच

आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ।
नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत् ।।९४
परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये ।
शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत्कथाम् ।।९५
तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति ।
ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ।।९६
इत्येतत्ते समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।
कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ।।९७
कृष्णप्रियं सकलकल्मषनाशनं च
मुक्त्येकहेतुमिह भक्तिविलासकारि ।
सन्तः कथानकमिदं पिबतादरेण
लोके हि तीर्थपरिशीलनसेवया किम् ।।९८

इसके पश्चात् नारदजीने भगवान् तथा उनके पार्षदोंके चरणोंको लक्ष्य करके प्रणाम किया और फिर शुकदेवजी आदि तपस्वियोंको भी नमस्कार किया। कथामृतका पान करनेसे सब लोगोंको बड़ा ही आनन्द हुआ, उनका सारा मोह नष्ट हो गया। फिर वे सब लोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये ।।९०।। उस समय शुकदेवजीने भक्तिको उसके पुत्रोंसहित अपने शास्त्रमें स्थापित कर दिया। इसीसे भागवतका सेवन करनेसे श्रीहरि वैष्णवोंके हृदयमें आ विराजते हैं ।।९१।। जो लोग दरिद्रताके दुःखज्वरकी ज्वालासे दग्ध हो रहे हैं, जिन्हें माया-पिशाचीने रौंद डाला है तथा जो संसारसमुद्रमें डूब रहे हैं, उनका कल्याण करनेके लिये श्रीमद्भागवत सिंहनाद कर रहा है ।।९२।।

शौनकजीने पूछा—सूतजी! शुकदेवजीने राजा परीक्षित्को, गोकर्णने धुन्धुकारीको और सनकादिने नारदजीको किस-किस समय यह ग्रन्थ सुनाया था—मेरा यह संशय दूर

******ebook converter DEMO Watermarks*******

कीजिये! ।।९३।।

सूतजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्णके स्वधामगमनके बाद कलियुगके तीस वर्षसे कुछ अधिक बीत जानेपर भाद्रपद मासकी शुक्ला नवमीको शुकदेवजीने कथा आरम्भ की थी ।।९४।। राजा परीक्षित्के कथा सुननेके बाद कलियुगके दो सौ वर्ष बीत जानेपर आषाढ़ मासकी शुक्ला नवमीको गोकर्णजीने यह कथा सुनायी थी ।।९५।। इसके पीछे कलियुगके तीस वर्ष और निकल जानेपर कार्तिक शुक्ला नवमीसे सनकादिने कथा आरम्भ की थी ।।९६।। निष्पाप शौनकजी! आपने जो कुछ पूछा था, उसका उत्तर मैंने आपको दे दिया। इस कलियुगमें भागवतकी कथा भवरोगकी रामबाण औषध है ।।९७।।

संतजन! आपलोग आदरपूर्वक इस कथामृतका पान कीजिये। यह श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय, सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला मुक्तिका एकमात्र कारण और भक्तिको बढ़ानेवाला है। लोकमें अन्य कल्याणकारी साधनोंका विचार करने और तीर्थोंका सेवन करनेसे क्या होगा ।।९८।।

स्वपुरुषमपि वीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर भगवत्कथासु मत्तान्
प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ।।९९
असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः
क्षणार्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम् ।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे
परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ।।१००
रसप्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ।
कण्ठे सम्बध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत् ।।१०१
इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं
सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य ।
जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किञ्चित्
पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ।।१०२
एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या
यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ।
तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते
याथार्थ्यान्न हि भुवने किमप्यसाध्यम् ।।१०३

अपने दूतको हाथमें पाश लिये देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं—'देखो, जो भगवान्की कथा-वार्तामें मत्त हो रहे हों, उनसे दूर रहना; मैं औरोंको ही दण्ड देनेकी शक्ति

******ebook converter DEMO Watermarks*******

रखता हूँ, वैष्णवोंको नहीं’ ।।९९।।

इस असार संसारमें विषयरूप विषकी आसक्तिके कारण व्याकुल बुद्धिवाले पुरुषो! अपने कल्याणके उद्देश्यसे आधे क्षणके लिये भी इस शुककथारूप अनुपम सुधाका पान करो। प्यारे भाइयो! निन्दित कथाओंसे युक्त कुपथमें व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो? इस कथाके कानमें प्रवेश करते ही मुक्ति हो जाती है, इस बातके साक्षी राजा परीक्षित् हैं ।।१००।।

श्रीशुकदेवजीने प्रेमरसके प्रवाहमें स्थित होकर इस कथाको कहा था। इसका जिसके कण्ठसे सम्बन्ध हो जाता है, वह वैकुण्ठका स्वामी बन जाता है ।।१०१।। शौनकजी! मैंने अनेक शास्त्रोंको देखकर आपको यह परम गोप्य रहस्य अभी-अभी सुनाया है। सब शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका यही निचोड़ है। संसारमें इस शुकशास्त्रसे अधिक पवित्र और कोई वस्तु नहीं है; अतः आपलोग परमानन्दकी प्राप्तिके लिये इस द्वादशस्कन्धरूप रसका पान करें ।।१०२।।

जो पुरुष नियमपूर्वक इस कथाका भक्तिभावसे श्रवण करता है और जो शुद्धान्तःकरण भगवद्भक्तोंके सामने इसे सुनाता है, वे दोनों ही विधिका पूरा-पूरा पालन करनेके कारण इसका यथार्थ फल पाते हैं—उनके लिये त्रिलोकीमें कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता ।।१०३।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

।। समाप्तमिदं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम् ।।

।। हरिः ॐ तत्सत् ।।

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

।। ॐ तत्सत् ।।
।। श्रीगणेशायः नमः ।।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

प्रथमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः
श्रीसूतजीसे शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न

मङ्गलाचरण

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरत-
श्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये
मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो
यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं
सत्यं परं धीमहि ।।१

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो
निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं
तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते
किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः
शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ।।२

जिससे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं—क्योंकि वह सभी सद्रूप पदार्थोंमें अनुगत है और असत् पदार्थोंसे पृथक् है; जड नहीं, चेतन है; परतन्त्र नहीं, स्वयंप्रकाश है; जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं, प्रत्युत उन्हें अपने संकल्पसे ही जिसने उस वेदज्ञानका दान

******ebook converter DEMO Watermarks*******

किया है; जिसके सम्बन्धमें बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं; जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियोंमें जलका, जलमें स्थलका और स्थलमें जलका भ्रम होता है, वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूपा सृष्टि मिथ्या होनेपर भी अधिष्ठान-सत्तासे सत्यवत् प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयंप्रकाश ज्योतिसे सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्यसे पूर्णतः मुक्त रहनेवाले परम सत्यरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं ।।१।। महामुनि व्यासदेवके द्वारा निर्मित इस श्रीमद्भागवतमहापुराणमें मोक्षपर्यन्त फलकी कामनासे रहित परम धर्मका निरूपण हुआ है। इसमें शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषोंके जाननेयोग्य उस वास्तविक वस्तु परमात्माका निरूपण हुआ है, जो तीनों तापोंका जड़से नाश करनेवाली और परम कल्याण देनेवाली है। अब और किसी साधन या शास्त्रसे क्या प्रयोजन। जिस समय भी सुकृती पुरुष इसके श्रवणकी इच्छा करते हैं, ईश्वर उसी समय अविलम्ब उनके हृदयमें आकर बन्दी बन जाता है ।।२।।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।।३

रसके मर्मज्ञ भक्तजन! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका पका हुआ फल है। श्रीशुकदेवरूप तोतेके* मुखका सम्बन्ध हो जानेसे यह परमानन्दमयी सुधासे परिपूर्ण हो गया है। इस फलमें छिलका, गुठली आदि त्याज्य अंश तनिक भी नहीं है। यह मूर्तिमान् रस है। जबतक शरीरमें चेतना रहे, तबतक इस दिव्य भगवद्रसका निरन्तर बार-बार पान करते रहो। यह पृथ्वीपर ही सुलभ है ।।३।।

कथाप्रारम्भ

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ।
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ।।४

त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः ।
सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ।।५

ऋषय ऊचुः

त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ।
आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ।।६

******ebook converter DEMO Watermarks*******

यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान् बादरायणः ।
अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ।।७

वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ।
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ।।८

तत्र तत्राञ्जसाऽऽयुष्मन् भवता यद्विनिश्चितम् ।
पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ।।९

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः ।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ।।१०

एक बार भगवान् विष्णु एवं देवताओंके परम पुण्यमय क्षेत्र नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंने भगवत्प्राप्तिकी इच्छासे सहस्र वर्षोंमें पूरे होनेवाले एक महान् यज्ञका अनुष्ठान किया ।।४।। एक दिन उन लोगोंने प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि नित्यकृत्योंसे निवृत्त होकर सूतजीका पूजन किया और उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाकर बड़े आदरसे यह प्रश्न किया ।।५।।

ऋषियोंने कहा—सूतजी! आप निष्पाप हैं। आपने समस्त इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया है तथा उनकी भलीभाँति व्याख्या भी की है ।।६।। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् बादरायणने एवं भगवान्‌के सगुण-निर्गुण रूपको जाननेवाले दूसरे मुनियोंने जो कुछ जाना है—उन्हें जिन विषयोंका ज्ञान है, वह सब आप वास्तविक रूपमें जानते हैं। आपका हृदय बड़ा ही सरल और शुद्ध है, इसीसे आप उनकी कृपा और अनुग्रहके पात्र हुए हैं। गुरुजन अपने प्रेमी शिष्यको गुप्त-से-गुप्त बात भी बता दिया करते हैं ।।७-८।। आयुष्मन्! आप कृपा करके यह बतलाइये कि उन सब शास्त्रों, पुराणों और गुरुजनोंके उपदेशोंमें कलियुगी जीवोंके परम कल्याणका सहज साधन आपने क्या निश्चय किया है ।।९।। आप संत-समाजके भूषण हैं। इस कलियुगमें प्रायः लोगोंकी आयु कम हो गयी है। साधन करनेमें लोगोंकी रुचि और प्रवृत्ति भी नहीं है। लोग आलसी हो गये हैं। उनका भाग्य तो मन्द है ही, समझ भी थोड़ी है। इसके साथ ही वे नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे घिरे हुए भी रहते हैं ।।१०।। शास्त्र भी बहुत-से हैं। परन्तु उनमें एक निश्चित साधनका नहीं, अनेक प्रकारके कर्मोंका वर्णन है। साथ ही वे इतने बड़े हैं कि उनका एक अंश सुनना भी कठिन है। आप परोपकारी हैं। अपनी बुद्धिसे उनका सार निकालकर प्राणियोंके परम कल्याणके लिये हम श्रद्धालुओंको सुनाइये, जिससे हमारे अन्तःकरणकी शुद्धि प्राप्त हो ।।११।।

भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ।
अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनात्मा सम्प्रसीदति ।।११

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सूत जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतां पतिः ।
देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ।।१२

तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम् ।
यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ।।१३

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ।।१४

यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ।
सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ।।१५

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ।
शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ।।१६

तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ।।१७

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ।।१८

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ।
यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ।।१९

प्यारे सूतजी! आपका कल्याण हो। आप तो जानते ही हैं कि यदुवंशियोंके रक्षक भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेवकी धर्मपत्नी देवकीके गर्भसे क्या करनेकी इच्छासे अवतीर्ण हुए थे ।।१२।। हम उसे सुनना चाहते हैं। आप कृपा करके हमारे लिये उसका वर्णन कीजिये; क्योंकि भगवान्‌का अवतार जीवोंके परम कल्याण और उनकी भगवत्प्रेममयी समृद्धिके लिये ही होता है ।।१३।। यह जीव जन्म-मृत्युके घोर चक्रमें पड़ा हुआ है—इस स्थितिमें भी यदि वह कभी भगवान्‌के मंगलमय नामका उच्चारण कर ले तो उसी क्षण उससे मुक्त हो जाय; क्योंकि स्वयं भय भी भगवान्‌से डरता रहता है ।।१४।। सूतजी! परम विरक्त और परम शान्त मुनिजन भगवान्‌के श्रीचरणोंकी शरणमें ही रहते हैं, अतएव उनके स्पर्शमात्रसे संसारके जीव तुरन्त पवित्र हो जाते हैं। इधर गंगाजीके जलका बहुत दिनोंतक सेवन किया जाय, तब कहीं पवित्रता प्राप्त होती है ।।१५।। ऐसे पुण्यात्मा भक्त जिनकी लीलाओंका गान करते रहते हैं, उन भगवान्‌का कलिमलहारी पवित्र यश भला आत्मशुद्धिकी

******ebook converter DEMO Watermarks*******

इच्छावाला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो श्रवण न करे ।।१६।। वे लीलासे ही अवतार धारण करते हैं। नारदादि महात्माओंने उनके उदार कर्मोंका गान किया है। हम श्रद्धालुओंके प्रति आप उनका वर्णन कीजिये ।।१७।।

बुद्धिमान् सूतजी! सर्वसमर्थ प्रभु अपनी योगमायासे स्वच्छन्द लीला करते हैं। आप उन श्रीहरिकी मंगलमयी अवतार-कथाओंका अब वर्णन कीजिये ।।१८।। पुण्यकीर्ति भगवान्‌की लीला सुननेसे हमें कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती; क्योंकि रसज्ञ श्रोताओंको पद-पदपर भगवान्‌की लीलाओंमें नये-नये रसका अनुभव होता है ।।१९।। भगवान् श्रीकृष्ण अपनेको छिपाये हुए थे, लोगोंके सामने ऐसी चेष्टा करते थे मानो कोई मनुष्य हों। परन्तु उन्होंने बलरामजीके साथ ऐसी लीलाएँ भी की हैं, ऐसा पराक्रम भी प्रकट किया है, जो मनुष्य नहीं कर सकते ।।२०।। कलियुगको आया जानकर इस वैष्णवक्षेत्रमें हम दीर्घकालीन सत्रका संकल्प करके बैठे हैं। श्रीहरिकी कथा सुननेके लिये हमें अवकाश प्राप्त है ।।२१।। यह कलियुग अन्तःकरणकी पवित्रता और शक्तिका नाश करनेवाला है। इससे पार पाना कठिन है। जैसे समुद्रसे पार जानेवालोंको कर्णधार मिल जाय, उसी प्रकार इससे पार पानेकी इच्छा रखनेवाले हम लोगोंसे ब्रह्माने आपको मिलाया है ।।२२।। धर्मरक्षक, ब्राह्मणभक्त, योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके अपने धाममें पधार जानेपर धर्मने अब किसकी शरण ली है—यह बताइये ।।२३।।

कृतवान् किल वीर्याणि सह रामेण केशवः ।
अतिमर्त्यानि भगवान् गूढः कपटमानुषः ।।२०

कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम् ।
आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ।।२१

त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ।
कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ।।२२

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ।
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ।।२३

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

* यह प्रसिद्ध है कि तोतेका काटा हुआ फल अधिक मीठा होता है।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ द्वितीयोऽध्यायः
भगवत्कथा और भगवद्भक्तिका माहात्म्य

व्यास उवाच

इति सम्प्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ।
प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१

सूत उवाच

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ।।२

श्रीव्यासजी कहते हैं—शौनकादि ब्रह्मवादी ऋषियोंके ये प्रश्न सुनकर रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने ऋषियोंके इस मंगलमय प्रश्नका अभिनन्दन करके कहना आरम्भ किया ।।१।।

सूतजीने कहा—जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुतरां लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे —'बेटा! बेटा!' उस समय तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे वृक्षोंने उत्तर दिया। ऐसे सबके हृदयमें विराजमान श्रीशुकदेव मुनिको मैं नमस्कार करता हूँ ।।२।।

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेक-
मध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं
तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ।।३

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।४

मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ।
यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ।।५

******ebook converter DEMO Watermarks*******

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ।।६

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम् ।।७

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।।८

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ।।९

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ।।१०

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते ।।११

यह श्रीमद्भागवत अत्यन्त गोपनीय—रहस्यात्मक पुराण है। यह भगवत्स्वरूपका अनुभव करानेवाला और समस्त वेदोंका सार है। संसारमें फँसे हुए जो लोग इस घोर अज्ञानान्धकारसे पार जाना चाहते हैं, उनके लिये आध्यात्मिक तत्त्वोंको प्रकाशित करानेवाला यह एक अद्वितीय दीपक है। वास्तवमें उन्हींपर करुणा करके बड़े-बड़े मुनियोंके आचार्य श्रीशुकदेवजीने इसका वर्णन किया है। मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ ।।३।। मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान्‌के अवतार नर-नारायण ऋषियोंको, सरस्वती देवीको और श्रीव्यासदेवजीको नमस्कार करके तब संसार और अन्तःकरणके समस्त विकारोंपर विजय प्राप्त करानेवाले इस श्रीमद्भागवतमहापुराणका पाठ करना चाहिये ।।४।।

ऋषियो! आपने सम्पूर्ण विश्वके कल्याणके लिये यह बहुत सुन्दर प्रश्न किया है; क्योंकि यह प्रश्न श्रीकृष्णके सम्बन्धमें है और इससे भलीभाँति आत्मशुद्धि हो जाती है ।।५।। मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति हो—भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो और जो नित्य-निरन्तर बनी रहे; ऐसी भक्तिसे हृदय आनन्दस्वरूप परमात्माकी उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है ।।६।। भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति होते ही, अनन्य प्रेमसे उनमें चित्त जोड़ते ही निष्काम ज्ञान और वैराग्यका आविर्भाव हो जाता है ।।७।। धर्मका ठीक-ठीक अनुष्ठान करनेपर भी यदि मनुष्यके हृदयमें भगवान्‌की लीला-कथाओंके प्रति अनुरागका उदय न हो तो वह निरा श्रम-ही-श्रम है ।।८।। धर्मका फल है मोक्ष। उसकी सार्थकता अर्थप्राप्तिमें नहीं है। अर्थ केवल धर्मके लिये है। भोगविलास

******ebook converter DEMO Watermarks*******

उसका फल नहीं माना गया है ।।९।। भोगविलासका फल इन्द्रियोंको तृप्त करना नहीं है, उसका प्रयोजन है केवल जीवननिर्वाह। जीवनका फल भी तत्त्वजिज्ञासा है। बहुत कर्म करके स्वर्गादि प्राप्त करना उसका फल नहीं है ।।१०।। तत्त्ववेत्तालोग ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे रहित अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञानको ही तत्त्व कहते हैं। उसीको कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और कोई भगवान्‌के नामसे पुकारते हैं ।।११।।

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया[१] ।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ।।१२

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ।
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ।।१३

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ।।१४

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम् ।
छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ।।१५

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ।
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ।।१६

शृंण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ।।१७

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया[२] ।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ।।१८

तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये ।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ।।१९

एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ।
भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ।।२०

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ।।२१

अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ।।२२

श्रद्धालु मुनिजन भागवतश्रवणसे प्राप्त ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तिसे अपने हृदयमें उस परमतत्त्वरूप परमात्माका अनुभव करते हैं ।।१२।। शौनकादि ऋषियो! यही कारण है कि अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुसार मनुष्य जो धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसकी पूर्ण सिद्धि इसीमें है कि भगवान् प्रसन्न हों ।।१३।। इसलिये एकाग्र मनसे भक्तवत्सल भगवान्का ही नित्य-निरन्तर श्रवण, कीर्तन, ध्यान और आराधन करना चाहिये ।।१४।। कर्मोंकी गाँठ बड़ी कड़ी है। विचारवान् पुरुष भगवान्के चिन्तनकी तलवारसे उस गाँठको काट डालते हैं। तब भला, ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो भगवान्की लीलाकथामें प्रेम न करे ।।१५।।

शौनकादि ऋषियो! पवित्र तीर्थोंका सेवन करनेसे महत्सेवा, तदनन्तर श्रवणकी इच्छा, फिर श्रद्धा, तत्पश्चात् भगवत्-कथामें रुचि होती है ।।१६।। भगवान् श्रीकृष्णके यशका श्रवण और कीर्तन दोंनो पवित्र करनेवाले हैं। वे अपनी कथा सुननेवालोंके हृदयमें आकर स्थित हो जाते हैं और उनकी अशुभ वासनाओंको नष्ट कर देते हैं; क्योंकि वे संतोंके नित्य सुहृद हैं ।।१७।। जब श्रीमद्भागवत अथवा भगवद्भक्तोंके निरन्तर सेवनसे अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके प्रति स्थायी प्रेमकी प्राप्ति होती है ।।१८।। तब रजोगुण और तमोगुणके भाव—काम और लोभादि शान्त हो जाते हैं और चित्त इनसे रहित होकर सत्त्वगुणमें स्थित एवं निर्मल हो जाता है ।।१९।। इस प्रकार भगवान्की प्रेममयी भक्तिसे जब संसारकी समस्त आसक्तियाँ मिट जाती हैं, हृदय आनन्दसे भर जाता है, तब भगवान्के तत्त्वका अनुभव अपने-आप हो जाता है ।।२०।। हृदयमें आत्मस्वरूप भगवान्का साक्षात्कार होते ही हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है, सारे सन्देह मिट जाते हैं और कर्मबन्धन क्षीण हो जाता है ।।२१।। इसीसे बुद्धिमान् लोग नित्य-निरन्तर बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेम-भक्ति करते हैं, जिससे आत्मप्रसादकी प्राप्ति होती है ।।२२।।

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-
र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते ।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ।।२३

पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ।
तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ।।२४

भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह ।।२५

मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः[१] शान्ता[२] भजन्ति ह्यनसूयवः ।।२६

रजस्तमःप्रकृतयः समशीला भजन्ति वै ।
पितृभूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ।।२७

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ।
वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ।।२८

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ।
वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ।।२९

स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ।
सदसद्रूपया चासौ गुणमय्यागुणो विभुः ।।३०

प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। इनको स्वीकार करके इस संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके लिये एक अद्वितीय परमात्मा ही विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—ये तीन नाम ग्रहण करते हैं। फिर भी मनुष्योंका परम कल्याण तो सत्त्वगुण स्वीकार करानेवाले श्रीहरिसे ही होता है ।।२३।। जैसे पृथ्वीके विकार लकड़ीकी अपेक्षा धुआँ श्रेष्ठ है और उससे भी श्रेष्ठ है अग्नि —क्योंकि वेदोक्त यज्ञ-यागादिके द्वारा अग्नि सद्गति देनेवाला है—वैसे ही तमोगुणसे रजोगुण श्रेष्ठ है और रजोगुणसे भी सत्त्वगुण श्रेष्ठ है; क्योंकि वह भगवान्का दर्शन करानेवाला है ।।२४।। प्राचीन युगमें महात्मालोग अपने कल्याणके लिये विशुद्ध सत्त्वमय भगवान् विष्णुकी ही आराधना किया करते थे। अब भी जो लोग उनका अनुसरण करते हैं, वे उन्हींके समान कल्याणभाजन होते हैं ।।२५।। जो लोग इस संसारसागरसे पार जाना चाहते हैं, वे यद्यपि किसीकी निन्दा तो नहीं करते, न किसीमें दोष ही देखते हैं, फिर भी घोररूपवाले —तमोगुणी-रजोगुणी भैरवादि भूतपतियोंकी उपासना न करके सत्त्वगुणी विष्णुभगवान् और उनके अंश—कलास्वरूपोंका ही भजन करते हैं ।।२६।। परन्तु जिसका स्वभाव रजोगुणी अथवा तमोगुणी है, वे धन, ऐश्वर्य और संतानकी कामनासे भूत, पितर और प्रजापतियोंकी उपासना करते हैं; क्योंकि इन लोगोंका स्वभाव उन (भूतादि)-से मिलता-जुलता होता है ।।२७।। वेदोंका तात्पर्य श्रीकृष्णमें ही है। यज्ञोंके उद्देश्य श्रीकृष्ण ही हैं। योग श्रीकृष्णके लिये ही किये जाते हैं और समस्त कर्मोंकी परिसमाप्ति भी श्रीकृष्णमें ही है ।।२८।। ज्ञानसे ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णकी ही प्राप्ति होती है। तपस्या श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये ही की जाती है। श्रीकृष्णके लिये ही धर्मोंका अनुष्ठान होता है और सब गतियाँ श्रीकृष्णमें ही समा जाती

******ebook converter DEMO Watermarks*******

हैं ।।२९।। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत हैं, फिर भी अपनी गुणमयी मायासे, जो प्रपंचकी दृष्टिसे है और तत्त्वकी दृष्टिसे नहीं है—उन्होंने ही सर्गके आदिमें इस संसारकी रचना की थी ।।३०।।

तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ।
अन्तःप्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ।।३१

यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु ।
नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ।।३२

असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः ।
स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान् ।।३३

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः ।
लीलावतारानुरतो[१] देवतिर्यङ्नरादिषु ।।३४

ये सत्त्व, रज और तम—तीनों गुण उसी मायाके विलास हैं; इनके भीतर रहकर भगवान् इनसे युक्त-सरीखे मालूम पड़ते हैं। वास्तवमें तो वे परिपूर्ण विज्ञानानन्दघन हैं ।।३१।। अग्नि तो वस्तुतः एक ही है, परंतु जब वह अनेक प्रकारकी लकड़ियोंमें प्रकट होती है तब अनेक-सी मालूम पड़ती है। वैसे ही सबके आत्मरूप भगवान् तो एक ही हैं, परंतु प्राणियोंकी अनेकतासे अनेक-जैसे जान पड़ते हैं ।।३२।। भगवान् ही सूक्ष्म भूत—तन्मात्रा, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण आदि गुणोंके विकारभूत भावोंके द्वारा नाना प्रकारकी योनियोंका निर्माण करते हैं और उनमें भिन्न-भिन्न जीवोंके रूपमें प्रवेश करके उन-उन योनियोंके अनुरूप विषयोंका उपभोग करते-कराते हैं ।।३३।। वे ही सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करते हैं और देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि योनियोंमें लीलावतार ग्रहण करके सत्त्वगुणके द्वारा जीवोंका पालन-पोषण करते हैं ।।३४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने
द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

---

१. प्रा० पा०—युक्तयः। २. प्रा० पा०—भगवदाश्रयात्।
१. प्रा० पा०—कलां। २. प्रा० पा०—शान्तां।
१. प्रा० पा०—लीलावतारानुरतस्तिर्यङ्नरसुरादिषु।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ तृतीयोऽध्यायः
भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन

सूत उवाच

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ।।१

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ।।२

यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः ।
तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ।।३

श्रीसूतजी कहते हैं—सृष्टिके आदिमें भगवान्‌ने लोकोंके निर्माणकी इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत्तत्त्व आदिसे निष्पन्न पुरुषरूप ग्रहण किया। उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत—ये सोलह कलाएँ थीं ।।१।।

उन्होंने कारण-जलमें शयन करते हुए जब योगनिद्राका विस्तार किया, तब उनके नाभि-सरोवरमेंसे एक कमल प्रकट हुआ और उस कमलसे प्रजापतियोंके अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ।।२।।

भगवान्‌के उस विराट्‌रूपके अंग-प्रत्यंगमें ही समस्त लोकोंकी कल्पना की गयी है, वह भगवान्‌का विशुद्ध सत्त्वमय श्रेष्ठ रूप है ।।३।।

पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा
सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं
सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ।।४

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ।।५

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ।।६

******ebook converter DEMO Watermarks*******

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ।।७

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ।।८

तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ।
भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद् दुश्चरं तपः ।।९

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ।
प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ।।१०

षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ।।११

ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ।
स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायम्भुवान्तरम् ।।१२

योगीलोग दिव्यदृष्टिसे भगवान्‌के उस रूपका दर्शन करते हैं। भगवान्‌का वह रूप हजारों पैर, जाँघें, भुजाएँ और मुखोंके कारण अत्यन्त विलक्षण है; उसमें सहस्रों सिर, हजारों कान, हजारों आँखें और हजारों नासिकाएँ हैं। हजारों मुकुट, वस्त्र और कुण्डल आदि आभूषणोंसे वह उल्लसित रहता है ।।४।। भगवान्‌का यही पुरुषरूप जिसे नारायण कहते हैं, अनेक अवतारोंका अक्षय कोष है—इसीसे सारे अवतार प्रकट होते हैं। इस रूपके छोटे-से-छोटे अंशसे देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि योनियोंकी सृष्टि होती है ।।५।।

उन्हीं प्रभुने पहले कौमारसर्गमें सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार ब्राह्मणोंके रूपमें अवतार ग्रहण करके अत्यन्त कठिन अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन किया ।।६।। दूसरी बार इस संसारके कल्याणके लिये समस्त यज्ञोंके स्वामी उन भगवान्‌ने ही रसातलमें गयी हुई पृथ्वीको निकाल लानेके विचारसे सूकररूप ग्रहण किया ।।७।। ऋषियोंकी सृष्टिमें उन्होंने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत तन्त्रका (जिसे 'नारद-पांचरात्र' कहते हैं) उपदेश किया; उसमें कर्मोंके द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है ।।८।। धर्मपत्नी मूर्तिके गर्भसे उन्होंने नर-नारायणके रूपमें चौथा अवतार ग्रहण किया। इस अवतारमें उन्होंने ऋषि बनकर मन और इन्द्रियोंका सर्वथा संयम करके बड़ी कठिन तपस्या की ।।९।। पाँचवें अवतारमें वे सिद्धोंके स्वामी कपिलके रूपमें प्रकट हुए और तत्त्वोंका निर्णय करनेवाले सांख्य-शास्त्रका, जो समयके फेरसे लुप्त हो गया था, आसुरि नामक ब्राह्मणको उपदेश किया ।।१०।। अनसूयाके

******ebook converter DEMO Watermarks*******

वर माँगनेपर छठे अवतारमें वे अत्रिकी सन्तान—दत्तात्रेय हुए। इस अवतारमें उन्होंने अलर्क एवं प्रह्लाद आदिको ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया ।।११।। सातवीं बार रुचि प्रजापतिकी आकूति नामक पत्नीसे यज्ञके रूपमें उन्होंने अवतार ग्रहण किया और अपने पुत्र याम आदि देवताओंके साथ स्वायम्भुव मन्वन्तरकी रक्षा की ।।१२।।

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।।१३

ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ।
दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ।।१४

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे ।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ।।१५

सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ।।१६

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।
अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ।।१७

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ।
ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ।।१८

पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः ।
पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ।।१९

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ।।२०

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ।।२१

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ।।२२

******ebook converter DEMO Watermarks*******

राजा नाभिकी पत्नी मेरु देवीके गर्भसे ऋषभदेवके रूपमें भगवान्‌ने आठवाँ अवतार ग्रहण किया। इस रूपमें उन्होंने परमहंसोंका वह मार्ग, जो सभी आश्रमियोंके लिये वन्दनीय है, दिखाया ।।१३।। ऋषियोंकी प्रार्थनासे नवीं बार वे राजा पृथुके रूपमें अवतीर्ण हुए। शौनकादि ऋषियो! इस अवतारमें उन्होंने पृथ्वीसे समस्त ओषधियोंका दोहन किया था, इससे यह अवतार सबके लिये बड़ा ही कल्याणकारी हुआ ।।१४।। चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें जब सारी त्रिलोकी समुद्रमें डूब रही थी, तब उन्होंने मत्स्यके रूपमें दसवाँ अवतार ग्रहण किया और पृथ्वीरूपी नौकापर बैठाकर अगले मन्वन्तरके अधिपति वैवस्वत मनुकी रक्षा की ।।१५।। जिस समय देवता और दैत्य समुद्र-मन्थन कर रहे थे, उस समय ग्यारहवाँ अवतार धारण करके कच्छपरूपसे भगवान्‌ने मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया ।।१६।। बारहवीं बार धन्वन्तरिके रूपमें अमृत लेकर समुद्रसे प्रकट हुए और तेरहवीं बार मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंको मोहित करते हुए देवताओंको अमृत पिलाया ।।१७।। चौदहवें अवतारमें उन्होंने नरसिंहरूप धारण किया और अत्यन्त बलवान् दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी छाती अपने नखोंसे अनायास इस प्रकार फाड़ डाली, जैसे चटाई बनानेवाला सींकको चीर डालता है ।।१८।। पंद्रहवीं बार वामनका रूप धारण करके भगवान् दैत्यराज बलिके यज्ञमें गये। वे चाहते तो थे त्रिलोकीका राज्य, परन्तु माँगी उन्होंने केवल तीन पग पृथ्वी ।।१९।। सोलहवें परशुराम अवतारमें जब उन्होंने देखा कि राजालोग ब्राह्मणोंके द्रोही हो गये हैं, तब क्रोधित होकर उन्होंने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया ।।२०।। इसके बाद सत्रहवें अवतारमें सत्यवतीके गर्भसे पराशरजीके द्वारा वे व्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए, उस समय लोगोंकी समझ और धारणाशक्ति कम देखकर आपने वेदरूप वृक्षकी कई शाखाएँ बना दीं ।।२१।। अठारहवीं बार देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेकी इच्छासे उन्होंने राजाके रूपमें रामावतार ग्रहण किया और सेतुबन्धन, रावणवध आदि वीरतापूर्ण बहुत-सी लीलाएँ कीं ।।२२।।

एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ।।२३
ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्नाजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ।।२४
अथासौ युगसंध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ।
जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ।।२५
अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ।।२६
ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ।।२७
एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ।।२८
जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ।
सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ।।२९
एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ।
मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ।।३०
यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ।
एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ।।३१

उन्नीसवें और बीसवें अवतारोंमें उन्होंने यदुवंशमें बलराम और श्रीकृष्णके नामसे प्रकट होकर पृथ्वीका भार उतारा ।।२३।। उसके बाद कलियुग आ जानेपर मगधदेश (बिहार)-में देवताओंके द्वेषी दैत्योंको मोहित करनेके लिये अजनके पुत्ररूपमें आपका बुद्धावतार होगा ।।२४।। इसके भी बहुत पीछे जब कलियुगका अन्त समीप होगा और राजालोग प्रायः लुटेरे हो जायँगे, तब जगत्के रक्षक भगवान् विष्णुयश नामक ब्राह्मणके घर कल्किरूपमें अवतीर्ण होंगे* ।।२५।।

शौनकादि ऋषियो! जैसे अगाध सरोवरसे हजारों छोटे-छोटे नाले निकलते हैं, वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् श्रीहरिके असंख्य अवतार हुआ करते हैं ।।२६।। ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी महान् शक्तिशाली हैं, वे सब-के-सब भगवान्के ही अंश हैं ।।२७।। ये सब अवतार तो भगवान्के अंशावतार अथवा कलावतार हैं, परंतु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् (अवतारी) ही हैं। जब लोग दैत्योंके अत्याचारसे व्याकुल हो उठते हैं, तब युग-युगमें अनेक रूप धारण करके भगवान् उनकी रक्षा करते हैं ।।२८।। भगवान्के दिव्य जन्मोंकी यह कथा अत्यन्त गोपनीय—रहस्यमयी है; जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे नियमपूर्वक सायंकाल और प्रातःकाल प्रेमसे इसका पाठ करता है, वह सब दुःखोंसे छूट जाता है ।।२९।।

प्राकृत स्वरूपरहित चिन्मय भगवान्का जो यह स्थूल जगदाकार रूप है, यह उनकी मायाके महत्तत्त्वादि गुणोंसे भगवान्में ही कल्पित है ।।३०।। जैसे बादल वायुके आश्रय रहते हैं और धूसरपना धूलमें होता है, परन्तु अल्पबुद्धि मनुष्य बादलोंका आकाशमें और धूसरपनेका वायुमें आरोप करते हैं—वैसे ही अविवेकी पुरुष सबके साक्षी आत्मामें स्थूल दृश्यरूप जगत्का आरोप करते हैं ।।३१।। इस स्थूलरूपसे परे भगवान्का एक सूक्ष्म अव्यक्त रूप है—जो न तो स्थूलकी तरह आकारादि गुणोंवाला है और न देखने, सुननेमें ही आ सकता है; वही सूक्ष्मशरीर है। आत्माका आरोप या प्रवेश होनेसे यही जीव कहलाता है और इसीका बार-बार जन्म होता है ।।३२।।

अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ।
अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ।।३२

******ebook converter DEMO Watermarks*******

यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ।
अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ।।३३

यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ।
सम्पन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ।।३४

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ।
वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ।।३५

स वा इदं विश्वममोघलीलः
सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।
भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः
षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ।।३६

न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातु-
रवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः ।
नामानि रूपाणि मनोवचोभिः
सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ।।३७

स वेद धातुः पदवीं परस्य
दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ।
योऽमायया संततयानुवृत्त्या
भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ।।३८

उपर्युक्त सूक्ष्म और स्थूलशरीर अविद्यासे ही आत्मामें आरोपित हैं। जिस अवस्थामें आत्मस्वरूपके ज्ञानसे यह आरोप दूर हो जाता है, उसी समय ब्रह्मका साक्षात्कार होता है ।।३३।। तत्त्वज्ञानी लोग जानते हैं कि जिस समय यह बुद्धिरूपा परमेश्वरकी माया निवृत्त हो जाती है, उस समय जीव परमानन्दमय हो जाता है और अपनी स्वरूप-महिमामें प्रतिष्ठित होता है ।।३४।। वास्तवमें जिनके जन्म नहीं हैं और कर्म भी नहीं हैं, उन हृदयेश्वर भगवान्‌के अप्राकृत जन्म और कर्मोंका तत्त्वज्ञानी लोग इसी प्रकार वर्णन करते हैं; क्योंकि उनके जन्म और कर्म वेदोंके अत्यन्त गोपनीय रहस्य हैं ।।३५।।

भगवान्‌की लीला अमोघ है। वे लीलासे ही इस संसारका सृजन, पालन और संहार करते हैं, किंतु इसमें आसक्त नहीं होते। प्राणियोंके अन्तःकरणमें छिपे रहकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको ग्रहण भी करते हैं, परंतु उनसे अलग रहते हैं, वे परम स्वतन्त्र हैं—ये विषय कभी उन्हें लिप्त नहीं कर सकते ।।३६।। जैसे अनजान मनुष्य

******ebook converter DEMO Watermarks*******

जादूगर अथवा नटके संकल्प और वचनोंसे की हुई करामातको नहीं समझ पाता, वैसे ही अपने संकल्प और वेदवाणीके द्वारा भगवान्‌के प्रकट किये हुए इन नाना नाम और रूपोंको तथा उनकी लीलाओंको कुबुद्धि जीव बहुत-सी तर्क-युक्तियोंके द्वारा नहीं पहचान सकता ।।३७।। चक्रपाणि भगवान्‌की शक्ति और पराक्रम अनन्त है—उनकी कोई थाह नहीं पा सकता। वे सारे जगत्‌के निर्माता होनेपर भी उससे सर्वथा परे हैं। उनके स्वरूपको अथवा उनकी लीलाके रहस्यको वही जान सकता है, जो नित्य-निरन्तर निष्कपटभावसे उनके चरणकमलोंकी दिव्य गन्धका सेवन करता है—सेवाभावसे उनके चरणोंका चिन्तन करता रहता है ।।३८।।

अथेह धन्या भगवन्त इत्थं
यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ।
कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं
न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ।।३९

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ।।४०

निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ।।४१

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ।
स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ।।४२

प्रायोपविष्टं गंगायां परीतं परमर्षिभिः ।
कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ।।४३

कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ।
तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः ।।४४

अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ।
सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति ।।४५

शौनकादि ऋषियो! आपलोग बड़े ही सौभाग्यशाली तथा धन्य हैं जो इस जीवनमें और विघ्न-बाधाओंसे भरे इस संसारमें समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे वह सर्वात्मक आत्मभाव, वह अनिर्वचनीय अनन्य प्रेम करते हैं, जिससे फिर इस जन्म-मरणरूप संसारके

******ebook converter DEMO Watermarks*******

भयंकर चक्रमें नहीं पड़ना होता ।।३९।।

भगवान् वेदव्यासने यह वेदोंके समान भगवच्चरित्रसे परिपूर्ण भागवत नामका पुराण बनाया है ।।४०।। उन्होंने इस श्लाघनीय, कल्याणकारी और महान् पुराणको लोगोंके परम कल्याणके लिये अपने आत्मज्ञानिशिरोमणि पुत्रको ग्रहण कराया ।।४१।। इसमें सारे वेद और इतिहासोंका सार-सार संग्रह किया गया है। शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌को यह सुनाया ।।४२।। उस समय वे परमर्षियोंसे घिरे हुए आमरण अनशनका व्रत लेकर गंगातटपर बैठे हुए थे। भगवान् श्रीकृष्ण जब धर्म, ज्ञान आदिके साथ अपने परमधामको पधार गये, तब इस कलियुगमें जो लोग अज्ञानरूपी अन्धकारसे अंधे हो रहे हैं, उनके लिये यह पुराणरूपी सूर्य इस समय प्रकट हुआ है। शौनकादि ऋषियो! जब महातेजस्वी श्रीशुकदेवजी महाराज वहाँ इस पुराणकी कथा कह रहे थे, तब मैं भी वहाँ बैठा था। वहीं मैंने उनकी कृपापूर्ण अनुमतिसे इसका अध्ययन किया। मेरा जैसा अध्ययन है और मेरी बुद्धिने जितना जिस प्रकार इसको ग्रहण किया है, उसीके अनुसार इसे मैं आपलोगोंको सुनाऊँगा ।।४३-४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

---

* यहाँ बाईस अवतारोंकी गणना की गयी है, परन्तु भगवान्‌के चौबीस अवतार प्रसिद्ध हैं। कुछ विद्वान् चौबीसकी संख्या यों पूर्ण करते हैं—राम-कृष्णके अतिरिक्त बीस अवतार तो उपर्युक्त हैं ही, शेष चार अवतार श्रीकृष्णके ही अंश हैं। स्वयं श्रीकृष्ण तो पूर्ण परमेश्वर हैं; वे अवतार नहीं, अवतारी हैं। अतः श्रीकृष्णको अवतारोंकी गणनामें नहीं गिनते। उनके चार अंश ये हैं—एक तो केशका अवतार, दूसरा सुतपा तथा पृश्निपर कृपा करनेवाला अवतार, तीसरा संकर्षण-बलराम और चौथा परब्रह्म। इस प्रकार इन चार अवतारोंसे विशिष्ट पाँचवें साक्षात् भगवान् वासुदेव हैं। दूसरे विद्वान् ऐसा मानते हैं कि बाईस अवतार तो उपर्युक्त हैं ही; इनके अतिरिक्त दो और हैं—हंस और हयग्रीव।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ चतुर्थोऽध्यायः
महर्षि व्यासका असन्तोष

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ।
वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ।।१

व्यासजी कहते हैं—उस दीर्घकालीन सत्रमें सम्मिलित हुए मुनियोंमें विद्यावयोवृद्ध कुलपति ऋग्वेदी शौनकजीने सूतजीकी पूर्वोक्त बात सुनकर उनकी प्रशंसा की और कहा ।।१।।

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर ।
कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवाञ्छुकः ।।२
कस्मिन् युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ।
कुतः सञ्चोदितः कृष्णः कृतवान् संहितां मुनिः ।।३
तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः ।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ।।४
दृष्ट्वानुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं[१]
देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ।
तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति
स्त्रीपुम्भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ।।५
कथमालक्षितः पौरैः सम्प्राप्तः कुरुजाङ्गलान् ।
उन्मत्तमूकजडवद्विचरन् गजसाह्वये ।।६
कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ।
संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ।।७
स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ।।८
अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ।
तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ।।९

******ebook converter DEMO Watermarks*******

स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः ।
प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ।।१०

शौनकजी बोले—सूतजी! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं तथा बड़े भाग्यशाली हैं, जो कथा भगवान् श्रीशुकदेवजीने कही थी, वही भगवान्‌की पुण्यमयी कथा कृपा करके आप हमें सुनाइये ।।२।। वह कथा किस युगमें, किस स्थानपर और किस कारणसे हुई थी? मुनिवर श्रीकृष्णद्वैपायनने किसकी प्रेरणासे इस परमहंसोंकी संहिताका निर्माण किया था? ।।३।। उनके पुत्र शुकदेवजी बड़े योगी, समदर्शी, भेदभावरहित, संसारनिद्रासे जगे एवं निरन्तर एकमात्र परमात्मामें ही स्थिर रहते हैं। वे छिपे रहनेके कारण मूढ़-से प्रतीत होते हैं ।।४।। व्यासजी जब संन्यासके लिये वनकी ओर जाते हुए अपने पुत्रका पीछा कर रहे थे, उस समय जलमें स्नान करनेवाली स्त्रियोंने नंगे शुकदेवको देखकर तो वस्त्र धारण नहीं किया, परंतु वस्त्र पहने हुए व्यासजीको देखकर लज्जासे कपड़े पहन लिये थे। इस आश्चर्यको देखकर जब व्यासजीने उन स्त्रियोंसे इसका कारण पूछा, तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'आपकी दृष्टिमें तो अभी स्त्री-पुरुषका भेद बना हुआ है, परंतु आपके पुत्रकी शुद्ध दृष्टिमें यह भेद नहीं है' ।।५।। कुरुजांगल देशमें पहुँचकर हस्तिनापुरमें वे पागल, गूँगे तथा जडके समान विचरते होंगे। नगरवासियोंने उन्हें कैसे पहचाना? ।।६।। पाण्डवनन्दन राजर्षि परीक्षित्‌का इन मौनी शुकदेवजीके साथ संवाद कैसे हुआ, जिसमें यह भागवतसंहिता कही गयी? ।।७।। महाभाग श्रीशुकदेवजी तो गृहस्थोंके घरोंको तीर्थस्वरूप बना देनेके लिये उतनी ही देर उनके दरवाजेपर रहते हैं, जितनी देरमें एक गाय दुही जाती है ।।८।। सूतजी! हमने सुना है कि अभिमन्युनन्दन परीक्षित् भगवान्‌के बड़े प्रेमी भक्त थे। उनके अत्यन्त आश्चर्यमय जन्म और कर्मोंका भी वर्णन कीजिये ।।९।। वे तो पाण्डव-वंशके गौरव बढ़ानेवाले सम्राट् थे। वे भला, किस कारणसे साम्राज्यलक्ष्मीका परित्याग करके गंगातटपर मृत्युपर्यन्त अनशनका व्रत लेकर बैठे थे? ।।१०।। शत्रुगण अपने भलेके लिये बहुत-सा धन लाकर उनके चरण रखनेकी चौकीको नमस्कार करते थे। वे एक वीर युवक थे। उन्होंने उस दुस्त्यज लक्ष्मीको, अपने प्राणोंके साथ भला, क्यों त्याग देनेकी इच्छा की ।।११।। जिन लोगोंका जीवन भगवान्‌के आश्रित है, वे तो संसारके परम कल्याण, अभ्युदय और समृद्धिके लिये ही जीवन धारण करते हैं। उसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। उनका शरीर तो दूसरोंके हितके लिये था, उन्होंने विरक्त होकर उसका परित्याग क्यों किया ।।१२।। वेदवाणीको छोड़कर अन्य समस्त शास्त्रोंके आप पारदर्शी विद्वान् हैं। सूतजी! इसलिये इस समय जो कुछ हमने आपसे पूछा है, वह सब कृपा करके हमें कहिये ।।१३।।

नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः
शिवाय हानीय धनानि शत्रवः ।
कथं स वीरः श्रियमंग दुस्त्यजां
युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ।।११

******ebook converter DEMO Watermarks*******

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये
य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ।
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं
मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ।।१२
तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किञ्चन ।
मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ।।१३

सूत उवाच

द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ।
जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ।।१४
स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचिः ।
विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले ।।१५
परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा ।
युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ।।१६
भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ।
अश्रद्दधानान्निःसत्त्वान्दुर्मेधान् ह्रसितायुषः ।।१७
दुर्भगांश्च जनान् वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ।
सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ।।१८
चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ।
व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ।।१९
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः ।
इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ।।२०

सूतजीने कहा—इस वर्तमान चतुर्युगीके तीसरे युग द्वापरमें महर्षि पराशरके द्वारा वसुकन्या सत्यवतीके गर्भसे भगवान्‌के कलावतार योगिराज व्यासजीका जन्म हुआ ।।१४।। एक दिन वे सूर्योदयके समय सरस्वतीके पवित्र जलमें स्नानादि करके एकान्त पवित्र स्थानपर बैठे हुए थे ।।१५।। महर्षि भूत और भविष्यको जानते थे। उनकी दृष्टि अचूक थी। उन्होंने देखा कि जिसको लोग जान नहीं पाते, ऐसे समयके फेरसे प्रत्येक युगमें धर्मसंकरता और उसके प्रभावसे भौतिक वस्तुओंकी भी शक्तिका ह्रास होता रहता है। संसारके लोग श्रद्धाहीन और शक्तिरहित हो जाते हैं। उनकी बुद्धि कर्तव्यका ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाती और आयु भी कम हो जाती है। लोगोंकी इस भाग्यहीनताको देखकर उन मुनीश्वरने अपनी दिव्यदृष्टिसे समस्त वर्णों और आश्रमोंका हित कैसे हो, इसपर विचार किया ।।१६-१८।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

उन्होंने सोचा कि वेदोक्त चातुर्होत्र* कर्म लोगोंका हृदय शुद्ध करनेवाला है। इस दृष्टिसे यज्ञोंका विस्तार करनेके लिये उन्होंने एक ही वेदके चार विभाग कर दिये ।।१९।। व्यासजीके द्वारा ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—इन चार वेदोंका उद्धार (पृथक्करण) हुआ। इतिहास और पुराणोंको पाँचवाँ वेद कहा जाता है ।।२०।।

तत्रग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ।
वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ।।२१
अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः ।
इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ।।२२
त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा ।
शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ।।२३
त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा ।
एवं चकार भगवान् व्यासः कृपणवत्सलः ।।२४
स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ।।२५
एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ।
सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्धृदयं ततः ।।२६
नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ।
वितर्कयन् विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ।।२७
धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः ।
मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ।।२८
भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ।
दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ।।२९
तथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ।
असम्पन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ।।३०
किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ।
प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ।।३१

उनमेंसे ऋग्वेदके पैल, सामगानके विद्वान् जैमिनि एवं यजुर्वेदके एकमात्र स्नातक वैशम्पायन हुए ।।२१।। अथर्ववेदमें प्रवीण हुए दरुणनन्दन सुमन्तु मुनि। इतिहास और पुराणोंके स्नातक मेरे पिता रोमहर्षण थे ।।२२।। इन पूर्वोक्त ऋषियोंने अपनी-अपनी शाखाको और भी अनेक भागोंमें विभक्त कर दिया। इस प्रकार शिष्य, प्रशिष्य और उनके

******ebook converter DEMO Watermarks*******

शिष्योंद्वारा वेदोंकी बहुत-सी शाखाएँ बन गयीं ।।२३।। कम समझवाले पुरुषोंपर कृपा करके भगवान् वेदव्यासने इसलिये ऐसा विभाग कर दिया कि जिन लोगोंको स्मरणशक्ति नहीं है या कम है, वे भी वेदोंको धारण कर सकें ।।२४।।

स्त्री, शूद्र और पतित द्विजाति—तीनों ही वेद-श्रवणके अधिकारी नहीं हैं। इसलिये वे कल्याणकारी शास्त्रोक्त कर्मोंके आचरणमें भूल कर बैठते हैं। अब इसके द्वारा उनका भी कल्याण हो जाय, यह सोचकर महामुनि व्यासजीने बड़ी कृपा करके महाभारत इतिहासकी रचना की ।।२५।। शौनकादि ऋषियो! यद्यपि व्यासजी इस प्रकार अपनी पूरी शक्तिसे सदा-सर्वदा प्राणियोंके कल्याणमें ही लगे रहे, तथापि उनके हृदयको सन्तोष नहीं हुआ ।।२६।। उनका मन कुछ खिन्न-सा हो गया। सरस्वती नदीके पवित्र तटपर एकान्तमें बैठकर धर्मवेत्ता व्यासजी मन-ही-मन विचार करते हुए इस प्रकार कहने लगे— ।।२७।। 'मैंने निष्कपटभावसे ब्रह्मचर्यादि व्रतोंका पालन करते हुए वेद, गुरुजन और अग्नियोंका सम्मान किया है और उनकी आज्ञाका पालन किया है ।।२८।। महाभारतकी रचनाके बहाने मैंने वेदके अर्थको खोल दिया है—जिससे स्त्री, शूद्र आदि भी अपने-अपने धर्म-कर्मका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ।।२९।। यद्यपि मैं ब्रह्मतेजसे सम्पन्न एवं समर्थ हूँ, तथापि मेरा हृदय कुछ अपूर्णकाम-सा जान पड़ता है ।।३०।। अवश्य ही अबतक मैंने भगवान्‌को प्राप्त करानेवाले धर्मोंका प्रायः निरूपण नहीं किया है। वे ही धर्म परमहंसोंको प्रिय हैं और वे ही भगवान्‌को भी प्रिय हैं (हो-न-हो मेरी अपूर्णताका यही कारण है)' ।।३१।।

तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः ।
कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ।।३२

तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ।
पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ।।३३

श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास इस प्रकार अपनेको अपूर्ण-सा मानकर जब खिन्न हो रहे थे, उसी समय पूर्वोक्त आश्रमपर देवर्षि नारदजी आ पहुँचे ।।३२।। उन्हें आया देख व्यासजी तुरन्त खड़े हो गये। उन्होंने देवताओंके द्वारा सम्मानित देवर्षि नारदकी विधिपूर्वक पूजा की ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने
चतुर्थोऽध्यायः[१] ।।४।।

---

१. प्रा० पा०—मप्सु मग्नाः।

* होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—ये चार होता हैं। इनके द्वारा सम्पादित होनेवाले

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अग्निष्टोमादि यज्ञको चातुर्होत्र कहते हैं।

१.-यहाँ प्राचीन प्रतिमें ‘नारदागमनं’ इतना पाठ अधिक है।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ पञ्चमोऽध्यायः
भगवान्‌के यश-कीर्तनकी महिमा और देवर्षि नारदजीका पूर्वचरित्र

सूत उवाच

अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ।
देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ।।१

नारद उवाच

पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ।
परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ।।२
जिज्ञासितं सुसम्पन्नमपि ते महदद्‌भुतम् ।
कृतवान् भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ।।३
जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्‌ब्रह्म सनातनम् ।
अथापि[२] शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ।।४

व्यास उवाच

अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं
तथापि नात्मा परितुष्यते मे ।
तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं
पृच्छाम हे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ।।५
स वै भवान् वेद समस्तगुह्य-
मुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ।
परावरेशो मनसैव विश्वं
सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः ।।६

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर सुखपूर्वक बैठे हुए वीणापाणि परम यशस्वी देवर्षि नारदने मुसकराकर अपने पास ही बैठे ब्रह्मर्षि व्यासजीसे कहा ।।१।।

नारदजीने प्रश्न किया—महाभाग व्यासजी! आपके शरीर एवं मन—दोनों ही अपने कर्म एवं चिन्तनसे सन्तुष्ट हैं न? ।।२।। अवश्य ही आपकी जिज्ञासा तो भलीभाँति पूर्ण हो गयी है; क्योंकि आपने जो यह महाभारतकी रचना की है, वह बड़ी ही अद्‌भुत है। वह धर्म आदि

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सभी पुरुषार्थोंसे परिपूर्ण है ।।३।। सनातन ब्रह्मतत्त्वको भी आपने खूब विचारा है और जान भी लिया है। फिर भी प्रभु! आप अकृतार्थ पुरुषके समान अपने विषयमें शोक क्यों कर रहे हैं? ।।४।।

व्यासजीने कहा—आपने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब ठीक ही है। वैसा होनेपर भी मेरा हृदय सन्तुष्ट नहीं है। पता नहीं, इसका क्या कारण है। आपका ज्ञान अगाध है। आप साक्षात् ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। इसलिये मैं आपसे ही इसका कारण पूछता हूँ ।।५।। नारदजी! आप समस्त गोपनीय रहस्योंको जानते हैं; क्योंकि आपने उन पुराणपुरुषकी उपासना की है, जो प्रकृति-पुरुष दोनोंके स्वामी हैं और असंग रहते हुए ही अपने संकल्पमात्रसे गुणोंके द्वारा संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं ।।६।।

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकी-
मन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ।
परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः
स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ।।७

श्रीनारद उवाच

भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ।।८
यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ।।९
न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ।।१०
तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि य-
च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ।।११
नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ।।१२
अथो महाभाग भवानमोघदृक्

******ebook converter DEMO Watermarks*******

शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये
समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम् ।।१३

आप सूर्यकी भाँति तीनों लोकोंमें भ्रमण करते रहते हैं और योगबलसे प्राणवायुके समान सबके भीतर रहकर अन्तःकरणोंके साक्षी भी हैं। योगानुष्ठान और नियमोंके द्वारा परब्रह्म और शब्दब्रह्म दोनोंकी पूर्ण प्राप्ति कर लेनेपर भी मुझमें जो बड़ी कमी है, उसे आप कृपा करके बतलाइये ।।७।।

नारदजीने कहा—व्यासजी! आपने भगवान्‌के निर्मल यशका गान प्रायः नहीं किया। मेरी ऐसी मान्यता है कि जिससे भगवान् संतुष्ट नहीं होते, वह शास्त्र या ज्ञान अधूरा है ।।८।। आपने धर्म आदि पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया है, भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वैसा निरूपण नहीं किया ।।९।। जिस वाणीसे—चाहे वह रस-भाव-अलंकारादिसे युक्त ही क्यों न हो—जगत्‌को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके यशका कभी गान नहीं होता, वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अपवित्र मानी जाती है। मानसरोवरके कमनीय कमलवनमें विहरनेवाले हंसोंकी भाँति ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त कभी उसमें रमण नहीं करते ।।१०।। इसके विपरीत जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है और जो दूषित शब्दोंसे युक्त भी है, परन्तु जिसका प्रत्येक श्लोक भगवान्‌के सुयशसूचक नामोंसे युक्त है, वह वाणी लोगोंके सारे पापोंका नाश कर देती है; क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणीका श्रवण, गान और कीर्तन किया करते हैं ।।११।। वह निर्मल ज्ञान भी, जो मोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि भगवान्‌की भक्तिसे रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती। फिर जो साधन और सिद्धि दोनों ही दशाओंमें सदा ही अमंगलरूप है, वह काम्य कर्म और जो भगवान्‌को अर्पण नहीं किया गया है, ऐसा अहैतुक (निष्काम) कर्म भी कैसे सुशोभित हो सकता है ।।१२।। महाभाग व्यासजी! आपकी दृष्टि अमोघ है। आपकी कीर्ति पवित्र है। आप सत्यपरायण एवं दृढ़व्रत हैं। इसलिये अब आप सम्पूर्ण जीवोंको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये समाधिके द्वारा अचिन्त्य-शक्ति भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण कीजिये ।।१३।। जो मनुष्य भगवान्‌की लीलाके अतिरिक्त और कुछ कहनेकी इच्छा करता है, वह उस इच्छासे ही निर्मित अनेक नाम और रूपोंके चक्करमें पड़ जाता है। उसकी बुद्धि भेदभावसे भर जाती है। जैसे हवाके झकोरोंसे डगमगाती हुई डोंगीको कहीं भी ठहरनेका ठौर नहीं मिलता, वैसे ही उसकी चंचल बुद्धि कहीं भी स्थिर नहीं हो पाती ।।१४।। संसारी लोग स्वभावसे ही विषयोंमें फँसे हुए हैं। धर्मके नामपर आपने उन्हें निन्दित (पशुहिंसायुक्त) सकाम कर्म करनेकी भी आज्ञा दे दी है। यह बहुत ही उलटी बात हुई; क्योंकि मूर्खलोग आपके वचनोंसे पूर्वोक्त निन्दित कर्मको ही धर्म मानकर—'यही मुख्य धर्म है' ऐसा निश्चय करके उसका निषेध करनेवाले वचनोंको ठीक नहीं मानते ।।१५।। भगवान् अनन्त हैं। कोई विचारवान् ज्ञानी पुरुष ही संसारकी ओरसे निवृत्त होकर उनके स्वरूपभूत परमानन्दका अनुभव कर सकता है। अतः जो लोग पारमार्थिक बुद्धिसे रहित हैं

******ebook converter DEMO Watermarks*******

और गुणोंके द्वारा नचाये जा रहे हैं, उनके कल्याणके लिये ही आप भगवान्‌की लीलाओंका सर्वसाधारणके हितकी दृष्टिसे वर्णन कीजिये ।।१६।। जो मनुष्य अपने धर्मका परित्याग करके भगवान्‌के चरणकमलोंका भजन-सेवन करता है—भजन परिपक्व हो जानेपर तो बात ही क्या है—यदि इससे पूर्व ही उसका भजन छूट जाय तो क्या कहीं भी उसका कोई अमंगल हो सकता है? परन्तु जो भगवान्‌का भजन नहीं करते और केवल स्वधर्मका पालन करते हैं, उन्हें कौन-सा लाभ मिलता है ।।१७।। बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह उसी वस्तुकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करे, जो तिनकेसे लेकर ब्रह्मापर्यन्त समस्त ऊँची-नीची योनियोंमें कर्मोंके फलस्वरूप आने-जानेपर भी स्वयं प्राप्त नहीं होती। संसारके विषयसुख तो, जैसे बिना चेष्टाके दुःख मिलते हैं वैसे ही, कर्मके फलरूपमें अचिन्त्यगति समयके फेरसे सबको सर्वत्र स्वभावसे ही मिल जाते हैं ।।१८।। व्यासजी! जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दका सेवक है वह भजन न करनेवाले कर्मी मनुष्योंके समान दैवात् कभी बुरा भाव हो जानेपर भी जन्म-मृत्युमय संसारमें नहीं आता। वह भगवान्‌के चरणकमलोंके आलिंगनका स्मरण करके फिर उसे छोड़ना नहीं चाहता; उसे रसका चसका जो लग चुका है ।।१९।। जिनसे जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं, वे भगवान् ही इस विश्वके रूपमें भी हैं। ऐसा होनेपर भी वे इससे विलक्षण हैं। इस बातको आप स्वयं जानते हैं, तथापि मैंने आपको संकेतमात्र कर दिया है ।।२०।। व्यासजी! आपकी दृष्टि अमोघ है; आप इस बातको जानिये कि आप पुरुषोत्तम-भगवान्‌के कलावतार हैं। आपने अजन्मा होकर भी जगत्‌के कल्याणके लिये जन्म ग्रहण किया है। इसलिये आप विशेषरूपसे भगवान्‌की लीलाओंका कीर्तन कीजिये ।।२१।। विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्यकीर्ति श्रीकृष्णके गुणों और लीलाओंका वर्णन किया जाय ।।२२।।

ततोऽन्यथा किञ्चन यद्विवक्षतः
पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ।
न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मति-
र्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ।।१४
जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः
स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः ।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो
न मन्यते तस्य निवारणं जनः ।।१५
विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभो-
रनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ।
प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मन-
स्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभोः ।।१६
त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-

******ebook converter DEMO Watermarks*******

भर्जन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ।।१७
तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं
कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ।।१८
न वै जनो जातु कथञ्चनाव्रजे-
न्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुन-
र्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ।।१९
इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो
यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः ।
तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै[१]
प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ।।२०
त्वमात्मनाऽऽत्मानमवेह्यमोघदृक्
परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ।
अजं प्रजातं जगतः शिवाय त-
न्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ।।२१
इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः[२] ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्[३] ।।२२
अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने[४]
दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ।
निरूपितो बालक एव योगिनां
शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ।।२३
ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके
दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ।
चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः
शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ।।२४
उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः ।
एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतस-
स्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ।।२५
तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायता-
मनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः
प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः ।।२६

मुने! पिछले कल्पमें अपने पूर्वजीवनमें मैं वेदवादी ब्राह्मणोंकी एक दासीका लड़का था। वे योगी वर्षाऋतुमें एक स्थानपर चातुर्मास्य कर रहे थे। बचपनमें ही मैं उनकी सेवामें नियुक्त कर दिया गया था ।।२३।। मैं यद्यपि बालक था, फिर भी किसी प्रकारकी चंचलता नहीं करता था, जितेन्द्रिय था, खेल-कूदसे दूर रहता था और आज्ञानुसार उनकी सेवा करता था। मैं बोलता भी बहुत कम था। मेरे इस शील-स्वभावको देखकर समदर्शी मुनियोंने मुझ सेवकपर अत्यन्त अनुग्रह किया ।।२४।। उनकी अनुमति प्राप्त करके बरतनोंमें लगा हुआ प्रसाद मैं एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे सारे पाप धुल गये। इस प्रकार उनकी सेवा करते-करते मेरा हृदय शुद्ध हो गया और वे लोग जैसा भजन-पूजन करते थे, उसीमें मेरी भी रुचि हो गयी ।।२५।। प्यारे व्यासजी! उस सत्संगमें उन लीलागानपरायण महात्माओंके अनुग्रहसे मैं प्रतिदिन श्रीकृष्णकी मनोहर कथाएँ सुना करता। श्रद्धापूर्वक एक-एक पद श्रवण करते-करते प्रियकीर्ति भगवान्‌में मेरी रुचि हो गयी ।।२६।।

तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने
प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ।
ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया
पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ।।२७
इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरे-
र्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभि-
र्भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा ।।२८
तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः ।
श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च ।।२९
ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् ।
अन्ववोचन् गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ।।३०
येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः ।
मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम् ।।३१

******ebook converter DEMO Watermarks*******

एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् ।
यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ।।३२
आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ।
तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ।।३३
एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः ।
त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ।।३४
यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ।
ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ।।३५
कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयासकृत् ।
गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ।।३६
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ।।३७

महामुने! जब भगवान्‌में मेरी रुचि हो गयी, तब उन मनोहरकीर्ति प्रभुमें मेरी बुद्धि भी निश्चल हो गयी। उस बुद्धिसे मैं इस सम्पूर्ण सत् और असत्-रूप जगत्‌को अपने परब्रह्मस्वरूप आत्मामें मायासे कल्पित देखने लगा ।।२७।। इस प्रकार शरद् और वर्षा—इन दो ऋतुओंमें तीनों समय उन महात्मा मुनियोंने श्रीहरिके निर्मल यशका संकीर्तन किया और मैं प्रेमसे प्रत्येक बात सुनता रहा। अब चित्तके रजोगुण और तमोगुणको नाश करनेवाली भक्तिका मेरे हृदयमें प्रादुर्भाव हो गया ।।२८।। मैं उनका बड़ा ही अनुरागी था, विनयी था; उन लोगोंकी सेवासे मेरे पाप नष्ट हो चुके थे। मेरे हृदयमें श्रद्धा थी, इन्द्रियोंमें संयम था एवं शरीर, वाणी और मनसे मैं उनका आज्ञाकारी था ।।२९।। उन दीनवत्सल महात्माओंने जाते समय कृपा करके मुझे उस गुह्यतम ज्ञानका उपदेश किया, जिसका उपदेश स्वयं भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे किया है ।।३०।। उस उपदेशसे ही जगत्‌के निर्माता भगवान् श्रीकृष्णकी मायाके प्रभावको मैं जान सका, जिसके जान लेनेपर उनके परमपदकी प्राप्ति हो जाती है ।।३१।।

सत्यसंकल्प व्यासजी! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति समस्त कर्मोंको समर्पित कर देना ही संसारके तीनों तापोंकी एकमात्र ओषधि है, यह बात मैंने आपको बतला दी ।।३२।। प्राणियोंको जिस पदार्थके सेवनसे जो रोग हो जाता है, वही पदार्थ चिकित्साविधिके अनुसार प्रयोग करनेपर क्या उस रोगको दूर नहीं करता? ।।३३।। इसी प्रकार यद्यपि सभी कर्म मनुष्योंको जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालनेवाले हैं, तथापि जब वे भगवान्‌को समर्पित कर दिये जाते हैं, तब उनका कर्मपना ही नष्ट हो जाता है ।।३४।। इस लोकमें जो शास्त्रविहित कर्म भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किये जाते हैं, उन्हींसे पराभक्तियुक्त ज्ञानकी प्राप्ति होती है ।।३५।। उस भगवदर्थ कर्मके मार्गमें भगवान्‌के आज्ञानुसार आचरण करते हुए लोग बार-बार भगवान् श्रीकृष्णके गुण और नामोंका कीर्तन तथा स्मरण करते हैं ।।३६।। ‘प्रभो! आप भगवान् श्रीवासुदेवको नमस्कार है। हम आपका ध्यान करते हैं। प्रद्युम्न,

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अनिरुद्ध और संकर्षणको भी नमस्कार है’ ।।३७।। इस प्रकार जो पुरुष चतुर्व्यूहरूपी भगवन्मूर्तियोंके नामद्वारा प्राकृतमूर्तिरहित अप्राकृत मन्त्रमूर्ति भगवान् यज्ञपुरुषका पूजन करता है, उसीका ज्ञान पूर्ण एवं यथार्थ है ।।३८।।

इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् ।
यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान् ।।३८

इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् ।
अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन् भावं च केशवः ।।३९

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः
समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ।
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां
संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ।।४०

ब्रह्मन्! जब मैंने भगवान्‌की आज्ञाका इस प्रकार पालन किया, तब इस बातको जानकर भगवान् श्रीकृष्णने मुझे आत्मज्ञान, ऐश्वर्य और अपनी भावरूपा प्रेमाभक्तिका दान किया ।।३९।। व्यासजी! आपका ज्ञान पूर्ण है; आप भगवान्‌की ही कीर्तिका—उनकी प्रेममयी लीलाका वर्णन कीजिये। उसीसे बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है। जो लोग दुःखोंके द्वारा बार-बार रौंदे जा रहे हैं, उनके दुःखकी शान्ति इसीसे हो सकती है और कोई उपाय नहीं है ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे व्यासनारदसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

२- प्रा० पा०—तथापि।

१. प्रा० पा०—ते प्रदेश०। २. प्रा० पा०—बुद्ध०। ३. प्रा० पा०—गुणानुकीर्तनम्। ४. प्रा० पा०—सुतो।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ षष्ठोऽध्यायः
नारदजीके पूर्वचरित्रका शेष भाग

सूत उवाच

एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ।
भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन् व्यासः सत्यवतीसुतः ।।१

व्यास उवाच

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव ।
वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ।।२
स्वायम्भुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः ।
कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ।।३
प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम ।
न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ।।४

नारद उवाच

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ।
वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम् ।।५

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी! देवर्षि नारदके जन्म और साधनाकी बात सुनकर सत्यवतीनन्दन भगवान् श्रीव्यासजीने उनसे फिर यह प्रश्न किया ।।१।।

श्रीव्यासजीने पूछा—नारदजी! जब आपको ज्ञानोपदेश करनेवाले महात्मागण चले गये, तब आपने क्या किया? उस समय तो आपकी अवस्था बहुत छोटी थी ।।२।। स्वायम्भुव! आपकी शेष आयु किस प्रकार व्यतीत हुई और मृत्युके समय आपने किस विधिसे अपने शरीरका परित्याग किया? ।।३।। देवर्षे! काल तो सभी वस्तुओंको नष्ट कर देता है, उसने आपकी इस पूर्वकल्पकी स्मृतिका कैसे नाश नहीं किया? ।।४।।

श्रीनारदजीने कहा—मुझे ज्ञानोपदेश करनेवाले महात्मागण जब चले गये, तब मैंने इस प्रकार अपना जीवन व्यतीत किया—यद्यपि उस समय मेरी अवस्था बहुत छोटी थी ।।५।।

एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किङ्करी ।
मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ।।६

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सास्वतन्त्रा न कल्पाऽऽसीद्योगक्षेमं ममेच्छती ।
ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ।।७

अहं च तद्ब्रह्मकुले ऊषिवांस्तदपेक्षया ।
दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ।।८

एकदा निर्गतां गेहाद्दुहन्तीं निशि गां पथि ।
सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ।।९

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः ।
अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ।।१०

स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ।
खेटखर्वटवाटीश्च[१] वनान्युपवनानि च ।।११

चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ।
जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ।।१२

चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः ।
नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम्[२] ।।१३

एक एवातियातोऽहमद्राक्षं[३] विपिनं महत् ।
घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाजिरम् ।।१४

मैं अपनी माँका इकलौता लड़का था। एक तो वह स्त्री थी, दूसरे मूढ़ और तीसरे दासी थी। मुझे भी उसके सिवा और कोई सहारा नहीं था। उसने अपनेको मेरे स्नेहपाशसे जकड़ रखा था ।।६।। वह मेरे योगक्षेमकी चिन्ता तो बहुत करती थी, परंतु पराधीन होनेके कारण कुछ कर नहीं पाती थी। जैसे कठपुतली नचानेवालेकी इच्छाके अनुसार ही नाचती है, वैसे ही यह सारा संसार ईश्वरके अधीन है ।।७।।

मैं भी अपनी माँके स्नेहबन्धनमें बँधकर उस ब्राह्मण-बस्तीमें ही रहा। मेरी अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी; मुझे दिशा, देश और कालके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञान नहीं था ।।८।। एक दिनकी बात है, मेरी माँ गौ दुहनेके लिये रातके समय घरसे बाहर निकली। रास्तेमें उसके पैरसे साँप छू गया, उसने उस बेचारीको डस लिया। उस साँपका क्या दोष, कालकी ऐसी ही प्रेरणा थी ।।९।। मैंने समझा, भक्तोंका मंगल चाहनेवाले भगवान्का यह भी एक अनुग्रह ही

******ebook converter DEMO Watermarks*******

है। इसके बाद मैं उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा ।।१०।।

उस ओर मार्गमें मुझे अनेकों धन-धान्यसे सम्पन्न देश, नगर, गाँव, अहीरोंकी चलती-फिरती बस्तियाँ, खानें, खेड़े, नदी और पर्वतोंके तटवर्ती पड़ाव, वाटिकाएँ, वन-उपवन और रंग-बिरंगी धातुओंसे युक्त विचित्र पर्वत दिखायी पड़े। कहीं-कहीं जंगली वृक्ष थे, जिनकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ हाथियोंने तोड़ डाली थीं। शीतल जलसे भरे हुए जलाशय थे, जिनमें देवताओंके काममें आनेवाले कमल थे; उनपर पक्षी तरह-तरहकी बोली बोल रहे थे और भौंरे मँडरा रहे थे। यह सब देखता हुआ मैं आगे बढ़ा। मैं अकेला ही था। इतना लम्बा मार्ग तै करनेपर मैंने एक घोर गहन जंगल देखा। उसमें नरकट, बाँस, सेंठा, कुश, कीचक आदि खड़े थे। उसकी लम्बाई-चौड़ाई भी बहुत थी और वह साँप, उल्लू, स्यार आदि भयंकर जीवोंका घर हो रहा था। देखनेमें बड़ा भयावना लगता था ।।११-१४।।

परिश्रान्तेन्द्रियात्माहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ।
स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ।।१५

तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आस्थितः[१] ।
आत्मनाऽऽत्मानमात्मस्थं[२] यथाश्रुतमचिन्तयम् ।।१६

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ।।१७

प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ।
आनन्दसम्प्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ।।१८

रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचापहम् ।
अपश्यन् सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव ।।१९

दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ।
वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ।।२०

एवं यतन्तं विजने मामाहागोचरो गिराम् ।
गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ।।२१

हन्तास्मिञ्जन्मनि भवान्मा मां द्रष्टुमिहार्हति ।
अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ।।२२

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सकृद् यद् दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ ।
मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान् ।।२३

चलते-चलते मेरा शरीर और इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। मुझे बड़े जोरकी प्यास लगी, भूखा तो था ही। वहाँ एक नदी मिली। उसके कुण्डमें मैंने स्नान, जलपान और आचमन किया। इससे मेरी थकावट मिट गयी ।।१५।। उस विजन वनमें एक पीपलके नीचे आसन लगाकर मैं बैठ गया। उन महात्माओंसे जैसा मैंने सुना था, हृदयमें रहनेवाले परमात्माके उसी स्वरूपका मैं मन-ही-मन ध्यान करने लगा ।।१६।। भक्तिभावसे वशीकृत चित्तद्वारा भगवान्‌के चरण-कमलोंका ध्यान करते ही भगवत्-प्राप्तिकी उत्कट लालसासे मेरे नेत्रोंमें आँसू छलछला आये और हृदयमें धीरे-धीरे भगवान् प्रकट हो गये ।।१७।। व्यासजी! उस समय प्रेमभावके अत्यन्त उद्रेकसे मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। हृदय अत्यन्त शान्त और शीतल हो गया। उस आनन्दकी बाढ़में मैं ऐसा डूब गया कि मुझे अपना और ध्येय वस्तुका तनिक भी भान न रहा ।।१८।। भगवान्‌का वह अनिर्वचनीय रूप समस्त शोकोंका नाश करनेवाला और मनके लिये अत्यन्त लुभावना था। सहसा उसे न देख मैं बहुत ही विकल हो गया और अनमना-सा होकर आसनसे उठ खड़ा हुआ ।।१९।।

मैंने उस स्वरूपका दर्शन फिर करना चाहा; किन्तु मनको हृदयमें समाहित करके बार-बार दर्शनकी चेष्टा करनेपर भी मैं उसे नहीं देख सका। मैं अतृप्तके समान आतुर हो उठा ।।२०।। इस प्रकार निर्जन वनमें मुझे प्रयत्न करते देख स्वयं भगवान्‌ने, जो वाणीके विषय नहीं हैं, बड़ी गंभीर और मधुर वाणीसे मेरे शोकको शान्त करते हुए-से कहा ।।२१।। ‘खेद है कि इस जन्ममें तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकोगे। जिनकी वासनाएँ पूर्णतया शान्त नहीं हो गयीं हैं, उन अधकचरे योगियोंको मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है ।।२२।। निष्पाप बालक! तुम्हारे हृदयमें मुझे प्राप्त करनेकी लालसा जाग्रत् करनेके लिये ही मैंने एक बार तुम्हें अपने रूपकी झलक दिखायी है। मुझे प्राप्त करनेकी आकांक्षासे युक्त साधक धीरे-धीरे हृदयकी सम्पूर्ण वासनाओंका भलीभाँति त्याग कर देता है ।।२३।। अल्पकालीन संतसेवासे ही तुम्हारी चित्तवृत्ति मुझमें स्थिर हो गयी है। अब तुम इस प्राकृतमलिन शरीरको छोड़कर मेरे पार्षद हो जाओगे ।।२४।। मुझे प्राप्त करनेका तुम्हारा यह दृढ़ निश्चय कभी किसी प्रकार नहीं टूटेगा। समस्त सृष्टिका प्रलय हो जानेपर भी मेरी कृपासे तुम्हें मेरी स्मृति बनी रहेगी’ ।।२५।। आकाशके समान अव्यक्त सर्वशक्तिमान् महान् परमात्मा इतना कहकर चुप हो रहे। उनकी इस कृपाका अनुभव करके मैंने उन श्रेष्ठोंसे भी श्रेष्ठतर भगवान्‌को सिर झुकाकर प्रणाम किया ।।२६।। तभीसे मैं लज्जा-संकोच छोड़कर भगवान्‌के अत्यन्त रहस्यमय और मंगलमय मधुर नामों और लीलाओंका कीर्तन और स्मरण करने लगा। स्पृहा और मद-मत्सर मेरे हृदयसे पहले ही निवृत्त हो चुके थे, अब मैं आनन्दसे कालकी प्रतीक्षा करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा ।।२७।।

सत्सेवयादीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

हित्वावद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि ।।२४
मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् ।
प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ।।२५
एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्
भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् ।
अहं च तस्मै महतां महीयसे
शीर्ष्णावनामं विदधेऽनुकम्पितः ।।२६
नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्
गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ।
गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः
कालं प्रतीक्षन् विमदो[१] विमत्सरः ।।२७
एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ।
कालः प्रादुरभूत्काले तडित्सौदामनी[२] यथा ।।२८
प्रयुज्यामाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ।
आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत् पाञ्चभौतिकः ।।२९
कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः ।
शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः ।।३०
सहस्रयुगपर्यन्ते उत्थायेदं सिसृक्षतः ।
मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ।।३१
अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन् पर्येम्यस्कन्दितव्रतः ।
अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः[३] क्वचित् ।।३२

व्यासजी! इस प्रकार भगवान्‌की कृपासे मेरा हृदय शुद्ध हो गया, आसक्ति मिट गयी और मैं श्रीकृष्णपरायण हो गया। कुछ समय बाद, जैसे एकाएक बिजली कौंध जाती है, वैसे ही अपने समयपर मेरी मृत्यु आ गयी ।।२८।। मुझे शुद्ध भगवत्पार्षद-शरीर प्राप्त होनेका अवसर आनेपर प्रारब्धकर्म समाप्त हो जानेके कारण पांचभौतिक शरीर नष्ट हो गया ।।२९।। कल्पके अन्तमें जिस समय भगवान् नारायण एकार्णव (प्रलय-कालीन समुद्र)-के जलमें शयन करते हैं, उस समय उनके हृदयमें शयन करनेकी इच्छासे इस सारी सृष्टिको समेटकर ब्रह्माजी जब प्रवेश करने लगे, तब उनके श्वासके साथ मैं भी उनके हृदयमें प्रवेश कर गया ।।३०।। एक सहस्र चतुर्युगी बीत जानेपर जब ब्रह्मा जगे और उन्होंने सृष्टि करनेकी इच्छा की, तब उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषियोंके साथ मैं भी प्रकट हो गया ।।३१।। तभीसे मैं भगवान्‌की कृपासे वैकुण्ठादिमें और तीनों लोकोंमें बाहर और भीतर बिना रोक-

******ebook converter DEMO Watermarks*******

टोक विचरण किया करता हूँ। मेरे जीवनका व्रत भगवद्भजन अखण्डरूपसे चलता रहता है ।।३२।। भगवान्‌की दी हुई इस स्वरब्रह्मसे* विभूषित वीणापर तान छेड़कर मैं उनकी लीलाओंका गान करता हुआ सारे संसारमें विचरता हूँ ।।३३।। जब मैं उनकी लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरणकमल समस्त तीर्थोंके उद्‌गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तुरन्त मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं ।।३४।। जिन लोगोंका चित्त निरन्तर विषयभोगोंकी कामनासे आतुर हो रहा है, उनके लिये भगवान्‌की लीलाओंका कीर्तन संसारसागरसे पार जानेका जहाज है, यह मेरा अपना अनुभव है ।।३५।। काम और लोभकी चोटसे बार-बार घायल हुआ हृदय श्रीकृष्णसेवासे जैसी प्रत्यक्ष शान्तिका अनुभव करता है, यम-नियम आदि योगमार्गोंसे वैसी शान्ति नहीं मिल सकती ।।३६।। व्यासजी! आप निष्पाप हैं। आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब अपने जन्म और साधनाका रहस्य तथा आपकी आत्मतुष्टिका उपाय मैंने बतला दिया ।।३७।।

देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ।
मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ।।३३

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ।।३४

एतद्‌ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ।
भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ।।३५

यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ।
मुकुन्दसेवया यद्वत्तथाऽऽत्माद्धा न शाम्यति ।।३६

सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।
जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ।।३७

सूत उवाच

एवं सम्भाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् ।
आमन्त्र्य वीणां रणयन् ययौ यादृच्छिको मुनिः ।।३८

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं[१] शार्ङ्गधन्वनः ।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ।।३९

******ebook converter DEMO Watermarks*******

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! देवर्षि नारदने व्यासजीसे इस प्रकार कहकर जानेकी अनुमति ली और वीणा बजाते हुए स्वच्छन्द विचरण करनेके लिये वे चल पड़े ।।३८।। अहा! ये देवर्षि नारद धन्य हैं; क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवान्‌की कीर्तिको अपनी वीणापर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-साथ इस त्रितापतप्त जगत्‌को भी आनन्दित करते रहते हैं ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

---

१. प्रा० पा०—खेटान्। २. प्रा० पा०—रत्नरेणु। ३. प्रा० पा०—एवाभि०।

१. प्रा० पा०—आश्रितः। २. प्रा० पा०—आत्मनाऽऽत्मस्थमात्मानं।

१. प्रा० पा०—प्रतीक्षन्नमदो। २. प्रा० पा०—विद्युत्। ३. प्रा० पा०—अनुग्रहादहं विष्णो।

१. प्रा० पा०—यः कीर्तिं ।

* षड्‌ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद्—ये सातों स्वर ब्रह्मव्यंजक होनेके नाते ही ब्रह्मरूप कहे गये हैं।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ सप्तमोऽध्यायः
अश्वत्थामाद्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका मारा जाना और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाका मानमर्दन

शौनक उवाच

निर्गते नारदे सूत भगवान् बादरायणः ।
श्रुतवांस्तदभिप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ।।१

सूत उवाच

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे ।
शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ।।२
तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासो बदरीषण्डमण्डिते ।
आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ।।३
भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले ।
अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम् ।।४
यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ।।५
अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ।।६
यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ।।७
स संहितां भागवतीं कृत्वानुक्रम्य चात्मजम् ।
शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ।।८

शौनक उवाच

स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनिः ।
कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ।।९

श्रीशौनकजीने पूछा—सूतजी! सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् व्यासभगवान्ने नारदजीका

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अभिप्राय सुन लिया। फिर उनके चले जानेपर उन्होंने क्या किया? ।।१।।

श्रीसूतजीने कहा—ब्रह्मनदी सरस्वतीके पश्चिम तटपर शम्याप्रास नामका एक आश्रम है। वहाँ ऋषियोंके यज्ञ चलते ही रहते हैं ।।२।। वहीं व्यासजीका अपना आश्रम है। उसके चारों ओर बेरका सुन्दर वन है। उस आश्रममें बैठकर उन्होंने आचमन किया और स्वयं अपने मनको समाहित किया ।।३।। उन्होंने भक्तियोगके द्वारा अपने मनको पूर्णतया एकाग्र और निर्मल करके आदिपुरुष परमात्मा और उनके आश्रयसे रहनेवाली मायाको देखा ।।४।। इसी मायासे मोहित होकर यह जीव तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक मान लेता है और इस मान्यताके कारण होनेवाले अनर्थोंको भोगता है ।।५।। इन अनर्थोंकी शान्तिका साक्षात् साधन है—केवल भगवान्‌का भक्ति-योग। परन्तु संसारके लोग इस बातको नहीं जानते। यही समझकर उन्होंने इस परमहंसोंकी संहिता श्रीमद्भागवतकी रचना की ।।६।। इसके श्रवणमात्रसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति परम प्रेममयी भक्ति हो जाती है, जिससे जीवके शोक, मोह और भय नष्ट हो जाते हैं ।।७।। उन्होंने इस भागवत-संहिताका निर्माण और पुनरावृत्ति करके इसे अपने निवृत्तिपरायण पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढ़ाया ।।८।।

श्रीशौनकजीने पूछा—श्रीशुकदेवजी तो अत्यन्त निवृत्तिपरायण हैं, उन्हें किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। वे सदा आत्मामें ही रमण करते हैं। फिर उन्होंने किसलिये इस विशाल ग्रन्थका अध्ययन किया? ।।९।।

सूत उवाच

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ।।१०
हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः ।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ।।११
परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलापनम् ।
संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ।।१२
यदा मृधे कौरवसृञ्जयानां
वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ।
वृकोदराविद्धगदाभिमर्श-
भग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ।।१३
भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्
कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ।
उपाहरद् विप्रियमेव तस्य
जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ।।१४
माता शिशूनां निधनं सुतानां

******ebook converter DEMO Watermarks*******

निशम्य घोरं परितप्यमाना ।
तदारुदद्बाष्पकलाकुलाक्षी
तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ।।१५
तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे
यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे
त्वाऽऽक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ।।१६
इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः
स सान्त्वयित्वाच्युतमित्रसूतः ।
अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा
कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ।।१७

श्रीसूतजीने कहा—जो लोग ज्ञानी हैं, जिनकी अविद्याकी गाँठ खुल गयी है और जो सदा आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं, वे भी भगवान्‌की हेतुरहित भक्ति किया करते हैं; क्योंकि भगवान्‌के गुण ही ऐसे मधुर हैं, जो सबको अपनी ओर खींच लेते हैं ।।१०।। फिर श्रीशुकदेवजी तो भगवान्‌के भक्तोंके अत्यन्त प्रिय और स्वयं भगवान् वेदव्यासके पुत्र हैं। भगवान्‌के गुणोंने उनके हृदयको अपनी ओर खींच लिया और उन्होंने उससे विवश होकर ही इस विशाल ग्रन्थका अध्ययन किया ।।११।।

शौनकजी! अब मैं राजर्षि परीक्षित्‌के जन्म, कर्म और मोक्षकी तथा पाण्डवोंके स्वर्गारोहणकी कथा कहता हूँ; क्योंकि इन्हींसे भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों कथाओंका उदय होता है ।।१२।। जिस समय महाभारतयुद्धमें कौरव और पाण्डव दोनों पक्षोंके बहुत-से वीर वीरगतिको प्राप्त हो चुके थे और भीमसेनकी गदाके प्रहारसे दुर्योधनकी जाँघ टूट चुकी थी, तब अश्वत्थामाने अपने स्वामी दुर्योधनका प्रिय कार्य समझकर द्रौपदीके सोते हुए पुत्रोंके सिर काटकर उसे भेंट किये, यह घटना दुर्योधनको भी अप्रिय ही लगी; क्योंकि ऐसे नीच कर्मकी सभी निन्दा करते हैं ।।१३-१४।। उन बालकोंकी माता द्रौपदी अपने पुत्रोंका निधन सुनकर अत्यन्त दुःखी हो गयी। उसकी आँखोंमें आँसू छलछला आये—वह रोने लगी। अर्जुनने उसे सान्त्वना देते हुए कहा ।।१५।। 'कल्याणि! मैं तुम्हारे आँसू तब पोछूँगा, जब उस आततायी* ब्राह्मणाधमका सिर गाण्डीव-धनुषके बाणोंसे काटकर तुम्हें भेंट करूँगा और पुत्रोंकी अन्त्येष्टि क्रियाके बाद तुम उसपर पैर रखकर स्नान करोगी' ।।१६।। अर्जुनने इन मीठी और विचित्र बातोंसे द्रौपदीको सान्त्वना दी और अपने मित्र भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे उन्हें सारथि बनाकर कवच धारणकर और अपने भयानक गाण्डीव धनुषको लेकर वे रथपर सवार हुए तथा गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे दौड़ पड़े ।।१७।।

तमापतन्तं स विलक्ष्य दूरात्
कुमारहोद्विग्नमना रथेन ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

परादवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां
यावद्गमं रुद्रभयाद्यथार्कः ।।१८
यदाशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनम् ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेने आत्मत्राणं द्विजात्मजः ।।१९
अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः ।
अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ।।२०
ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतोदिशम् ।
प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ।।२१

अर्जुन उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो[१] भक्तानामभयङ्कर ।
त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ।।२२
त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ।
मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ।।२३
स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः ।
विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ।।२४
तथायं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया ।
स्वानां[२] चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ।।२५
किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ।
सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ।।२६

श्रीभगवानुवाच

वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् ।
नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ।।२७

बच्चोंकी हत्यासे अश्वत्थामाका भी मन उद्विग्न हो गया था। जब उसने दूरसे ही देखा कि अर्जुन मेरी ओर झपटे हुए आ रहे हैं, तब वह अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये पृथ्वीपर जहाँतक भाग सकता था, रुद्रसे भयभीत सूर्यकी* भाँति भागता रहा ।।१८।। जब उसने देखा कि मेरे रथके घोड़े थक गये हैं और मैं बिलकुल अकेला हूँ, तब उसने अपनेको बचानेका एकमात्र साधन ब्रह्मास्त्र ही समझा ।।१९।। यद्यपि उसे ब्रह्मास्त्रको लौटानेकी विधि मालूम न थी, फिर भी प्राणसंकट देखकर उसने आचमन किया और ध्यानस्थ होकर ब्रह्मास्त्रका

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सन्धान किया ।।२०।। उस अस्त्रसे सब दिशाओंमें एक बड़ा प्रचण्ड तेज फैल गया। अर्जुनने देखा कि अब तो मेरे प्राणोंपर ही आ बनी है, तब उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की ।।२१।।

अर्जुनने कहा—श्रीकृष्ण! तुम सच्चिदानन्द-स्वरूप परमात्मा हो। तुम्हारी शक्ति अनन्त है। तुम्हीं भक्तोंको अभय देनेवाले हो। जो संसारकी धधकती हुई आगमें जल रहे हैं, उन जीवोंको उससे उबारनेवाले एकमात्र तुम्हीं हो ।।२२।। तुम प्रकृतिसे परे रहनेवाले आदिपुरुष साक्षात् परमेश्वर हो। अपनी चित्-शक्ति (स्वरूप-शक्ति)- से बहिरंग एवं त्रिगुणमयी मायाको दूर भगाकर अपने अद्वितीय स्वरूपमें स्थित हो ।।२३।। वही तुम अपने प्रभावसे माया-मोहित जीवोंके लिये धर्मादिरूप कल्याणका विधान करते हो ।।२४।। तुम्हारा यह अवतार पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये और तुम्हारे अनन्य प्रेमी भक्तजनोंके निरन्तर स्मरण-ध्यान करनेके लिये है ।।२५।। स्वयम्प्रकाशस्वरूप श्रीकृष्ण! यह भयंकर तेज सब ओरसे मेरी ओर आ रहा है। यह क्या है, कहाँसे, क्यों आ रहा है—इसका मुझे बिलकुल पता नहीं है! ।।२६।।

भगवान्ने कहा—अर्जुन! यह अश्वत्थामाका चलाया हुआ ब्रह्मास्त्र है। यह बात समझ लो कि प्राणसंकट उपस्थित होनेसे उसने इसका प्रयोग तो कर दिया है, परन्तु वह इस अस्त्रको लौटाना नहीं जानता ।।२७।। किसी भी दूसरे अस्त्रमें इसको दबा देनेकी शक्ति नहीं है। तुम शस्त्रास्त्रविद्याको भलीभाँति जानते ही हो, ब्रह्मास्त्रके तेजसे ही इस ब्रह्मास्त्रकी प्रचण्ड आगको बुझा दो ।।२८।।

न ह्यस्यान्यतमं किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ।
जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ।।२८

सूत उवाच

श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा ।
स्पृष्ट्वापस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ।।२९

संहत्यान्योन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते ।
आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ।।३०

दृष्ट्वास्त्रतेजस्तु तयोस्त्रींल्लोकान् प्रदहन्महत् ।
दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ।।३१

प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् ।
मतं च वासुदेवस्य संजहारार्जुनो द्वयम् ।।३२

तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

बबन्धामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ।।३३

शिबिराय निनीषन्तं दाम्ना बद्ध्वा रिपुं बलात् ।
प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ।।३४

मैनं पार्थार्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जहि ।
योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ।।३५

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ।
प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ।।३६

स्वप्राणान् यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः ।
तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ।।३७

प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यै शृण्वतो मम ।
आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ।।३८

सूतजी कहते हैं—अर्जुन विपक्षी वीरोंको मारनेमें बड़े प्रवीण थे। भगवान्‌की बात सुनकर उन्होंने आचमन किया और भगवान्‌की परिक्रमा करके ब्रह्मास्त्रके निवारणके लिये ब्रह्मास्त्रका ही सन्धान किया ।।२९।। बाणोंसे वेष्टित उन दोनों ब्रह्मास्त्रोंके तेज प्रलयकालीन सूर्य एवं अग्निके समान आपसमें टकराकर सारे आकाश और दिशाओंमें फैल गये और बढ़ने लगे ।।३०।। तीनों लोकोंको जलानेवाली उन दोनों अस्त्रोंकी बढ़ी हुई लपटोंसे प्रजा जलने लगी और उसे देखकर सबने यही समझा कि यह प्रलयकालकी सांवर्तक अग्नि है ।।३१।। उस आगसे प्रजाका और लोकोंका नाश होते देखकर भगवान्‌की अनुमतिसे अर्जुनने उन दोनोंको ही लौटा लिया ।।३२।। अर्जुनकी आँखें क्रोधसे लाल-लाल हो रही थीं। उन्होंने झपटकर उस क्रूर अश्वत्थामाको पकड़ लिया और जैसे कोई रस्सीसे पशुको बाँध ले, वैसे ही बाँध लिया ।।३३।। अश्वत्थामाको बलपूर्वक बाँधकर अर्जुनने जब शिविरकी ओर ले जाना चाहा, तब उनसे कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने कुपित होकर कहा— ।।३४।। ‘अर्जुन! इस ब्राह्मणाधमको छोड़ना ठीक नहीं है, इसको तो मार ही डालो। इसने रातमें सोये हुए निरपराध बालकोंकी हत्या की है ।।३५।। धर्मवेत्ता पुरुष असावधान, मतवाले, पागल, सोये हुए, बालक, स्त्री, विवेकज्ञानशून्य, शरणागत, रथहीन और भयभीत शत्रुको कभी नहीं मारते ।।३६।। परन्तु जो दुष्ट और क्रूर पुरुष दूसरोंको मारकर अपने प्राणोंका पोषण करता है, उसका तो वध ही उसके लिये कल्याणकारी है; क्योंकि वैसी आदतको लेकर यदि वह जीता है तो और भी पाप करता है और उन पापोंके कारण नरकगामी होता है ।।३७।। फिर मेरे सामने ही तुमने द्रौपदीसे प्रतिज्ञा की थी कि ‘मानवती! जिसने तुम्हारे पुत्रोंका वध किया

******ebook converter DEMO Watermarks*******

है, उसका सिर मैं उतार लाऊँगा' ।।३८।। इस पापी कुलांगार आततायीने तुम्हारे पुत्रोंका वध किया है और अपने स्वामी दुर्योधनको भी दु:ख पहुँचाया है। इसलिये अर्जुन! इसे मार ही डालो ।।३९।। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये इस प्रकार प्रेरणा की, परन्तु अर्जुनका हृदय महान् था। यद्यपि अश्वत्थामाने उनके पुत्रोंकी हत्या की थी, फिर भी अर्जुनके मनमें गुरुपुत्रको मारनेकी इच्छा नहीं हुई ।।४०।।

तदसौ वध्यतां पाप आतताय्यात्मबन्धुहा ।
भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान् कुलपांसनः ।।३९
एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः ।
नैच्छद्धन्तुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ।।४०
अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविन्दप्रियसारथिः ।
न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचन्त्या आत्मजान् हतान् ।।४१
तथाऽऽहृतं पशुवत् पाशबद्ध-
मवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ।
निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरोः सुतं
वामस्वभावा कृपया ननाम च ।।४२
उवाच चासहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती ।
मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ।।४३
सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ।
अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ।।४४
स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ।
तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ।।४५
तद् धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ।
वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्णशः ।।४६
मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ।
यथाहं मृतवत्साऽऽर्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ।।४७
यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरजितात्मभिः ।
तत् कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचार्पितम् ।।४८

इसके बाद अपने मित्र और सारथि श्रीकृष्णके साथ वे अपने युद्ध-शिविरमें पहुँचे। वहाँ अपने मृत पुत्रोंके लिये शोक करती हुई द्रौपदीको उसे सौंप दिया ।।४१।। द्रौपदीने देखा कि अश्वत्थामा पशुकी तरह बाँधकर लाया गया है। निन्दित कर्म करनेके कारण उसका मुख नीचेकी ओर झुका हुआ है। अपना अनिष्ट करनेवाले गुरुपुत्र अश्वत्थामाको इस प्रकार

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अपमानित देखकर द्रौपदीका कोमल हृदय कृपासे भर आया और उसने अश्वत्थामाको नमस्कार किया ।।४२।। गुरुपुत्रका इस प्रकार बाँधकर लाया जाना सती द्रौपदीको सहन नहीं हुआ। उसने कहा—'छोड़ दो इन्हें, छोड़ दो। ये ब्राह्मण हैं, हमलोगोंके अत्यन्त पूजनीय हैं ।।४३।। जिनकी कृपासे आपने रहस्यके साथ सारे धनुर्वेद और प्रयोग तथा उपसंहारके साथ सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया है, वे आपके आचार्य द्रोण ही पुत्रके रूपमें आपके सामने खड़े हैं। उनकी अर्धांगिनी कृपी अपने वीर पुत्रकी ममतासे ही अपने पतिका अनुगमन नहीं कर सकीं, वे अभी जीवित हैं ।।४४-४५।। महाभाग्यवान् आर्यपुत्र! आप तो बड़े धर्मज्ञ हैं। जिस गुरुवंशकी नित्य पूजा और वन्दना करनी चाहिये उसीको व्यथा पहुँचाना आपके योग्य कार्य नहीं है ।।४६।। जैसे अपने बच्चोंके मर जानेसे मैं दुःखी होकर रो रही हूँ और मेरी आँखोंसे बार-बार आँसू निकल रहे हैं, वैसे ही इनकी माता पतिव्रता गौतमी न रोयें ।।४७।। जो उच्छृंखल राजा अपने कुकृत्योंसे ब्राह्मणकुलको कुपित कर देते हैं, वह कुपित ब्राह्मणकुल उन राजाओंको सपरिवार शोकाग्निमें डालकर शीघ्र ही भस्म कर देता है' ।।४८।।

सूत उवाच

धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ।
राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनन्दद्वचो द्विजाः ।।४९
नकुलः सहदेवश्च युयुधानो धनञ्जयः ।
भगवान् देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ।।५०
तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान् वधः स्मृतः ।
न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून् वृथा ।।५१
निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः ।
आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ।।५२

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः[१] ।
मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ।।५३
कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम् ।
प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ।।५४

सूत उवाच

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अर्जुनः सहसाऽऽज्ञाय[२] हरेर्हार्दमथासिना ।
मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ।।५५
विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम् ।
तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ।।५६
वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ।।५७
पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ।
स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ।।५८

सूतजीने कहा—शौनकादि ऋषियो! द्रौपदीकी बात धर्म और न्यायके अनुकूल थी। उसमें कपट नहीं था, करुणा और समता थी। अतएव राजा युधिष्ठिरने रानीके इन हितभरे श्रेष्ठ वचनोंका अभिनन्दन किया ।।४९।। साथ ही नकुल, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और वहाँपर उपस्थित सभी नर-नारियोंने द्रौपदीकी बातका समर्थन किया ।।५०।। उस समय क्रोधित होकर भीमसेनने कहा, 'जिसने सोते हुए बच्चोंको न अपने लिये और न अपने स्वामीके लिये, बल्कि व्यर्थ ही मार डाला, उसका तो वध ही उत्तम है' ।।५१।। भगवान् श्रीकृष्णने द्रौपदी और भीमसेनकी बात सुनकर और अर्जुनकी ओर देखकर कुछ हँसते हुए-से कहा ।।५२।।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'पतित ब्राह्मणका भी वध नहीं करना चाहिये और आततायीको मार ही डालना चाहिये'—शास्त्रोंमें मैंने ही ये दोनों बातें कही हैं। इसलिये मेरी दोनों आज्ञाओंका पालन करो ।।५३।। तुमने द्रौपदीको सान्त्वना देते समय जो प्रतिज्ञा की थी उसे भी सत्य करो; साथ ही भीमसेन, द्रौपदी और मुझे जो प्रिय हो, वह भी करो ।।५४।।

सूतजी कहते हैं—अर्जुन भगवान्‌के हृदयकी बात तुरंत ताड़ गये और उन्होंने अपनी तलवारसे अश्वत्थामाके सिरकी मणि उसके बालोंके साथ उतार ली ।।५५।। बालकोंकी हत्या करनेसे वह श्रीहीन तो पहले ही हो गया था, अब मणि और ब्रह्मतेजसे भी रहित हो गया। इसके बाद उन्होंने रस्सीका बन्धन खोलकर उसे शिविरसे निकाल दिया ।।५६।। मूँड देना, धन छीन लेना और स्थानसे बाहर निकाल देना—यही ब्राह्मणाधमोंका वध है। उनके लिये इससे भिन्न शारीरिक वधका विधान नहीं है ।।५७।। पुत्रोंकी मृत्युसे द्रौपदी और पाण्डव सभी शोकातुर हो रहे थे। अब उन्होंने अपने मरे हुए भाई बन्धुओंकी दाहादि अन्त्येष्टि क्रिया की ।।५८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे द्रौणिनिग्रहो[३] नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

* आग लगानेवाला, जहर देनेवाला, बुरी नीयतसे हाथमें शस्त्र ग्रहण करनेवाला, धन लूटनेवाला, खेत और स्त्रीको छीननेवाला—ये छः 'आततायी' कहलाते हैं।

१. प्रा० पा०—महाभाग। २. प्रा० पा०—स्वानामनन्य० ।

* शिवभक्त विद्युन्माली दैत्यको जब सूर्यने हरा दिया तब सूर्यपर क्रोधित हो भगवान् रुद्र त्रिशूल हाथमें लेकर उनकी ओर दौड़े। उस समय सूर्य भागते-भागते पृथ्वीपर काशीमें आकर गिरे, इसीसे वहाँ उनका 'लोलार्क' नाम पड़ा है।

१. प्रा० पा०—वधार्हकः। २. प्रा० पा०—सहसा ज्ञात्वा। ३. प्रा० पा०—प्राचीन प्रतिमें 'द्रौणिनिग्रहो नाम' की जगह 'पारीक्षिते' पाठ है।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथाष्टमोऽध्यायः
गर्भमें परीक्षित्‌की रक्षा, कुन्तीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और युधिष्ठिरका शोक

सूत उवाच

अथ ते[१] सम्परेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् ।
दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ।।१

ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः ।
आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ।।२

तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सहानुजम् ।
गान्धारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः ।।३

सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धूञ्छुचार्पितान्[२] ।
भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ।।४

साधयित्वाजातशत्रोः स्वं राज्यं कितवैर्हृतम् ।
घातयित्वासतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ।।५

याजयित्वाश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ।
तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ।।६

आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः ।
द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ।।७

गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन् द्वारकां रथमास्थितः ।
उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ।।८

सूतजी कहते हैं—इसके बाद पाण्डव श्रीकृष्णके साथ जलांजलिके इच्छुक मरे हुए स्वजनोंका तर्पण करनेके लिये स्त्रियोंको आगे करके गंगातटपर गये ।।१।। वहाँ उन सबने मृत बन्धुओंको जलदान दिया और उनके गुणोंका स्मरण करके बहुत विलाप किया। तदनन्तर भगवान्‌के चरण-कमलोंकी धूलिसे पवित्र गंगाजलमें पुनः स्नान किया ।।२।। वहाँ

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अपने भाइयोंके साथ कुरुपति महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, पुत्रशोकसे व्याकुल गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदी—सब बैठकर मरे हुए स्वजनोंके लिये शोक करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने धौम्यादि मुनियोंके साथ उनको सान्त्वना दी और समझाया कि संसारके सभी प्राणी कालके अधीन हैं, मौतसे किसीको कोई बचा नहीं सकता ।।३-४।।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरको उनका वह राज्य, जो धूर्तोंने छलसे छीन लिया था, वापस दिलाया तथा द्रौपदीके केशोंका स्पर्श करनेसे जिनकी आयु क्षीण हो गयी थी, उन दुष्ट राजाओंका वध कराया ।।५।। साथ ही युधिष्ठिरके द्वारा उत्तम सामग्रियोंसे तथा पुरोहितोंसे तीन अश्वमेध यज्ञ कराये। इस प्रकार युधिष्ठिरके पवित्र यशको सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रके यशकी तरह सब ओर फैला दिया ।।६।। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने वहाँसे जानेका विचार किया। उन्होंने इसके लिये पाण्डवोंसे विदा ली और व्यास आदि ब्राह्मणोंका सत्कार किया। उन लोगोंने भी भगवान्का बड़ा ही सम्मान किया। तदनन्तर सात्यकि और उद्धवके साथ द्वारका जानेके लिये वे रथपर सवार हुए। उसी समय उन्होंने देखा कि उत्तरा भयसे विह्वल होकर सामनेसे दौड़ी चली आ रही है ।।७-८।।

उत्तरोवाच

पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते ।
नान्यं[१] त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ।।९
अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो ।
कामं दहतु[२] मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ।।१०

सूत उवाच

उपधार्य वचस्तस्या भगवान् भक्तवत्सलः ।
अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ।।११
तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ[३] पाण्डवाः पञ्च सायकान् ।
आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ।।१२
व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् ।
सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ।।१३
अन्तःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः ।
स्वमायया ऽऽवृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ।।१४
यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् ।
वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद् भृगूद्वह ।।१५

******ebook converter DEMO Watermarks*******

मा मंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ।
य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हन्त्यजः ।।१६
ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया ।
प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ।।१७

कुन्त्युवाच

नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम्[४] ।।१८

उत्तराने कहा—देवाधिदेव! जगदीश्वर! आप महायोगी हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतिरिक्त इस लोकमें मुझे अभय देनेवाला और कोई नहीं है; क्योंकि यहाँ सभी परस्पर एक-दूसरेकी मृत्युके निमित्त बन रहे हैं ।।९।। प्रभो! आप सर्व-शक्तिमान् हैं। यह दहकते हुए लोहेका बाण मेरी ओर दौड़ा आ रहा है। स्वामिन्! यह मुझे भले ही जला डाले, परन्तु मेरे गर्भको नष्ट न करे—ऐसी कृपा कीजिये ।।१०।।

सूतजी कहते हैं—भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसकी बात सुनते ही जान गये कि अश्वत्थामाने पाण्डवोंके वंशको निर्बीज करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया है ।।११।। शौनकजी! उसी समय पाण्डवोंने भी देखा कि जलते हुए पाँच बाण हमारी ओर आ रहे हैं। इसलिये उन्होंने भी अपने-अपने अस्त्र उठा लिये ।।१२।। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने अपने अनन्य प्रेमियोंपर—शरणागत भक्तोंपर बहुत बड़ी विपत्ति आयी जानकर अपने निज अस्त्र सुदर्शनचक्रसे उन निज जनोंकी रक्षा की ।।१३।। योगेश्वर श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान आत्मा हैं। उन्होंने उत्तराके गर्भको पाण्डवोंकी वंशपरम्परा चलानेके लिये अपनी मायाके कवचसे ढक दिया ।।१४।। शौनकजी! यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है और उसके निवारणका कोई उपाय भी नहीं है, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णके तेजके सामने आकर वह शान्त हो गया ।।१५।। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये; क्योंकि भगवान् तो सर्वाश्चर्यमय हैं, वे ही अपनी निज शक्ति मायासे स्वयं अजन्मा होकर भी इस संसारकी सृष्टि रक्षा और संहार करते हैं ।।१६।। जब भगवान् श्रीकृष्ण जाने लगे, तब ब्रह्मास्त्रकी ज्वालासे मुक्त अपने पुत्रोंके और द्रौपदीके साथ सती कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की ।।१७।।

कुन्तीने कहा—आप समस्त जीवोंके बाहर और भीतर एकरस स्थित हैं, फिर भी इन्द्रियों और वृत्तियोंसे देखे नहीं जाते; क्योंकि आप प्रकृतिसे परे आदिपुरुष परमेश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ ।।१८।। इन्द्रियोंसे जो कुछ जाना जाता है, उसकी तहमें आप विद्यमान रहते हैं और अपनी ही मायाके परदेसे अपनेको ढके रहते हैं। मैं अबोध नारी आप अविनाशी पुरुषोत्तमको भला कैसे जान सकती हूँ? जैसे मूढ़ लोग दूसरा भेष धारण किये हुए नटको प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं पहचान सकते, वैसे ही आप दीखते हुए भी नहीं

******ebook converter DEMO Watermarks*******

दीखते ।।१९।। आप शुद्ध हृदयवाले विचारशील जीवन्मुक्त परमहंसोंके हृदयमें अपनी प्रेममयी भक्तिका सृजन करनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। फिर हम अल्पबुद्धि स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं ।।२०।। आप श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्द गोपके लाड़ले लाल गोविन्दको हमारा बारंबार प्रणाम है ।।२१।। जिनकी नाभिसे ब्रह्माका जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जो सुन्दर कमलोंकी माला धारण करते हैं, जिनके नेत्र कमलके समान विशाल और कोमल हैं, जिनके चरणकमलोंमें कमलका चिह्न है—श्रीकृष्ण! ऐसे आपको मेरा बार-बार नमस्कार है ।।२२।। हृषीकेश! जैसे आपने दुष्ट कंसके द्वारा कैद की हुई और चिरकालसे शोकग्रस्त देवकीकी रक्षा की थी, वैसे ही पुत्रोंके साथ मेरी भी आपने बार-बार विपत्तियोंसे रक्षा की है। आप ही हमारे स्वामी हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं। श्रीकृष्ण! कहाँतक गिनाऊँ—विषसे, लाक्षागृहकी भयानक आगसे, हिडिम्ब आदि राक्षसोंकी दृष्टिसे, दुष्टोंकी द्यूतसभासे, वनवासकी विपत्तियोंसे और अनेक बारके युद्धोंमें अनेक महारथियोंके शस्त्रास्त्रोंसे और अभी-अभी इस अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे भी आपने ही हमारी रक्षा की है ।।२३-२४।। जगद्गुरो! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जानेपर फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं आना पड़ता ।।२५।। ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता; क्योंकि आप तो उन लोगोंको दर्शन देते हैं जो अकिंचन हैं ।।२६।।

मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् ।
न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ।।१९

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ।।२०

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ।।२१

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ।।२२

यथा हृषीकेश खलेन देवकी
कंसेन रुद्धातिचिरं शुचार्पिता ।
विमोचिताहं च सहात्मजा विभो
त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ।।२३

******ebook converter DEMO Watermarks*******

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शना-
दसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो
द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ।।२४

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ।।२५

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ।।२६
नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ।।२७

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् ।
समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ।।२८

न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं
तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् ।
न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्
द्वेष्यश्च यस्मिन् विषमा मतिर्नृणाम् ।।२९

जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ।
तिर्यङ्नृषिषु[१] यादःसु तदत्यन्तविडम्बनम् ।।३०

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्
या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम्[२] ।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य
सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ।।३१

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ।
यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ।।३२

आप निर्धनोंके परम धन हैं। मायाका प्रपंच आपका स्पर्श भी नहीं कर सकता। आप अपने-आपमें ही विहार करनेवाले, परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्य मोक्षके अधिपति

******ebook converter DEMO Watermarks*******

हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ।।२७।। मैं आपको अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सबके नियन्ता, कालरूप, परमेश्वर समझती हूँ। संसारके समस्त पदार्थ और प्राणी आपसमें टकराकर विषमताके कारण परस्पर विरुद्ध हो रहे हैं, परंतु आप सबमें समानरूपसे विचर रहे हैं ।।२८।। भगवन्! आप जब मनुष्योंकी-सी लीला करते हैं, तब आप क्या करना चाहते हैं—यह कोई नहीं जानता। आपका कभी कोई न प्रिय है और न अप्रिय। आपके सम्बन्धमें लोगोंकी बुद्धि ही विषम हुआ करती है ।।२९।। आप विश्वके आत्मा हैं, विश्वरूप हैं। न आप जन्म लेते हैं और न कर्म ही करते हैं। फिर भी पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, जलचर आदिमें आप जन्म लेते हैं और उन योनियोंके अनुरूप दिव्य कर्म भी करते हैं। यह आपकी लीला ही तो है ।।३०।। जब बचपनमें आपने दूधकी मटकी फोड़कर यशोदा मैयाको खिझा दिया था और उन्होंने आपको बाँधनेके लिये हाथमें रस्सी ली थी, तब आपकी आँखोंमें आँसू छलक आये थे, काजल कपोलोंपर बह चला था, नेत्र चंचल हो रहे थे और भयकी भावनासे आपने अपने मुखको नीचेकी ओर झुका लिया था! आपकी उस दशाका—लीला-छबिका ध्यान करके मैं मोहित हो जाती हूँ। भला, जिससे भय भी भय मानता है, उसकी यह दशा! ।।३१।। आपने अजन्मा होकर भी जन्म क्यों लिया है, इसका कारण बतलाते हुए कोई-कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जैसे मलयाचलकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये उसमें चन्दन प्रकट होता है, वैसे ही अपने प्रिय भक्त पुण्यश्लोक राजा यदुकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये ही आपने उनके वंशमें अवतार ग्रहण किया है ।।३२।।

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ।
अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ।।३३
भारावतारणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ ।
सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः ।।३४
भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति[१] केचन ।।३५
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः[२]
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ।।३६
अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित[३] प्रभो
जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ।
येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्
परायणं राजसु योजितांहसाम् ।।३७
के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः ।
भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ।।३८

******ebook converter DEMO Watermarks*******

नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ।
त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ।।३९
इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः ।
वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः[४] ।।४०
अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ।
स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ।।४१

दूसरे लोग यों कहते हैं कि वसुदेव और देवकीने पूर्वजन्ममें (सुतपा और पृश्निके रूपमें) आपसे यही वरदान प्राप्त किया था, इसीलिये आप अजन्मा होते हुए भी जगत्के कल्याण और दैत्योंके नाशके लिये उनके पुत्र बने हैं ।।३३।। कुछ और लोग यों कहते हैं कि यह पृथ्वी दैत्योंके अत्यन्त भारसे समुद्रमें डूबते हुए जहाजकी तरह डगमगा रही थी—पीड़ित हो रही थी, तब ब्रह्माकी प्रार्थनासे उसका भार उतारनेके लिये ही आप प्रकट हुए ।।३४।। कोई महापुरुष यों कहते हैं की जो लोग इस संसारमें अज्ञान, कामना और कर्मोंके बन्धनमें जकड़े हुए पीड़ित हो रहे हैं उन लोगोंके लिये श्रवण और स्मरण करनेयोग्य लीला करनेके विचारसे ही आपने अवतार ग्रहण किया है ।।३५।। भक्तजन बार-बार आपके चरित्रका श्रवण, गान, कीर्तन एवं स्मरण करके आनन्दित होते रहते हैं; वे ही अविलम्ब आपके उस चरणकमलका दर्शन कर पाते हैं; जो जन्म-मृत्युके प्रवाहको सदाके लिये रोक देता है ।।३६।।

भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभो! क्या अब आप अपने आश्रित और सम्बन्धी हमलोगोंको छोड़कर जाना चाहते हैं। आप जानते हैं कि आपके चरणकमलोंके अतिरिक्त हमें और किसीका सहारा नहीं है। पृथ्वीके राजाओंके तो हम यों ही विरोधी हो गये हैं ।।३७।। जैसे जीवके बिना इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं, वैसे ही आपके दर्शन बिना यदुवंशियोंके और हमारे पुत्र पाण्डवोंके नाम तथा रूपका अस्तित्व ही क्या रह जाता है ।।३८।। गदाधर! आपके विलक्षण चरणचिह्नोंसे चिह्नित यह कुरुजांगल-देशकी भूमि आज जैसी शोभायमान हो रही है, वैसी आपके चले जानेके बाद न रहेगी ।।३९।। आपकी दृष्टिके प्रभावसे ही यह देश पकी हुई फसल तथा लता-वृक्षोंसे समृद्ध हो रहा है। ये वन, पर्वत, नदी और समुद्र भी आपकी दृष्टिसे ही वृद्धिको प्राप्त हो रहे हैं ।।४०।। आप विश्वके स्वामी हैं, विश्वके आत्मा हैं और विश्वरूप हैं। यदुवंशियों और पाण्डवोंमें मेरी बड़ी ममता हो गयी है। आप कृपा करके स्वजनोंके साथ जोड़े हुए इस स्नेहकी दृढ़ फाँसीको काट दीजिये ।।४१।। श्रीकृष्ण! जैसे गंगाकी अखण्ड धारा समुद्रमें गिरती रहती है, वैसे ही मेरी बुद्धि किसी दूसरी ओर न जाकर आपसे ही निरन्तर प्रेम करती रहे ।।४२।। श्रीकृष्ण! अर्जुनके प्यारे सखा यदुवंशशिरोमणे! आप पृथ्वीके भाररूप राजवेशधारी दैत्योंको जलानेके लिये अग्निस्वरूप हैं। आपकी शक्ति अनन्त है। गोविन्द! आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओंका दुःख मिटानेके लिये ही है। योगेश्वर! चराचरके गुरु भगवन्! मैं आपको नमस्कार करती हूँ ।।४३।।

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

रतिमुद्वहतादद्धा[१] गङ्गेवौघमुदन्वति ।।४२

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्-
राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार
योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ।।४३

सूत उवाच

पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः ।
मन्दं जहास वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ।।४४

तां बाढमित्युपामन्त्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् ।
स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन् प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ।।४५

व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाबुध्यत शुचार्पितः[२] ।।४६

आह राजा धर्मसुतश्चिन्तयन् सुहृदां वधम् ।
प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ।।४७

अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ।
पारक्यस्यैव देहस्य बह्वयो मेऽक्षौहिणीर्हताः ।।४८

बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ।
न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ।।४९

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कुन्तीने बड़े मधुर शब्दोंमें भगवान्‌की अधिकांश लीलाओंका वर्णन किया। यह सब सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मायासे उसे मोहित करते हुए-से मन्द-मन्द मुसकराने लगे ।।४४।। उन्होंने कुन्तीसे कह दिया—'अच्छा ठीक है' और रथके स्थानसे वे हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ कुन्ती और सुभद्रा आदि देवियोंसे विदा लेकर जब वे जाने लगे, तब राजा युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे उन्हें रोक लिया ।।४५।। राजा युधिष्ठिरको अपने भाई-बन्धुओंके मारे जानेका बड़ा शोक हो रहा था। भगवान्‌की लीलाका मर्म जाननेवाले व्यास आदि महर्षियोंने और स्वयं अद्भुत चरित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने भी अनेकों इतिहास कहकर उन्हें समझानेकी बहुत चेष्टा की; परंतु उन्हें सान्त्वना न मिली,

******ebook converter DEMO Watermarks*******

उनका शोक न मिटा ।।४६।। शौनकादि ऋषियो! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको अपने स्वजनोंके वधसे बड़ी चिन्ता हुई। वे अविवेकयुक्त चित्तसे स्नेह और मोहके वशमें होकर कहने लगे—भला, मुझ दुरात्माके हृदयमें बद्धमूल हुए इस अज्ञानको तो देखो; मैंने सियार-कुत्तोंके आहार इस अनात्मा शरीरके लिये अनेक अक्षौहिणी* सेनाका नाश कर डाला ।।४७-४८।। मैंने बालक, ब्राह्मण, सम्बन्धी, मित्र, चाचा-ताऊ, भाई-बन्धु और गुरुजनोंसे द्रोह किया है। करोड़ों बरसोंसे भी नरकसे मेरा छुटकारा नहीं हो सकता ।।४९।। यद्यपि शास्त्रका वचन है कि राजा यदि प्रजाका पालन करनेके लिये धर्मयुद्धमें शत्रुओंको मारे तो उसे पाप नहीं लगता, फिर भी इससे मुझे संतोष नहीं होता ।।५०।। स्त्रियोंके पति और भाई-बन्धुओंको मारनेसे उनका मेरे द्वारा यहाँ जो अपराध हुआ है। उसका मैं गृहस्थोचित यज्ञ-यागादिकोंके द्वारा मार्जन करनेमें समर्थ नहीं हूँ ।।५१।। जैसे कीचड़से गँदला जल स्वच्छ नहीं किया जा सकता, मदिरासे मदिराकी अपवित्रता नहीं मिटायी जा सकती, वैसे ही बहुत-से हिंसाबहुल यज्ञोंके द्वारा एक भी प्राणीकी हत्याका प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता ।।५२।।

नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ।
इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ।।५०

स्त्रीणां मद्धतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ।
कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ।।५१

यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् ।
भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ।।५२

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे कुन्तीस्तुतिर्युधिष्ठिरानुतापो नामाष्टमोऽध्यायः ।।८।।

---

१. प्रा० पा०—तेषां परेतानां। २. प्रा० पा०—शुचार्दितान्।

१. प्रा० पा०—नान्यत्र त्वभयं। २. प्रा० पा०—दहति। ३. प्रा० पा०—भृगुश्रेष्ठ। ४. प्रा० पा०—बहिरपि ध्रुवम्।

१. प्रा० पा०—नृष्वपि यादस्सु। २. प्रा० पा०—मृषा०।

१. प्रा० पा०—करिष्य इति। २. प्रा० पा०—वदन्त्य०। ३. प्रा० प्रा० स्वकृतेहितः। ४. प्रा० पा०—वीक्षिताः।

१. प्रा० पा०—रतिमुद्वहतां तद्वत्। २. प्रा० पा०—शुचार्दिताः ।

* २१,८७० रथ, २१,८७० हाथी, १,०९,३५० पैदल और ६५,६०० घुड़सवार—इतनी सेनाको अक्षौहिणी कहते हैं। (महाभारत)

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ नवमोऽध्यायः

युधिष्ठिरादिका भीष्मजीके पास जाना और भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए भीष्मजीका प्राणत्याग करना

सूत उवाच

इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ।
ततो विनशनं प्रागाद् यत्र देवव्रतोऽपतत् ।।१
तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ।
अन्वगच्छन् रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ।।२
भगवानपि विप्रर्षे रथेन सधनञ्जयः ।
स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ।।३
दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ।
प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ।।४
तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ।
राजर्षयश्च तत्रासन् द्रष्टुं भरतपुङ्गवम् ।।५

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार राजा युधिष्ठिर प्रजाद्रोहसे भयभीत हो गये। फिर सब धर्मोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्होंने कुरुक्षेत्रकी यात्रा की, जहाँ भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हुए थे ।।१।। शौनकादि ऋषियो! उस समय उन सब भाइयोंने स्वर्णजटित रथोंपर, जिनमें अच्छे-अच्छे घोड़े जुते हुए थे, सवार होकर अपने भाई युधिष्ठिरका अनुगमन किया। उनके साथ व्यास, धौम्य आदि ब्राह्मण भी थे ।।२।। शौनकजी! अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी रथपर चढ़कर चले। उन सब भाइयोंके साथ महाराज युधिष्ठिरकी ऐसी शोभा हुई, मानो यक्षोंसे घिरे हुए स्वयं कुबेर ही जा रहे हों ।।३।। अपने अनुचरों और भगवान् श्रीकृष्णके साथ वहाँ जाकर पाण्डवोंने देखा कि भीष्मपितामह स्वर्गसे गिरे हुए देवताके समान पृथ्वीपर पड़े हुए हैं। उन लोगोंने उन्हें प्रणाम किया ।।४।। शौनकजी! उसी समय भरतवंशियोंके गौरवरूप भीष्मपितामहको देखनेके लिये सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षि वहाँ आये ।।५।।

पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान् बादरायणः ।
बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ।।६

वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ।।७

अन्ये च मुनयो ब्रह्मन् ब्रह्मरातादयोऽमलाः ।
शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ।।८

तान् समेतान् महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ।
पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ।।९

कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् ।
हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ।।१०

पाण्डुपुत्रानुपासीनान् प्रश्रयप्रेमसङ्गतान्[१] ।
अभ्याचष्टानुरागास्रैरन्धीभूतेन चक्षुषा ।।११

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनन्दनाः ।
जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं[२] विप्रधर्माच्युताश्रयाः ।।१२

संस्थितेऽतिरथे[३] पाण्डौ पृथा बालप्रजा वधूः ।
युष्मत्कृते बहून् क्लेशान् प्राप्ता तोकवती मुहुः ।।१३

सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ।
सपालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ।।१४

यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ।
कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ।।१५

न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन् पुमान् वेद विधित्सितम् ।
यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ।।१६

पर्वत, नारद, धौम्य, भगवान् व्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्योंके साथ परशुरामजी, वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन तथा और भी शुकदेव आदि शुद्ध-हृदय महात्मागण एवं शिष्योंके सहित कश्यप, अंगिरापुत्र बृहस्पति आदि मुनिगण भी वहाँ पधारे ।।६-८।। भीष्मपितामह धर्मको और देश-कालके विभागको—कहाँ किस समय क्या करना चाहिये, इस बातको जानते थे। उन्होंने उन बड़भागी ऋषियोंको सम्मिलित हुआ देखकर उनका यथायोग्य सत्कार किया ।।९।। वे

******ebook converter DEMO Watermarks*******

भगवान् श्रीकृष्णका प्रभाव भी जानते थे। अतः उन्होंने अपनी लीलासे मनुष्यका वेष धारण करके वहाँ बैठे हुए तथा जगदीश्वरके रूपमें हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णकी बाहर तथा भीतर दोनों जगह पूजा की ।।१०।।

पाण्डव बड़े विनय और प्रेमके साथ भीष्म-पितामहके पास बैठ गये। उन्हें देखकर भीष्मपितामहकी आँखें प्रेमके आँसुओंसे भर गयीं। उन्होंने उनसे कहा— ।।११।। 'धर्मपुत्रो! हाय! हाय! यह बड़े कष्ट और अन्यायकी बात है कि तुमलोगोंको ब्राह्मण, धर्म और भगवान्‌के आश्रित रहनेपर भी इतने कष्टके साथ जीना पड़ा, जिसके तुम कदापि योग्य नहीं थे ।।१२।। अतिरथी पाण्डुकी मृत्युके समय तुम्हारी अवस्था बहुत छोटी थी। उन दिनों तुमलोगोंके लिये कुन्तीरानीको और साथ-साथ तुम्हें भी बार-बार बहुत-से कष्ट झेलने पड़े ।।१३।। जिस प्रकार बादल वायुके वशमें रहते हैं, वैसे ही लोकपालोंके सहित सारा संसार कालभगवान्‌के अधीन है। मैं समझता हूँ कि तुमलोगोंके जीवनमें ये जो अप्रिय घटनाएँ घटित हुई हैं, वे सब उन्हींकी लीला हैं ।।१४।। नहीं तो जहाँ साक्षात् धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर हों, गदाधारी भीमसेन और धनुर्धारी अर्जुन रक्षाका काम कर रहे हों, गाण्डीव धनुष हो और स्वयं श्रीकृष्ण सुहृद् हों—भला, वहाँ भी विपत्तिकी सम्भावना है? ।।१५।। ये कालरूप श्रीकृष्ण कब क्या करना चाहते हैं, इस बातको कभी कोई नहीं जानता। बड़े-बड़े ज्ञानी भी इसे जाननेकी इच्छा करके मोहित हो जाते हैं ।।१६।।

तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ ।
तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ।।१७

एष वै भगवान् साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ।
मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ।।१८

अस्यानुभावं भगवान् वेद गुह्यतमं शिवः ।
देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान् कपिलो नृप[१] ।।१९

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् ।
अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ।।२०

सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहङ्कृतेः ।
तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ।।२१

तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपानुकम्पितम्[२] ।
यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ।।२२

******ebook converter DEMO Watermarks*******

भक्त्याऽऽवेश्य मनो यस्मिन् वाचा यन्नाम कीर्तयन् ।
त्यजन् कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः[३] ।।२३

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां
कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लस-
न्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ।।२४

सूत उवाच

युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपञ्जरे ।
अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणां चानुशृण्वताम् ।।२५

युधिष्ठिर! संसारकी ये सब घटनाएँ ईश्वरेच्छाके अधीन हैं। उसीका अनुसरण करके तुम इस अनाथ प्रजाका पालन करो; क्योंकि अब तुम्हीं इसके स्वामी और इसे पालन करनेमें समर्थ हो ।।१७।।

ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। ये सबके आदिकारण और परम पुरुष नारायण हैं। अपनी मायासे लोगोंको मोहित करते हुए ये यदुवंशियोंमें छिपकर लीला कर रहे हैं ।।१८।। इनका प्रभाव अत्यन्त गूढ़ एवं रहस्यमय है। युधिष्ठिर! उसे भगवान् शंकर, देवर्षि नारद और स्वयं भगवान् कपिल ही जानते हैं ।।१९।। जिन्हें तुम अपना ममेरा भाई, प्रिय मित्र और सबसे बड़ा हितू मानते हो तथा जिन्हें तुमने प्रेमवश अपना मन्त्री, दूत और सारथितक बनानेमें संकोच नहीं किया है, वे स्वयं परमात्मा हैं ।।२०।। इन सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वितीय, अहंकाररहित और निष्पाप परमात्मामें उन ऊँचे-नीचे कार्योंके कारण कभी किसी प्रकारकी विषमता नहीं होती ।।२१।। युधिष्ठिर! इस प्रकार सर्वत्र सम होनेपर भी देखो तो सही, वे अपने अनन्यप्रेमी भक्तोंपर कितनी कृपा करते हैं। यही कारण है कि ऐसे समयमें जबकि मैं अपने प्राणोंका त्याग करने जा रहा हूँ, इन भगवान् श्रीकृष्णने मुझे साक्षात् दर्शन दिया है ।।२२।। भगवत्परायण योगी पुरुष भक्तिभावसे इनमें अपना मन लगाकर और वाणीसे इनके नामका कीर्तन करते हुए शरीरका त्याग करते हैं और कामनाओंसे तथा कर्मके बन्धनसे छूट जाते हैं ।।२३।।

वे ही देवदेव भगवान् अपने प्रसन्न हास्य और रक्तकमलके समान अरुण नेत्रोंसे उल्लसित मुखवाले चतुर्भुजरूपसे, जिसका और लोगोंको केवल ध्यानमें दर्शन होता है, तबतक यहीं स्थित रहकर प्रतीक्षा करें जबतक मैं इस शरीरका त्याग न कर दूँ ।।२४।।

सूतजी कहते हैं—युधिष्ठिरने उनकी यह बात सुनकर शरशय्यापर सोये हुए भीष्मपितामहसे बहुत-से ऋषियोंके सामने ही नाना प्रकारके धर्मोंके सम्बन्धमें अनेकों रहस्य पूछे ।।२५।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पुरुषस्वभावविहितान् यथावर्णं यथाश्रमम् ।
वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ।।२६
दानधर्मान् राजधर्मान् मोक्षधर्मान् विभागशः ।
स्त्रीधर्मान् भगवद्धर्मान् समासव्यासयोगतः ।।२७
धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान् यथा मुने ।
नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ।।२८
धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ।
यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ।।२९
तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणी-
विर्मुक्तसङ्गं[१] मन आदिपूरुषे ।
कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे
पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ।।३०
विशुद्धया धारणया हताशुभ[२]-
स्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः ।
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रम-
स्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम् ।।३१

श्रीभीष्म उवाच

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं
प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ।।३२
त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु[३] मेऽनवद्या ।।३३

तब तत्त्ववेत्ता भीष्मपितामहने वर्ण और आश्रमके अनुसार पुरुषके स्वाभाविक धर्म और वैराग्य तथा रागके कारण विभिन्नरूपसे बतलाये हुए निवृत्ति और प्रवृत्तिरूप द्विविध धर्म, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म और भगवद्धर्म—इन सबका अलग-अलग संक्षेप और विस्तारसे वर्णन किया। शौनकजी! इनके साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका तथा इनकी प्राप्तिके साधनोंका अनेकों उपाख्यान और इतिहास सुनाते हुए

******ebook converter DEMO Watermarks*******

विभागशः वर्णन किया ।।२६-२८।। भीष्मपितामह इस प्रकार धर्मका प्रवचन कर ही रहे थे कि वह उत्तरायणका समय आ पहुँचा जिसे मृत्युको अपने अधीन रखनेवाले भगवत्परायण योगीलोग चाहा करते हैं ।।२९।। उस समय हजारों रथियोंके नेता भीष्मपितामहने वाणीका संयम करके मनको सब ओरसे हटाकर अपने सामने स्थित आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्णके सुन्दर चतुर्भुज विग्रहपर उस समय पीताम्बर फहरा रहा था। भीष्मजीकी आँखें उसीपर एकटक लग गयीं ।।३०।। उनको शस्त्रोंकी चोटसे जो पीड़ा हो रही थी वह तो भगवान्‌के दर्शनमात्रसे ही तुरंत दूर हो गयी तथा भगवान्‌की विशुद्ध धारणासे उनके जो कुछ अशुभ शेष थे वे सभी नष्ट हो गये। अब शरीर छोड़नेके समय उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियोंके वृत्तिविलासको रोक दिया और बड़े प्रेमसे भगवान्‌की स्तुति की ।।३१।।

भीष्मजीने कहा—अब मृत्युके समय मैं अपनी यह बुद्धि, जो अनेक प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करनेसे अत्यन्त शुद्ध एवं कामनारहित हो गयी है, यदुवंशशिरोमणि अनन्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित करता हूँ, जो सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही कभी विहार करनेकी—लीला करनेकी इच्छासे प्रकृतिको स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टिपरम्परा चलती है ।।३२।। जिनका शरीर त्रिभुवन-सुन्दर एवं श्याम तमालके समान साँवला है, जिसपर सूर्यरश्मियोंके समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है और कमल-सदृश मुखपर घुँघराली अलकें लटकती रहती हैं उन अर्जुन-सखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट प्रीति हो ।।३३।।

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-
कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये ।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान-
त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ।।३४

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये
निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ।
स्थितवति परसैनिकायुरक्षणा
हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु[१] ।।३५

व्यवहितपृतनामुखं[२] निरीक्ष्य
स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या[३] ।
कुमतिमहरदात्मविद्यया य-
श्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ।।३६

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-
मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-
र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ।।३७

******ebook converter DEMO Watermarks*******

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः
क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं
स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ।।३८

मुझे युद्धके समयकी उनकी वह विलक्षण छबि याद आती है। उनके मुखपर लहराते हुए घुँघराले बाल घोड़ोंकी टॉपकी धूलसे मटमैले हो गये थे और पसीनेकी छोटी-छोटी बूँदें शोभायमान हो रही थीं। मैं अपने तीखे बाणोंसे उनकी त्वचाको बींध रहा था। उन सुन्दर कवचमण्डित भगवान् श्रीकृष्णके प्रति मेरा शरीर, अन्तःकरण और आत्मा समर्पित हो जायँ ।।३४।।

अपने मित्र अर्जुनकी बात सुनकर, जो तुरंत ही पाण्डव-सेना और कौरव-सेनाके बीचमें अपना रथ ले आये और वहाँ स्थित होकर जिन्होंने अपनी दृष्टिसे ही शत्रुपक्षके सैनिकोंकी आयु छीन ली, उन पार्थसखा भगवान् श्रीकृष्णमें मेरी परम प्रीति हो ।।३५।। अर्जुनने जब दूरसे कौरवोंकी सेनाके मुखिया हमलोगोंको देखा तब पाप समझकर वह अपने स्वजनोंके वधसे विमुख हो गया। उस समय जिन्होंने गीताके रूपमें आत्मविद्याका उपदेश करके उसके सामयिक अज्ञानका नाश कर दिया, उन परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरी प्रीति बनी रहे ।।३६।। मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं श्रीकृष्णको शस्त्र ग्रहण कराकर छोड़ूँगा; उसे सत्य एवं ऊँची करनेके लिये उन्होंने अपनी शस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा तोड़ दी। उस समय वे रथसे नीचे कूद पड़े और सिंह जैसे हाथीको मारनेके लिये उसपर टूट पड़ता है, वैसे ही रथका पहिया लेकर मुझपर झपट पड़े। उस समय वे इतने वेगसे दौड़े कि उनके कंधेका दुपट्टा गिर गया और पृथ्वी काँपने लगी ।।३७।।

मुझ आततायीने तीखे बाण मार-मारकर उनके शरीरका कवच तोड़ डाला था, जिससे सारा शरीर लहूलुहान हो रहा था, अर्जुनके रोकनेपर भी वे बलपूर्वक मुझे मारनेके लिये मेरी ओर दौड़े आ थे। वे ही भगवान् श्रीकृष्ण, जो ऐसा करते हुए भी मेरे प्रति अनुग्रह और भक्तवत्सलतासे परिपूर्ण थे, मेरी एकमात्र गति हों—आश्रय हों ।।३८।।

विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे
धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ।
भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षो-
र्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ।।३९
ललितगतिविलासवल्गुहास-
प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः
प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः ।।४०
मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तः-

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ।
अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो
मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ।।४१
तमिममहमजं शरीरभाजां
हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं
समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ।।४२

सूत उवाच

कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः[१] ।
आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ।।४३
सम्पद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ।
सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये[२] ।।४४
तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः[३] ।
शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ।।४५

अर्जुनके रथकी रक्षामें सावधान जिन श्रीकृष्णके बायें हाथमें घोड़ोंकी रास थी और दाहिने हाथमें चाबुक, इन दोनोंकी शोभासे उस समय जिनकी अपूर्व छवि बन गयी थी, तथा महाभारतयुद्धमें मरनेवाले वीर जिनकी इस छविका दर्शन करते रहनेके कारण सारूप्य मोक्षको प्राप्त हो गये, उन्हीं पार्थसारथि भगवान् श्रीकृष्णमें मुझ मरणासन्नकी परम प्रीति हो ।।३९।। जिनकी लटकीली सुन्दर चाल, हाव-भावयुक्त चेष्टाएँ, मधुर मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे अत्यन्त सम्मानित गोपियाँ रासलीलामें उनके अन्तर्धान हो जानेपर प्रेमोन्मादसे मतवाली होकर जिनकी लीलाओंका अनुकरण करके तन्मय हो गयी थीं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा परम प्रेम हो ।।४०।। जिस समय युधिष्ठिरका राजसूययज्ञ हो रहा था, मुनियों और बड़े-बड़े राजाओंसे भरी हुई सभामें सबसे पहले सबकी ओरसे इन्हीं सबके दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्णकी मेरी आँखोंके सामने पूजा हुई थी; वे ही सबके आत्मा प्रभु आज इस मृत्युके समय मेरे सामने खड़े हैं ।।४१।। जैसे एक ही सूर्य अनेक आँखोंसे अनेक रूपोंमें दीखते हैं, वैसे ही अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने ही द्वारा रचित अनेक शरीरधारियोंके हृदयमें अनेक रूपसे जान पड़ते हैं; वास्तवमें तो वे एक और सबके हृदयमें विराजमान हैं ही। उन्हीं इन भगवान् श्रीकृष्णको मैं भेद-भ्रमसे रहित होकर प्राप्त हो गया हूँ ।।४२।।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार भीष्मपितामहने मन, वाणी और दृष्टिकी वृत्तियोंसे आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णमें अपने-आपको लीन कर दिया। उनके प्राण वहीं विलीन हो गये और वे शान्त हो गये ।।४३।। उन्हें अनन्त ब्रह्ममें लीन जानकर सब लोग वैसे ही चुप हो

******ebook converter DEMO Watermarks*******

गये, जैसे दिनके बीत जानेपर पक्षियोंका कलरव शान्त हो जाता है ।।४४।। उस समय देवता और मनुष्य नगारे बजाने लगे। साधुस्वभावके राजा उनकी प्रशंसा करने लगे और आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ।।४५।।

तस्य निर्हरणादीनि सम्परेतस्य भार्गव ।
युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ।।४६

तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः ।
ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान् प्रययुः पुनः ।।४७

ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ।
पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ।।४८

पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ।
चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ।।४९

शौनकजी! युधिष्ठिरने उनके मृत शरीरकी अन्त्येष्टि क्रिया करायी और कुछ समयके लिये वे शोकमग्न हो गये ।।४६।। उस समय मुनियोंने बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णकी उनके रहस्यमय नाम ले-लेकर स्तुति की। इसके पश्चात् अपने हृदयोंको श्रीकृष्णमय बनाकर वे अपने-अपने आश्रमोंको लौट गये ।।४७।। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णके साथ युधिष्ठिर हस्तिनापुर चले आये और उन्होंने वहाँ अपने चाचा धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारीको ढाढस बँधाया ।।४८।। फिर धृतराष्ट्रकी आज्ञा और भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे समर्थ राजा युधिष्ठिर अपने वंशपरम्परागत साम्राज्यका धर्मपूर्वक शासन करने लगे ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भो नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

---

१. प्रा० पा०—सन्नतान्। २. प्रा० पा०—कृच्छ्रं। ३. प्रा० पा०—संस्थिते विरथे।
१. प्रा० पा०—मुनिः। २. प्रा० पा०—भूतानु०। ३. प्रा० पा०—सर्व०।
१. प्रा० पा०—विमुक्तसङ्गो। २. प्रा० पा०—हृता। ३. प्रा० पा०—मति०।
१. प्रा० पा०—नति०। २. प्रा० पा०—व्यवसित०। ३. प्रा० पा०—धर्मबुद्ध्या।
१. प्रा० पा०—मनोवाग्वृत्तिदृष्टिभिः। २. प्रा० पा०—दिवात्यये। ३. प्रा० पा०—दानव०।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ दशमोऽध्यायः
श्रीकृष्णका द्वारका-गमन

शौनक उवाच

हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः
कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ।।१

सूत उवाच

वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं
संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ।
निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो
युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ।।२
निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं
प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ।
शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः
परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः ।।३

शौनकजीने पूछा—धार्मिकशिरोमणि महाराज युधिष्ठिरने अपनी पैतृक सम्पत्तिको हड़प जानेके इच्छुक आततायियोंका नाश करके अपने भाइयोंके साथ किस प्रकारसे राज्य-शासन किया और कौन-कौन-से काम किये, क्योंकि भोगोंमें तो उनकी प्रवृत्ति थी ही नहीं ।।१।।

सूतजी कहते हैं—सम्पूर्ण सृष्टिको उज्जीवित करनेवाले भगवान् श्रीहरि परस्परकी कलहाग्निसे दग्ध कुरुवंशको पुनः अंकुरितकर और युधिष्ठिरको उनके राज्यसिंहासनपर बैठाकर बहुत प्रसन्न हुए ।।२।। भीष्मपितामह और भगवान् श्रीकृष्णके उपदेशोंके श्रवणसे उनके अन्तःकरणमें विज्ञानका उदय हुआ और भ्रान्ति मिट गयी। भगवान्‌के आश्रयमें रहकर वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका इन्द्रके समान शासन करने लगे। भीमसेन आदि उनके भाई पूर्णरूपसे उनकी आज्ञाओंका पालन करते थे ।।३।।

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ।
सिषिचुः स्म व्रजान् गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ।।४
नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ।।५
नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः ।
अजातशत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ।।६
उषित्वा हास्तिनपुरे मासान् कतिपयान् हरिः ।
सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ।।७
आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् ।
आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ।।८
सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा ।
गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ।।९
वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ।
न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ।।१०
सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः ।
कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ।।११
तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन् विरहं कथम् ।
दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ।।१२
सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्भुतचेतसः ।
वीक्षन्तः स्नेहसम्बद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ।।१३
न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते ।
निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ।।१४

युधिष्ठिरके राज्यमें आवश्यकतानुसार यथेष्ट वर्षा होती थी, पृथ्वीमें समस्त अभीष्ट वस्तुएँ पैदा होती थीं, बड़े-बड़े थनोंवाली बहुत-सी गौएँ प्रसन्न रहकर गोशालाओंको दूधसे सींचती रहती थीं ।।४।। नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वनस्पति, लताएँ और ओषधियाँ प्रत्येक ऋतुमें यथेष्टरूपसे अपनी-अपनी वस्तुएँ राजाको देती थीं ।।५।। अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरके राज्यमें किसी प्राणीको कभी भी आधि-व्याधि अथवा दैविक, भौतिक और आत्मिक क्लेश नहीं होते थे ।।६।।

अपने बन्धुओंका शोक मिटानेके लिये और अपनी बहिन सुभद्राकी प्रसन्नताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण कई महीनोंतक हस्तिनापुरमें ही रहे ।।७।। फिर जब उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे द्वारका जानेकी अनुमति माँगी तब राजाने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर स्वीकृति दे दी। भगवान् उनको प्रणाम करके रथपर सवार हुए। कुछ लोगों (समान उम्रवालों)-ने उनका आलिंगन किया और कुछ (छोटी उम्रवालों)-ने प्रणाम ।।८।। उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीमसेन, धौम्य और

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सत्यवती आदि सब मूर्च्छित-से हो गये। वे शार्ङ्गपाणि श्रीकृष्णका विरह नहीं सह सके ।।९-१०।। भगवद्भक्त सत्पुरुषोंके संगसे जिसका दुःसंग छूट गया है, वह विचारशील पुरुष भगवान्‌के मधुर-मनोहर सुयशको एक बार भी सुन लेनेपर फिर उसे छोड़नेकी कल्पना भी नहीं करता। उन्हीं भगवान्‌के दर्शन तथा स्पर्शसे, उनके साथ आलाप करनेसे तथा साथ-ही-साथ सोने, उठने-बैठने और भोजन करनेसे जिनका सम्पूर्ण हृदय उन्हें समर्पित हो चुका था, वे पाण्डव भला, उनका विरह कैसे सह सकते थे ।।११-१२।। उनका चित्त द्रवित हो रहा था, वे सब निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान्‌को देखते हुए स्नेहबन्धनसे बँधकर जहाँ-तहाँ दौड़ रहे थे ।।१३।। भगवान् श्रीकृष्णके घरसे चलते समय उनके बन्धुओंकी स्त्रियोंके नेत्र उत्कण्ठावश उमड़ते हुए आँसुओंसे भर आये; परंतु इस भयसे कि कहीं यात्राके समय अशकुन न हो जाय, उन्होंने बड़ी कठिनाईसे उन्हें रोक लिया ।।१४।।

मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः ।
धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ।।१५

प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ।
ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ।।१६

सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ।
रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ।।१७

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ।
विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ।।१८

अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः ।
नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ।।१९

अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ।
कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ।।२०

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो
य एक आसीदविशेष आत्मनि ।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे
निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ।।२१

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां
स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अनामरूपात्मनि रूपनामनी
विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ।।२२

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो
जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ।
पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना
नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ।।२३

भगवान्‌के प्रस्थानके समय मृदंग, शङ्ख, भेरी, वीणा, ढोल, नरसिंगे, धुन्धुरी, नगारे, घंटे और दुन्दुभियाँ आदि बाजे बजने लगे ।।१५।। भगवान्‌के दर्शनकी लालसासे कुरुवंशकी स्त्रियाँ अटारियोंपर चढ़ गयीं और प्रेम, लज्जा एवं मुसकानसे युक्त चितवनसे भगवान्‌को देखती हुई उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ।।१६।। उस समय भगवान्‌के प्रिय सखा घुँघराले बालोंवाले अर्जुनने अपने प्रियतम श्रीकृष्णका वह श्वेत छत्र, जिसमें मोतियोंकी झालर लटक रही थी और जिसका डंडा रत्नोंका बना हुआ था, अपने हाथमें ले लिया ।।१७।। उद्धव और सात्यकि बड़े विचित्र चँवर डुलाने लगे। मार्गमें भगवान् श्रीकृष्णपर चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी। बड़ी ही मधुर झाँकी थी ।।१८।। जहाँ-तहाँ ब्राह्मणोंके दिये हुए सत्य आशीर्वाद सुनायी पड़ रहे थे। वे सगुण भगवान्‌के तो अनुरूप ही थे; क्योंकि उनमें सब कुछ है, परन्तु निर्गुणके अनुरूप नहीं थे, क्योंकि उनमें कोई प्राकृत गुण नहीं है ।।१९।। हस्तिनापुरकी कुलीन रमणियाँ, जिनका चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें रम गया था, आपसमें ऐसी बातें कर रही थीं, जो सबके कान और मनको आकृष्ट कर रही थीं ।।२०।।

वे आपसमें कह रही थीं—'सखियो! ये वे ही सनातन परम पुरुष हैं, जो प्रलयके समय भी अपने अद्वितीय निर्विशेष स्वरूपमें स्थित रहते हैं। उस समय सृष्टिके मूल ये तीनों गुण भी नहीं रहते। जगदात्मा ईश्वरमें जीव भी लीन हो जाते हैं और महत्तत्त्वादि समस्त शक्तियाँ अपने कारण अव्यक्तमें सो जाती हैं ।।२१।। उन्होंने ही फिर अपने नाम-रूपरहित स्वरूपमें नामरूपके निर्माणकी इच्छा की तथा अपनी काल-शक्तिसे प्रेरित प्रकृतिका, जो कि उनके अंशभूत जीवोंको मोहित कर लेती है और सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त रहती है, अनुसरण किया और व्यवहारके लिये वेदादि शास्त्रोंकी रचना की ।।२२।। इस जगत्‌में जिसके स्वरूपका साक्षात्कार जितेन्द्रिय योगी अपने प्राणोंको वशमें करके भक्तिसे प्रफुल्लित निर्मल हृदयमें किया करते हैं, ये श्रीकृष्ण वही साक्षात् परब्रह्म हैं। वास्तवमें इन्हींकी भक्तिसे अन्तःकरणकी पूर्ण शुद्धि हो सकती है, योगादिके द्वारा नहीं ।।२३।। सखी! वास्तवमें ये वही हैं, जिनकी सुन्दर लीलाओंका गायन वेदोंमें और दूसरे गोपनीय शास्त्रोंमें व्यासादि रहस्यवादी ऋषियोंने किया है—जो एक अद्वितीय ईश्वर हैं और अपनी लीलासे जगत्‌की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं, परन्तु उनमें आसक्त नहीं होते ।।२४।। जब तामसी बुद्धिवाले राजा अधर्मसे अपना पेट पालने लगते हैं तब ये ही सत्त्वगुणको स्वीकारकर ऐश्वर्य, सत्य, ऋत, दया और यश प्रकट करते और संसारके कल्याणके लिये युग-युगमें अनेकों अवतार धारण करते हैं ।।२५।। अहो!

******ebook converter DEMO Watermarks*******

यह यदुवंश परम प्रशंसनीय है; क्योंकि लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जन्म ग्रहण करके इस वंशको सम्मानित किया है। वह पवित्र मधुवन (व्रजमण्डल) भी अत्यन्त धन्य है जिसे इन्होंने अपने शैशव एवं किशोरावस्थामें घूम-फिरकर सुशोभित किया है ।।२६।। बड़े हर्षकी बात है कि द्वारकाने स्वर्गके यशका तिरस्कार करके पृथ्वीके पवित्र यशको बढ़ाया है। क्यों न हो, वहाँकी प्रजा अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको जो बड़े प्रेमसे मन्द-मन्द मुसकराते हुए उन्हें कृपादृष्टिसे देखते हैं, निरन्तर निहारती रहती हैं ।।२७।। सखी! जिनका इन्होंने पाणिग्रहण किया है उन स्त्रियोंने अवश्य ही व्रत, स्नान, हवन आदिके द्वारा इन परमात्माकी आराधना की होगी; क्योंकि वे बार-बार इनकी उस अधर-सुधाका पान करती हैं जिसके स्मरणमात्रसे ही व्रजबालाएँ आनन्दसे मूर्च्छित हो जाया करती थीं ।।२८।। ये स्वयंवरमें शिशुपाल आदि मतवाले राजाओंका मान मर्दन करके जिनको अपने बाहुबलसे हर लाये थे तथा जिनके पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब, आम्ब आदि हैं, वे रुक्मिणी आदि आठों पटरानियाँ और भौमासुरको मारकर लायी हुई जो इनकी हजारों अन्य पत्नियाँ हैं, वे वास्तवमें धन्य हैं। क्योंकि इन सभीने स्वतन्त्रता और पवित्रतासे रहित स्त्रीजीवनको पवित्र और उज्ज्वल बना दिया है। इनकी महिमाका वर्णन कोई क्या करे। इनके स्वामी साक्षात् कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो नाना प्रकारकी प्रिय चेष्टाओं तथा पारिजातादि प्रिय वस्तुओंकी भेंटसे इनके हृदयमें प्रेम एवं आनन्दकी अभिवृद्धि करते हुए कभी एक क्षणके लिये भी इन्हें छोड़कर दूसरी जगह नहीं जाते ।।२९-३०।।

स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो
वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ।
य एक ईशो जगदात्मलीलया
सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ।।२४

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा
जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः[१] किल ।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो
भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ।।२५

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुल-
महो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः
स्वजन्मना[२] चङ्क्रमणेन चाञ्चति ।।२६

अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी
कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं[३]
स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ।।२७

नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः
समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ।
पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहु-
र्व्रजस्त्रियः सम्मुमुहुर्यदाशयाः ।।२८

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे
प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ।
प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा
याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ।।२९

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं
निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ।
यासां गृहात्पुष्करलोचनः पति-
र्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ।।३०

एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम् ।
निरीक्षणेनाभिनन्दन् सस्मितेन ययौ हरिः ।।३१

अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ।
परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ।।३२

अथ दूरागतान् शौरिः कौरवान् विरहातुरान्[१] ।
संन्निवर्त्य दृढं स्निग्धान् प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ।।३३

कुरुजाङ्गलपाञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान् ।
ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान् सारस्वतानथ ।।३४

मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ।
आनर्तान् भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ।।३५

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ।
सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ।।३६

******ebook converter DEMO Watermarks*******

हस्तिनापुरकी स्त्रियाँ इस प्रकार बातचीत कर ही रही थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण मन्द मुसकान और प्रेमपूर्ण चितवनसे उनका अभिनन्दन करते हुए वहाँसे विदा हो गये ।।३१।। अजातशत्रु युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना उनके साथ कर दी; उन्हें स्नेहवश यह शंका हो आयी थी कि कहीं रास्तेमें शत्रु इनपर आक्रमण न कर दें ।।३२।। सुदृढ़ प्रेमके कारण कुरुवंशी पाण्डव भगवान्के साथ बहुत दूरतक चले गये। वे लोग उस समय भावी विरहसे व्याकुल हो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें बहुत आग्रह करके विदा किया और सात्यकि, उद्धव आदि प्रेमी मित्रोंके साथ द्वारकाकी यात्रा की ।।३३।। शौनकजी! वे कुरुजांगल, पांचाल, शूरसेन, यमुनाके तटवर्ती प्रदेश ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, सारस्वत और मरुधन्व देशको पार करके सौवीर और आभीर देशके पश्चिम आनर्त देशमें आये। उस समय अधिक चलनेके कारण भगवान्के रथके घोड़े कुछ थक-से गये थे ।।३४-३५।। मार्गमें स्थान-स्थानपर लोग उपहारादिके द्वारा भगवान्का सम्मान करते, सायंकाल होनेपर वे रथपरसे भूमिपर उतर आते और जलाशयपर जाकर सन्ध्या-वन्दन करते। यह उनकी नित्यचर्या थी ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने श्रीकृष्णद्वारकागमनं नाम दशमोऽध्यायः ।।१०।।

---

१. प्रा० पा०—सात्वतः। २. प्रा० पा०—सुजन्मना। ३. प्रा० पा०—यदनुग्रहोषितं स्मिता०।

१. प्रा० पा०—विदुरान्विताम्।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथैकादशोऽध्यायः
द्वारकामें श्रीकृष्णका राजोचित स्वागत

सूत उवाच

आनर्तान् स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान् स्वकान् ।
दध्मौ दरवरं[१] तेषां विषादं शमयन्निव ।।१
स उच्चकाशे धवलोदरो दरो-
ऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा ।
दाध्मायमानः करकञ्जसम्पुटे
यथाब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः ।।२
तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् ।
प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ।।३
तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवादृताः ।
आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ।।४
प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा ।
पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ।।५
नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं
विरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ।
परायणं क्षेममिहेच्छतां परं
न यत्र कालः प्रभवेत् परः[२] प्रभुः ।।६
भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन
त्वमेव माताथ[३] सुहृत्पतिः पिता ।
त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं
यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ।।७
अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं
त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ।
प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं
पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ।।८

सूतजी कहते हैं—श्रीकृष्णने अपने समृद्ध आनर्त देशमें पहुँचकर वहाँके लोगोंकी

******ebook converter DEMO Watermarks*******

विरह-वेदना बहुत कुछ शान्त करते हुए अपना श्रेष्ठ पांचजन्य नामक शंख बजाया ।।१।। भगवान्‌के होठोंकी लालीसे लाल हुआ वह श्वेतवर्णका शंख बजते समय उनके करकमलोंमें ऐसा शोभायमान हुआ, जैसे लाल रंगके कमलोंपर बैठकर कोई राजहंस उच्चस्वरसे मधुर गान कर रहा हो ।।२।। भगवान्‌के शंखकी वह ध्वनि संसारके भयको भयभीत करनेवाली है। उसे सुनकर सारी प्रजा अपने स्वामी श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे नगरके बाहर निकल आयी ।।३।। भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं, वे अपने आत्मलाभसे ही सदा-सर्वदा पूर्णकाम हैं, फिर भी जैसे लोग बड़े आदरसे भगवान् सूर्यको भी दीपदान करते हैं, वैसे ही अनेक प्रकारकी भेंटोंसे प्रजाने श्रीकृष्णका स्वागत किया ।।४।। सबके मुखकमल प्रेमसे खिल उठे। वे हर्षगद्‌गद वाणीसे सबके सुहृद् और संरक्षक भगवान् श्रीकृष्णकी ठीक वैसे ही स्तुति करने लगे, जैसे बालक अपने पितासे अपनी तोतली बोलीमें बातें करते हैं ।।५।। 'स्वामिन्! हम आपके उन चरणकमलोंको सदा-सर्वदा प्रणाम करते हैं जिनकी वन्दना ब्रह्मा, शंकर और इन्द्रतक करते हैं, जो इस संसारमें परम कल्याण चाहनेवालोंके लिये सर्वोत्तम आश्रय हैं, जिनकी शरण ले लेनेपर परम समर्थ काल भी एक बालतक बाँका नहीं कर सकता ।।६।। विश्वभावन! आप ही हमारे माता, सुहृद्, स्वामी और पिता हैं; आप ही हमारे सद्गुरु और परम आराध्यदेव हैं। आपके चरणोंकी सेवासे हम कृतार्थ हो रहे हैं। आप ही हमारा कल्याण करें ।।७।। अहा! हम आपको पाकर सनाथ हो गये; क्योंकि आपके सर्वसौन्दर्यसार अनुपम रूपका हम दर्शन करते रहते हैं। कितना सुन्दर मुख है। प्रेमपूर्ण मुसकानसे स्निग्ध चितवन! यह दर्शन तो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है ।।८।।

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्
कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया ।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्
रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत[१] ।।९

इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ।
शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन् प्राविशत्पुरीम्[२] ।।१०

मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः ।
आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ।।११

सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ।
उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ।।१२

गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तः प्रतिहतातपाम् ।।१३

सम्मार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् ।
सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षताङ्कुरैः ।।१४

द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः ।
अलङ्कृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः[३] ।।१५

निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः ।
अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ।।१६

कमलनयन श्रीकृष्ण! जब आप अपने बन्धु-बान्धवोंसे मिलनेके लिये हस्तिनापुर अथवा मथुरा (व्रजमण्डल) चले जाते हैं, तब आपके बिना हमारा एक-एक क्षण कोटि-कोटि वर्षोंके समान लम्बा हो जाता है। आपके बिना हमारी दशा वैसी हो जाती है, जैसे सूर्यके बिना आँखोंकी ।।९।। भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण प्रजाके मुखसे ऐसे वचन सुनते हुए और अपनी कृपामयी दृष्टिसे उनपर अनुग्रहकी वृष्टि करते हुए द्वारकामें प्रविष्ट हुए ।।१०।।

जैसे नाग अपनी नगरी भोगवती (पातालपुरी)-की रक्षा करते हैं, वैसे ही भगवान्‌की वह द्वारकापुरी भी मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंसे, जिनके पराक्रमकी तुलना और किसीसे भी नहीं की जा सकती, सुरक्षित थी ।।११।। वह पुरी समस्त ऋतुओंके सम्पूर्ण वैभवसे सम्पन्न एवं पवित्र वृक्षों एवं लताओंके कुंजोंसे युक्त थी। स्थान-स्थानपर फलोंसे पूर्ण उद्यान, पुष्पवाटिकाएँ एवं क्रीडावन थे। बीच-बीचमें कमलयुक्त सरोवर नगरकी शोभा बढ़ा रहे थे ।।१२।। नगरके फाटकों, महलके दरवाजों और सड़कोंपर भगवान्‌के स्वागतार्थ बंदनवारें लगायी गयी थीं। चारों ओर चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं, जिनसे उन स्थानोंपर घामका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था ।।१३।। उसके राजमार्ग, अन्यान्य सड़कें, बाजार और चौक झाड़-बुहारकर सुगन्धित जलसे सींच दिये गये थे और भगवान्‌के स्वागतके लिये बरसाये हुए फल-फूल, अक्षत-अंकुर चारों ओर बिखरे हुए थे ।।१४।। घरोंके प्रत्येक द्वारपर दही, अक्षत, फल, ईख, जलसे भरे हुए कलश, उपहारकी वस्तुएँ और धूप-दीप आदि सजा दिये गये थे ।।१५।।

उदारशिरोमणि वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, अद्भुत पराक्रमी बलराम, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और जाम्बवतीनन्दन साम्बने जब यह सुना कि हमारे प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण आ रहे हैं, तब उनके मनमें इतना आनन्द उमड़ा कि उन लोगोंने अपने सभी आवश्यक कार्य—सोना, बैठना और भोजन आदि छोड़ दिये। प्रेमके आवेगसे उनका हृदय उछलने लगा। वे मंगलशकुनके लिये एक गजराजको आगे करके स्वस्त्ययनपाठ

******ebook converter DEMO Watermarks*******

करते हुए और मांगलिक सामग्रियोंसे सुसज्जित ब्राह्मणोंको साथ लेकर चले। शंख और तुरही आदि बाजे बजने लगे और वेदध्वनि होने लगी। वे सब हर्षित होकर रथोंपर सवार हुए और बड़ी आदरबुद्धिसे भगवान्‌की अगवानी करने चले ।।१६-१८।। साथ ही भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये उत्सुक सैकड़ों श्रेष्ठ वारांगनाएँ, जिनके मुख कपोलोंपर चमचमाते हुए कुण्डलोंकी कान्ति पड़नेसे बड़े सुन्दर दीखते थे, पालकियोंपर चढ़कर भगवान्‌की अगवानीके लिये चलीं ।।१९।। बहुत-से नट, नाचनेवाले, गानेवाले, विरद बखाननेवाले सूत, मागध और वंदीजन भगवान् श्रीकृष्णके अद्‌भुत चरित्रोंका गायन करते हुए चले ।।२०।।

प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो[१] जाम्बवतीसुतः ।
प्रहर्षवेगोच्छशितशयनासनभोजनाः ।।१७

वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः[२] ससुमङ्गलैः ।
शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ।
प्रत्युज्जग्मू[३] रथैर्हृष्टाः[४] प्रणयागतसाध्वसाः ।।१८

वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्‌दर्शनोत्सुकाः ।
लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः[५] ।।१९

नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधवन्दिनः ।
गायन्ति[६]चोत्तमश्लोकचरितान्यद्‌भुतानि च ।।२०

भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् ।
यथाविध्युपसङ्गम्य सर्वेषां मानमादधे ।।२१

प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः[७] ।
आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ।।२२

स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि ।
आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वन्दिभिश्चाविशत्पुरम्[८] ।।२३

राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः[९] कुलस्त्रियः ।
हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ।।२४

******ebook converter DEMO Watermarks*******

नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम् ।
नैव तृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धामाङ्गमच्युतम् ।।२५

भगवान् श्रीकृष्णने बन्धु-बान्धवों, नागरिकों और सेवकोंसे उनकी योग्यताके अनुसार अलग-अलग मिलकर सबका सम्मान किया ।।२१।। किसीको सिर झुकाकर प्रणाम किया, किसीको वाणीसे अभिवादन किया, किसीको हृदयसे लगाया, किसीसे हाथ मिलाया, किसीकी ओर देखकर मुसकरा भर दिया और किसीको केवल प्रेमभरी दृष्टिसे देख लिया। जिसकी जो इच्छा थी, उसे वही वरदान दिया। इस प्रकार चाण्डालपर्यन्त सबको संतुष्ट करके गुरुजन, सपत्नीक ब्राह्मण और वृद्धोंका तथा दूसरे लोगोंका भी आशीर्वाद ग्रहण करते एवं वंदीजनोंसे विरुदावली सुनते हुए सबके साथ भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया ।।२२-२३।।

शौनकजी! जिस समय भगवान् राजमार्गसे जा रहे थे, उस समय द्वारकाकी कुल-कामिनियाँ भगवान्के दर्शनको ही परमानन्द मानकर अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़ गयीं ।।२४।। भगवान्का वक्षःस्थल मूर्तिमान् सौन्दर्यलक्ष्मीका निवासस्थान है। उनका मुखारविन्द नेत्रोंके द्वारा पान करनेके लिये सौन्दर्य-सुधासे भरा हुआ पात्र है। उनकी भुजाएँ लोकपालोंको भी शक्ति देनेवाली हैं। उनके चरणकमल भक्त परमहंसोंके आश्रय हैं। उनके अंग-अंग शोभाके धाम हैं। भगवान्की इस छविको द्वारकावासी नित्य-निरन्तर निहारते रहते हैं, फिर भी उनकी आँखें एक क्षणके लिये भी तृप्त नहीं होतीं ।।२५-२६।। द्वारकाके राजपथपर भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर श्वेतवर्णका छत्र तना हुआ था, श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे, चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी, वे पीताम्बर और वनमाला धारण किये हुए थे। इस समय वे ऐसे शोभायमान हुए, मानो श्याम मेघ एक ही साथ सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रधनुष और बिजलीसे शोभायमान हो ।।२७।।

श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम् ।
बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम् ।।२६

सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः
प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ।
पिशङ्गवासा वनमालया बभौ
घनो यथार्कोडुपचापवैद्युतैः ।।२७

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ।
ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ।।२८

ताः पुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ।।२९

अथाविशत् स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ।
प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ।।३०

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं
विलोक्य सञ्जातमनोमहोत्सवाः ।
उत्तस्थुरारात् सहसाऽऽसनाशयात्[१]
साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ।।३१

भगवान् सबसे पहले अपने माता-पिताके महलमें गये। वहाँ उन्होंने बड़े आनन्दसे देवकी आदि सातों माताओंको चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया और माताओंने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर गोदमें बैठा लिया। स्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगी, उनका हृदय हर्षसे विह्वल हो गया और वे आनन्दके आँसुओंसे उनका अभिषेक करने लगीं ।।२८-२९।। माताओंसे आज्ञा लेकर वे अपने समस्त भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न सर्वश्रेष्ठ भवनमें गये। उसमें सोलह हजार पत्नियोंके अलग-अलग महल थे ।।३०।। अपने प्राणनाथ भगवान् श्रीकृष्णको बहुत दिन बाहर रहनेके बाद घर आया देखकर रानियोंके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें अपने निकट देखकर वे एकाएक ध्यान छोड़कर उठ खड़ी हुईं; उन्होंने केवल आसनको ही नहीं; बल्कि उन नियमोंको* भी त्याग दिया, जिन्हें उन्होंने पतिके प्रवासी होनेपर ग्रहण किया था। उस समय उनके मुख और नेत्रोंमें लज्जा छा गयी ।।३१।। भगवान्‌के प्रति उनका भाव बड़ा ही गम्भीर था। उन्होंने पहले मन-ही-मन, फिर नेत्रोंके द्वारा और तत्पश्चात् पुत्रोंके बहाने शरीरसे उनका आलिंगन किया। शौनकजी! उस समय उनके नेत्रोंमें जो प्रेमके आँसू छलक आये थे, उन्हें संकोचवश उन्होंने बहुत रोका। फिर भी विवशताके कारण वे ढलक ही गये ।।३२।।

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना
दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् ।
निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयो-
र्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ।।३२

यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगत-
स्तथापि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम् ।
पदे पदे का विरमेत तत्पदा-
च्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ।।३३

******ebook converter DEMO Watermarks*******

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मना-
मक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ।
विधाय वैरं श्वसनो यथानलं
मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ।।३४

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ।
रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान् प्राकृतो यथा ।।३५

उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहास-
व्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ।
सम्मुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता
यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ।।३६

तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम् ।
आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ।।३७

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ।
न युज्यते सदाऽऽत्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ।।३८

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण एकान्तमें सर्वदा ही उनके पास रहते थे, तथापि उनके चरण-कमल उन्हें पद-पदपर नये-नये जान पड़ते। भला, स्वभावसे ही चंचल लक्ष्मी जिन्हें एक क्षणके लिये भी कभी नहीं छोड़तीं, उनकी संनिधिसे किस स्त्रीकी तृप्ति हो सकती है ।।३३।। जैसे वायु बाँसोंके संघर्षसे दावानल पैदा करके उन्हें जला देता है, वैसे ही पृथ्वीके भारभूत और शक्तिशाली राजाओंमें परस्पर फूट डालकर बिना शस्त्र ग्रहण किये ही भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें कई अक्षौहिणी सेनासहित एक-दूसरेसे मरवा डाला और उसके बाद आप भी उपराम हो गये ।।३४।।

साक्षात् परमेश्वर ही अपनी लीलासे इस मनुष्यलोकमें अवतीर्ण हुए थे और सहस्रों रमणी-रत्नोंमें रहकर उन्होंने साधारण मनुष्यकी तरह क्रीडा की ।।३५।।

जिनकी निर्मल और मधुर हँसी उनके हृदयके उन्मुक्त भावोंको सूचित करनेवाली थी, जिनकी लजीली चितवनकी चोटसे बेसुध होकर विश्वविजयी कामदेवने भी अपने धनुषका परित्याग कर दिया था—वे कमनीय कामिनियाँ अपने काम-विलासोंसे जिनके मनमें तनिक भी क्षोभ नहीं पैदा कर सकीं, उन असंग भगवान् श्रीकृष्णको संसारके लोग अपने ही समान कर्म करते देखकर आसक्त मनुष्य समझते हैं—यह उनकी मूर्खता है ।।३६-३७।।

यही तो भगवान्की भगवत्ता है कि वे प्रकृतिमें स्थित होकर भी उसके गुणोंसे

******ebook converter DEMO Watermarks*******

कभी लिप्त नहीं होते, जैसे भगवान्‌की शरणागत बुद्धि अपनेमें रहनेवाले प्राकृत गुणोंसे लिप्त नहीं होती ।।३८।।

तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः ।

अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ।।३९

वे मूढ़ स्त्रियाँ भी श्रीकृष्णको अपना एकान्तसेवी, स्त्रीपरायण भक्त ही समझ बैठी थीं; क्योंकि वे अपने स्वामीके ऐश्वर्यको नहीं जानती थीं—ठीक वैसे ही जैसे अहंकारकी वृत्तियाँ ईश्वरको अपने धर्मसे युक्त मानती हैं ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने कृष्णद्वारकाप्रवेशो नामैकादशोऽध्यायः ।।११।।

---

१. प्रा० पा०—शङ्खवरं। २. परः प्रभो। ३. प्रा० पा०—मातात्मसुहृत्पिता पतिः।

१. प्रा० पा०—प्राचीन प्रतिमें नवम श्लोकके बाद एक श्लोक अधिक है, जो इस प्रकार है—'कथं वयं नाथ चिरोषिते त्वयि प्रसन्नदृष्ट्याखिलतापशोषणम् । जीवाम ते सुन्दरहासशोभितमपश्यमाना वदनं मनोहरम् ।।'

२. प्रा० पा०—पुरम्। ३. प्रा० पा०—दीपधूपकैः।

१. प्रा० पा०—चारुसाम्बगदादयः। २. प्रा० पा०—ब्राह्मणैस्तु सुमङ्गलैः। ३. प्रा० पा०—प्रतिजग्मू। ४. प्रा० पा०—रथैर्ब्रह्मन्। ५. प्रा० पा०—निर्भिन्न०। ६. प्रा० पा०—गायन्त उत्तमश्लोक०। ७. प्रा० पा०—बान्धवानथ आश्लिष्य। ८. प्रा० पा०—पुरीम्। ९. प्रा० पा०—द्वारकायां।

१. प्रा० पा०—सहसासनाश्रयात्सकञ्चुका व्रीडित० ।

* जिस स्त्रीका पति विदेश गया हो, उसे इन नियमोंका पालन करना चाहिये ।

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ।।

जिसका पति परदेश गया हो, उस स्त्रीको खेल-कूद, शृंगार, सामाजिक उत्सवोंमें भाग लेना, हँसी-मजाक करना और पराये घर जाना—इन पाँच कामोंको त्याग देना चाहिये। (याज्ञवल्क्यस्मृति)

******ebook converter DEMO Watermarks*******

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ द्वादशोऽध्यायः
परीक्षित्‌का जन्म

शौनक उवाच

अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन[१] ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा ।
उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ।।१

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः ।
निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान् यथा ।।२

तदिदं श्रोतुमिच्छामो गदितुं यदि मन्यसे ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ।।३

सूत उवाच

अपीपलद्धर्मराजः[२] पितृवद् रञ्जयन् प्रजाः ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादाब्जसेवया[३] ।।४

सम्पदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही ।
जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम् ।।५

किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः[४] ।
अधिजह्युर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ।।६

शौनकजीने कहा—अश्वत्थामाने जो अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मास्त्र चलाया था, उससे उत्तराका गर्भ नष्ट हो गया था; परंतु भगवान्‌ने उसे पुनः जीवित कर दिया ।।१।। उस गर्भसे पैदा हुए महाज्ञानी महात्मा परीक्षित्‌के, जिन्हें शुकदेवजीने ज्ञानोपदेश दिया था, जन्म, कर्म, मृत्यु और उसके बाद जो गति उन्हें प्राप्त हुई, वह सब यदि आप ठीक समझें तो कहें; हमलोग बड़ी श्रद्धाके साथ सुनना चाहते हैं ।।२-३।।

सूतजीने कहा—धर्मराज युधिष्ठिर अपनी प्रजाको प्रसन्न रखते हुए पिताके समान उसका पालन करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंके सेवनसे वे समस्त भोगोंसे निःस्पृह हो गये थे ।।४।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

शौनकादि ऋषियो! उनके पास अतुल सम्पत्ति थी, उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ किये थे तथा उनके फलस्वरूप श्रेष्ठ लोकोंका अधिकार प्राप्त किया था। उनकी रानियाँ और भाई अनुकूल थे, सारी पृथ्वी उनकी थी, वे जम्बूद्वीपके स्वामी थे और उनकी कीर्ति स्वर्गतक फैली हुई थी ।।५।। उनके पास भोगकी ऐसी सामग्री थी, जिसके लिये देवतालोग भी लालायित रहते हैं। परन्तु जैसे भूखे मनुष्यको भोजनके अतिरिक्त दूसरे पदार्थ नहीं सुहाते, वैसे ही उन्हें भगवान्‌के सिवा दूसरी कोई वस्तु सुख नहीं देती थी ।।६।।

मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन ।
ददर्श पुरुषं कञ्चिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ।।७

अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ।
अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ।।८

श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम् ।
क्षतजाक्षं[१] गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ।
परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहुः ।।९

अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ।
विधमन्तं संनिकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ।।१०

विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब् विभुः ।
मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवान्तर्दधे हरिः ।।११

ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये ।
जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ।।१२

तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः[२] ।
जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ।।१३

हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान्[३] ।
प्रादात्स्वन्नं[४] च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ।।१४

शौनकजी! उत्तराके गर्भमें स्थित वह वीर शिशु परीक्षित् जब अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे जलने लगा, तब उसने देखा कि उसकी आँखोंके सामने एक ज्योतिर्मय पुरुष है ।।७।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

वह देखनेमें तो अँगूठेभरका है, परन्तु उसका स्वरूप बहुत ही निर्मल है। अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर है, बिजलीके समान चमकता हुआ पीताम्बर धारण किये हुए है, सिरपर सोनेका मुकुट झिलमिला रहा है। उस निर्विकार पुरुषके बड़ी ही सुन्दर लम्बी-लम्बी चार भुजाएँ हैं। कानोंमें तपाये हुए स्वर्णके सुन्दर कुण्डल हैं, आँखोंमें लालिमा है, हाथमें लूकेके समान जलती हुई गदा लेकर उसे बार-बार घुमाता जा रहा है और स्वयं शिशुके चारों ओर घूम रहा है ।।८-९।। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहरेको भगा देते हैं, वैसे ही वह उस गदाके द्वारा ब्रह्मास्त्रके तेजको शान्त करता जा रहा था। उस पुरुषको अपने समीप देखकर वह गर्भस्थ शिशु सोचने लगा कि यह कौन है ।।१०।। इस प्रकार उस दस मासके गर्भस्थ शिशुके सामने ही धर्मरक्षक अप्रमेय भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मास्त्रके तेजको शान्त करके वहीं अन्तर्धान हो गये ।।११।।

तदनन्तर अनुकूल ग्रहोंके उदयसे युक्त समस्त सद्गुणोंको विकसित करनेवाले शुभ समयमें पाण्डुके वंशधर परीक्षित्का जन्म हुआ। जन्मके समय ही वह बालक इतना तेजस्वी दीख पड़ता था, मानो स्वयं पाण्डुने ही फिरसे जन्म लिया हो ।।१२।। पौत्रके जन्मकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर मनमें बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने धौम्य, कृपाचार्य आदि ब्राह्मणोंसे मंगलवाचन और जातकर्म-संस्कार करवाये ।।१३।। महाराज युधिष्ठिर दानके योग्य समयको जानते थे। उन्होंने प्रजातीर्थ* नामक कालमें अर्थात् नाल काटनेके पहले ही ब्राह्मणोंको सुवर्ण, गौएँ, पृथ्वी, गाँव, उत्तम जातिके हाथी-घोड़े और उत्तम अन्नका दान दिया ।।१४।।

तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयान्वितम् ।
एष ह्यस्मिन् प्रजातन्तौ पुरूणां पौरवर्षभ[१] ।।१५
दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ।
रातो वोऽनुग्रहार्थाय[२] विष्णुना प्रभविष्णुना ।।१६
तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ।
भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ।।१७

युधिष्ठिर[३] उवाच

अप्येष वंश्यान् राजर्षीन्[४] पुण्यश्लोकान् महात्मनः ।
अनुवर्तिता स्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ।।१८

ब्राह्मणा ऊचुः

पार्थ प्रजाविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः ।
ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा ।।१९
एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

यशो[५] वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ।।२०
धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः ।
हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ।।२१
मृगेन्द्र इव विक्रान्तो निषेव्यो हिमवानिव ।
तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णुः पितराविव ।।२२
पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ।
आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ।।२३
सर्वसद्गुणमाहात्म्ये[६] एष कृष्णमनुव्रतः ।
रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ।।२४
धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः[७] ।
आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ।।२५
राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् ।
निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ।।२६

ब्राह्मणोंने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त विनयी युधिष्ठिरसे कहा—'पुरुवंशशिरोमणे! कालकी दुर्निवार गतिसे यह पवित्र पुरुवंश मिटना ही चाहता था, परन्तु तुमलोगोंपर कृपा करनेके लिये भगवान् विष्णुने यह बालक देकर इसकी रक्षा कर दी ।।१५-१६।। इसीलिये इसका नाम विष्णुरात होगा। निस्सन्देह यह बालक संसारमें बड़ा यशस्वी, भगवान्का परम भक्त और महापुरुष होगा' ।।१७।।

युधिष्ठिरने कहा—महात्माओ! यह बालक क्या अपने उज्ज्वल यशसे हमारे वंशके पवित्रकीर्ति महात्मा राजर्षियोंका अनुसरण करेगा? ।।१८।।

ब्राह्मणोंने कहा—धर्मराज! यह मनुपुत्र इक्ष्वाकुके समान अपनी प्रजाका पालन करेगा तथा दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामके समान ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ होगा ।।१९।। यह उशीनरनरेश शिबिके समान दाता और शरणागतवत्सल होगा तथा याज्ञिकोंमें दुष्यन्तके पुत्र भरतके समान अपने वंशका यश फैलायेगा ।।२०।। धनुर्धरोंमें यह सहस्रबाहु अर्जुन और अपने दादा पार्थके समान अग्रगण्य होगा। यह अग्निके समान दुर्धर्ष और समुद्रके समान दुस्तर होगा ।।२१।। यह सिंहके समान पराक्रमी, हिमाचलकी तरह आश्रय लेनेयोग्य, पृथ्वीके सदृश तितिक्षु और माता-पिताके समान सहनशील होगा ।।२२।। इसमें पितामह ब्रह्माके समान समता रहेगी, भगवान् शंकरकी तरह यह कृपालु होगा और सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेमें यह लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके समान होगा ।।२३।। यह समस्त सद्गुणोंकी महिमा धारण करनेमें श्रीकृष्णका अनुयायी होगा, रन्तिदेवके समान उदार होगा और ययातिके समान धार्मिक होगा ।।२४।। धैर्यमें बलिके समान और भगवान् श्रीकृष्णके प्रति दृढ़ निष्ठामें यह प्रह्लादके समान होगा। यह बहुतसे अश्वमेधयज्ञोंका करनेवाला और वृद्धोंका सेवक

******ebook converter DEMO Watermarks*******

होगा ।।२५।। इसके पुत्र राजर्षि होंगे। मर्यादाका उल्लंघन करनेवालोंको यह दण्ड देगा। यह पृथ्वीमाता और धर्मकी रक्षाके लिये कलियुगका भी दमन करेगा ।।२६।। ब्राह्मणकुमारके शापसे तक्षकके द्वारा अपनी मृत्यु सुनकर यह सबकी आसक्ति छोड़ देगा और भगवान्‌के चरणोंकी शरण लेगा ।।२७।। राजन्! व्यासनन्दन शुकदेवजीसे यह आत्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करेगा और अन्तमें गंगातटपर अपने शरीरको त्यागकर निश्चय ही अभयपद प्राप्त करेगा ।।२८।।

तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् ।
प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः पदं हरेः ।।२७
जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ ।
हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्यद्धाकुतोभयम् ।।२८
इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः ।
लब्धापचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ।।२९
स एष लोके विख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः ।
गर्भे[१] दृष्टमनुध्यायन् परीक्षेत नरेष्विह ।।३०
स राजपुत्रो ववृधे आशु शुक्ल इवोडुपः ।
आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ।।३१
यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया ।
राजालब्धधनो दध्यावन्यत्र[२] करदण्डयोः ।।३२
तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः ।
धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः ।।३३
तेन सम्भृतसम्भारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो[३] यज्ञैः समयजद्धरिम् ।।३४
आहूतो भगवान् राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् ।
उवास कतिचिन्मासान् सुहृदां प्रियकाम्यया ।।३५

ज्यौतिषशास्त्रके विशेषज्ञ ब्राह्मण राजा युधिष्ठिरको इस प्रकार बालकके जन्मलग्नका फल बतलाकर और भेंट-पूजा लेकर अपने-अपने घर चले गये ।।२९।। वही यह बालक संसारमें परीक्षित्‌के नामसे प्रसिद्ध हुआ; क्योंकि वह समर्थ बालक गर्भमें जिस पुरुषका दर्शन पा चुका था, उसका स्मरण करता हुआ लोगोंमें उसीकी परीक्षा करता रहता था कि देखें इनमेंसे कौन-सा वह है ।।३०।। जैसे शुक्लपक्षमें दिन-प्रतिदिन चन्द्रमा अपनी कलाओंसे पूर्ण होता हुआ बढ़ता है, वैसे ही वह राजकुमार भी अपने गुरुजनोंके लालन-पालनसे क्रमशः अनुदिन बढ़ता हुआ शीघ्र ही सयाना हो गया ।।३१।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

इसी समय स्वजनोंके वधका प्रायश्चित्त करनेके लिये राजा युधिष्ठिरने अश्वमेधयज्ञके द्वारा भगवान्‌की आराधना करनेका विचार किया, परन्तु प्रजासे वसूल किये हुए कर और दण्ड (जुर्माने)-की रकमके अतिरिक्त और धन न होनेके कारण वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये ।।३२।। उनका अभिप्राय समझकर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे उनके भाई उत्तर दिशामें राजा मरुत्त और ब्राह्मणोंद्वारा छोड़ा हुआ* बहुत-सा धन ले आये ।।३३।। उससे यज्ञकी सामग्री एकत्र करके धर्मभीरु महाराज युधिष्ठिरने तीन अश्वमेधयज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा की ।।३४।। युधिष्ठिरके निमन्त्रणसे पधारे हुए भगवान् ब्राह्मणोंद्वारा उनका यज्ञ सम्पन्न कराकर अपने सुहृद् पाण्डवोंकी प्रसन्नताके लिये कई महीनोंतक वहीं रहे ।।३५।।

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः ।

ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन् सार्जुनो यदुभिर्वृतः ।।३६

शौनकजी! इसके बाद भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिर और द्रौपदीसे अनुमति लेकर अर्जुनके साथ यदुवंशियोंसे घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने परीक्षिज्जन्माद्युत्कर्षो नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

---

१. प्रा० पा०—अश्वत्थाम्ना विसृष्टेन। २. प्रा० पा०—अपालयद्। ३. प्रा० पा०—पादानुसेवया। ४. प्रा० पा०—द्विज।

१. प्रा० पा०—शङ्खचक्रगदा०। २. प्रा० पा०—विप्रैर्जातक्रियादिभिः। ३. प्रा० पा०—हयांश्च नृपति०। ४. प्रा० पा०—प्रादात्स्वयं च ।

* नालच्छेदनसे पहले सूतक नहीं होता, जैसे कहा है—'यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते ।।' इसी समयको 'प्रजातीर्थ' काल कहते हैं। इस समय जो दान दिया जाता है, वह अक्षय होता है। स्मृति कहती है—'पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम् ।' अर्थात् 'पुत्रोत्पत्ति' और व्यतीपातके समय दिया हुआ दान अक्षय होता है।'

१. प्रा० पा०—पौरवर्षभः। २. प्रा० पा०—यो। ३. प्रा० पा०—राजोवाच। ४. प्रा० पा०—राजर्षिः। ५. प्रा० पा०—यथोचितविधाता च दौष्यन्ति। ६. प्रा० पा०—माहात्म्यमेष कृष्ण०। ७. प्रा० पा०—निर्भरः।

१. प्रा० पा०—पूर्वदृष्ट०। २. दध्यौ नान्यत्र। ३. प्रा० पा०—त्रिभी राजा यज्ञैः ।

* पूर्वकालमें महाराज मरुत्तने ऐसा यज्ञ किया था, जिसमें सभी पात्र सुवर्णके थे। यज्ञ समाप्त हो जानेपर उन्होंने वे पात्र उत्तर दिशामें फिंकवा दिये थे। उन्होंने ब्राह्मणोंको भी इतना धन दिया कि वे उसे ले जा न सके; वे भी उसे उत्तर दिशामें ही छोड़कर चले आये। परित्यक्त

******ebook converter DEMO Watermarks*******

धनपर राजाका अधिकार होता है, इसलिये उस धनको मँगवाकर भगवान्‌ने युधिष्ठिरका यज्ञ कराया।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ त्रयोदशोऽध्यायः
विदुरजीके उपदेशसे धृतराष्ट्र और गान्धारीका वनमें जाना

सूत उवाच

विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ।
ज्ञात्वागाद्धास्तिनपुरं तयावाप्तविवित्सितः ।।१
यावतः कृतवान् प्रश्नान् क्षत्ता कौषारवाग्रतः ।
जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ।।२
तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः ।
धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ।।३
गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन् सुभद्रा चोत्तरा कृपी ।
अन्याश्च जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ।।४
प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् ।
अभिसङ्गम्य विधिवत् परिष्वङ्गाभिवादनैः ।।५
मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः ।
राजा तमर्हयाञ्चक्रे कृतासनपरिग्रहम् ।।६
तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमासीनं सुखमासने ।
प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां[१] च शृण्वताम् ।।७

सूतजी कहते हैं—विदुरजी तीर्थयात्रामें महर्षि मैत्रेयसे आत्माका ज्ञान प्राप्त करके हस्तिनापुर लौट आये। उन्हें जो कुछ जाननेकी इच्छा थी वह पूर्ण हो गयी थी ।।१।।

विदुरजीने मैत्रेय ऋषिसे जितने प्रश्न किये थे, उनका उत्तर सुननेके पहले ही श्रीकृष्णमें अनन्य भक्ति हो जानेके कारण वे उत्तर सुननेसे उपराम हो गये ।।२।।

शौनकजी! अपने चाचा विदुरजीको आया देख धर्मराज युधिष्ठिर, उनके चारों भाई, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, संजय, कृपाचार्य, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी तथा पाण्डव-परिवारके अन्य सभी नर-नारी और अपने पुत्रोंसहित दूसरी स्त्रियाँ—सब-के-सब बड़ी प्रसन्नतासे, मानो मृत शरीरमें प्राण आ गया हो—ऐसा अनुभव करते हुए उनकी अगवानीके लिये सामने गये। यथायोग्य आलिंगन और प्रणामादिके द्वारा सब उनसे मिले और विरहजनित उत्कण्ठासे कातर होकर सबने प्रेमके आँसू बहाये। युधिष्ठिरने आसनपर बैठाकर उनका यथोचित सत्कार किया ।।३-६।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

जब वे भोजन एवं विश्राम करके सुखपूर्वक आसनपर बैठे थे तब युधिष्ठिरने विनयसे झुककर सबके सामने ही उनसे कहा ।।७।।

युधिष्ठिर उवाच

अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् ।
विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ।।८
कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमण्डलम् ।
तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ।।९
भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ।।१०
अपि नः सृहृदस्तात बान्धवाः कृष्णदेवताः ।
दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते ।।११
इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत् समवर्णयत् ।
यथानुभूतं क्रमशो[१] विना यदुकुलक्षयम् ।।१२
नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् ।
नावेदयत्[२] सकरुणो दुःखितान् द्रष्टुमक्षमः ।।१३
कञ्चित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम्[३] ।
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ।।१४
अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु ।
यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ।।१५

युधिष्ठिरने कहा—चाचाजी! जैसे पक्षी अपने अंडोंको पंखोंकी छायाके नीचे रखकर उन्हें सेते और बढ़ाते हैं, वैसे ही आपने अत्यन्त वात्सल्यसे अपने करकमलोंकी छत्रछायामें हमलोगोंको पाला-पोसा है। बार-बार आपने हमें और हमारी माताको विषदान और लाक्षागृहके दाह आदि विपत्तियोंसे बचाया है। क्या आप कभी हम लोगोंकी भी याद करते रहे हैं? ।।८।। आपने पृथ्वीपर विचरण करते समय किस वृत्तिसे जीवन-निर्वाह किया? आपने पृथ्वीतलपर किन-किन तीर्थों और मुख्य क्षेत्रोंका सेवन किया? ।।९।। प्रभो! आप-जैसे भगवान्‌के प्यारे भक्त स्वयं ही तीर्थस्वरूप होते हैं। आपलोग अपने हृदयमें विराजमान भगवान्‌के द्वारा तीर्थोंको भी महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं ।।१०।। चाचाजी! आप तीर्थयात्रा करते हुए द्वारका भी अवश्य ही गये होंगे। वहाँ हमारे सुहृद् एवं भाई-बन्धु यादवलोग, जिनके एकमात्र आराध्यदेव श्रीकृष्ण हैं, अपनी नगरीमें सुखसे तो हैं न? आपने यदि जाकर देखा नहीं होगा तो सुना तो

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अवश्य ही होगा ।।११।।

युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर विदुरजीने तीर्थों और यदुवंशियोंके सम्बन्धमें जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया था, सब क्रमसे बतला दिया, केवल यदुवंशके विनाशकी बात नहीं कही ।।१२।। करुणहृदय विदुरजी पाण्डवोंको दुःखी नहीं देख सकते थे। इसलिये उन्होंने यह अप्रिय एवं असह्य घटना पाण्डवोंको नहीं सुनायी; क्योंकि वह तो स्वयं ही प्रकट होनेवाली थी ।।१३।।

पाण्डव विदुरजीका देवताके समान सेवा-सत्कार करते थे। वे कुछ दिनोंतक अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रकी कल्याणकामनासे सब लोगोंको प्रसन्न करते हुए सुखपूर्वक हस्तिनापुरमें ही रहे ।।१४।। विदुरजी तो साक्षात् धर्मराज थे, माण्डव्य ऋषिके शापसे ये सौ वर्षके लिये शूद्र बन गये थे*। इतने दिनोंतक यमराजके पदपर अर्यमा थे और वही पापियोंको उचित दण्ड देते थे ।।१५।। राज्य प्राप्त हो जानेपर अपने लोकपालों-सरीखे भाइयोंके साथ राजा युधिष्ठिर वंशधर परीक्षित्को देखकर अपनी अतुल सम्पत्तिसे आनन्दित रहने लगे ।।१६।। इस प्रकार पाण्डव गृहस्थके काम-धंधोंमें रम गये और उन्हींके पीछे एक प्रकारसे यह बात भूल गये कि अनजानमें ही हमारा जीवन मृत्युकी ओर जा रहा है; अब देखते-देखते उनके सामने वह समय आ पहुँचा जिसे कोई टाल नहीं सकता ।।१७।।

युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरम्[१] ।
भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ।।१६
एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया ।
अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ।।१७
विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ।
राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ।।१८
प्रतिक्रिया[२] न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ।
स एव भगवान् कालः सर्वेषां नः[३] समागतः ।।१९
येन चैवाभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि ।
जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ।।२०
पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ।
आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ।।२१
अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान् ।
भीमापवर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ।।२२
अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः ।
हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ।।२३

******ebook converter DEMO Watermarks*******

तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः ।
परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ।।२४

परन्तु विदुरजीने कालकी गति जानकर अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रसे कहा —'महाराज! देखिये, अब बड़ा भयंकर समय आ गया है, झटपट यहाँसे निकल चलिये ।।१८।। हम सब लोगोंके सिरपर वह सर्वसमर्थ काल मँडराने लगा है, जिसके टालनेका कहीं भी कोई उपाय नहीं है ।।१९।। कालके वशीभूत होकर जीवका अपने प्रियतम प्राणोंसे भी बात-की-बातमें वियोग हो जाता है; फिर धन, जन आदि दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या है ।।२०।। आपके चाचा, ताऊ, भाई, सगे-सम्बन्धी और पुत्र—सभी मारे गये, आपकी उम्र भी ढल चुकी, शरीर बुढ़ापेका शिकार हो गया, आप पराये घरमें पड़े हुए हैं ।।२१।। ओह! इस प्राणीको जीवित रहनेकी कितनी प्रबल इच्छा होती है! इसीके कारण तो आप भीमका दिया हुआ टुकड़ा खाकर कुत्तेका-सा जीवन बिता रहे हैं ।।२२।। जिनको आपने आगमें जलानेकी चेष्टा की, विष देकर मार डालना चाहा, भरी सभामें जिनकी विवाहिता पत्नीको अपमानित किया, जिनकी भूमि और धन छीन लिये, उन्हींके अन्नसे पले हुए प्राणोंको रखनेमें क्या गौरव है ।।२३।। आपके अज्ञानकी हद हो गयी कि अब भी आप जीना चाहते हैं! परन्तु आपके चाहनेसे क्या होगा; पुराने वस्त्रकी तरह बुढ़ापेसे गला हुआ आपका शरीर आपके न चाहनेपर भी क्षीण हुआ जा रहा है ।।२४।। अब इस शरीरसे आपका कोई स्वार्थ सधनेवाला नहीं है; इसमें फँसिये मत, इसकी ममताका बन्धन काट डालिये। जो संसारके सम्बन्धियोंसे अलग रहकर उनके अनजानमें अपने शरीरका त्याग करता है, वही धीर कहा गया है ।।२५।। चाहे अपनी समझसे हो या दूसरेके समझानेसे—जो इस संसारको दुःखरूप समझकर इससे विरक्त हो जाता है और अपने अन्तःकरणको वशमें करके हृदयमें भगवान्‌को धारणकर संन्यासके लिये घरसे निकल पड़ता है, वही उत्तम मनुष्य है ।।२६।। इसके आगे जो समय आनेवाला है, वह प्रायः मनुष्योंके गुणोंको घटानेवाला होगा; इसलिये आप अपने कुटुम्बियोंसे छिपकर उत्तराखण्डमें चले जाइये' ।।२७।।

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः ।
अविज्ञातगतिर्जह्यात्[१] स वै धीर उदाहृतः ।।२५
यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् ।
हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ।।२६
अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् ।
इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ।।२७
एवं राजा विदुरेणानुजेन
प्रज्ञाचक्षुर्बोधित आजमीढः ।
छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो

******ebook converter DEMO Watermarks*******

निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ।।२८

पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री
पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ।
हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं
मनस्विनामिव सत्सम्प्रहारः ।।२९

अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्नि-
र्विप्रान् नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः[२] ।
गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय
न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ।।३०

तत्र सञ्जयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः ।
गावल्गणे क्व नस्तातो[३] वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ।।३१

अम्बा च हतपुत्राऽऽर्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत्[४] ।
अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः स भार्यया ।
आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत् ।।३२

जब छोटे भाई विदुरने अंधे राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार समझाया, तब उनकी प्रज्ञाके नेत्र खुल गये; वे भाई-बन्धुओंके सुदृढ़ स्नेह-पाशोंको काटकर अपने छोटे भाई विदुरके दिखलाये हुए मार्गसे निकल पड़े ।।२८।। जब परम पतिव्रता सुबलनन्दिनी गान्धारीने देखा कि मेरे पतिदेव तो उस हिमालयकी यात्रा कर रहे हैं जो संन्यासियोंको वैसा ही सुख देता है जैसा वीर पुरुषोंको लड़ाईके मैदानमें अपने शत्रुके द्वारा किये हुए न्यायोचित प्रहारसे होता है। तब वे भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ीं ।।२९।।

अजातशत्रु युधिष्ठिरने प्रातःकाल सन्ध्या-वन्दन तथा अग्निहोत्र करके ब्राह्मणोंको नमस्कार किया और उन्हें तिल, गौ, भूमि और सुवर्णका दान दिया। इसके बाद जब वे गुरुजनोंकी चरणवन्दनाके लिये राजमहलमें गये, तब उन्हें धृतराष्ट्र, विदुर तथा गान्धारीके दर्शन नहीं हुए ।।३०।। युधिष्ठिरने उद्विग्नचित्त होकर वहीं बैठे हुए संजयसे पूछा—'संजय! मेरे वे वृद्ध और नेत्रहीन पिता धृतराष्ट्र कहाँ हैं? ।।३१।। पुत्रशोकसे पीड़ित दुखिया माता गान्धारी और मेरे परम हितैषी चाचा विदुरजी कहाँ चले गये? ताऊजी अपने पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेसे दुःखी थे। मैं बड़ा मन्दबुद्धि हूँ—कहीं मुझसे किसी अपराधकी आशंका करके वे माता गान्धारीसहित गंगाजीमें तो नहीं कूद पड़े ।।३२।।

पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् ।
अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गताविताः ।।३३

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सूत उवाच

कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः ।
आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ।।३४
विमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ।
अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ।।३५

सञ्जय उवाच

नाहं[१] वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनन्दन ।
गान्धार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ।।३६
अथाजगाम भगवान् नारदः सहतुम्बुरुः ।
प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ।।३७

युधिष्ठिर उवाच

नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन् क्व गतावितः ।
अम्बा वा हतपुत्राऽऽर्ता क्व गता च तपस्विनी ।।३८
कर्णधार इवापारे भगवान् पारदर्शकः ।
अथाबभाषे भगवान् नारदो मुनिसत्तमः ।।३९
मा कञ्चन शुचो राजन् यदीश्वरवशं जगत् ।
लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः ।
स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ।।४०

जब हमारे पिता पाण्डुकी मृत्यु हो गयी थी और हमलोग नन्हे-नन्हे बच्चे थे, तब इन्हीं दोनों चाचाओंने बड़े-बड़े दुःखोंसे हमें बचाया था। वे हमपर बड़ा ही प्रेम रखते थे। हाय! वे यहाँसे कहाँ चले गये?' ।।३३।।

सूतजी कहते हैं—संजय अपने स्वामी धृतराष्ट्रको न पाकर कृपा और स्नेहकी विकलतासे अत्यन्त पीड़ित और विरहातुर हो रहे थे। वे युधिष्ठिरको कुछ उत्तर न दे सके ।।३४।। फिर धीरे-धीरे बुद्धिके द्वारा उन्होंने अपने चित्तको स्थिर किया, हाथोंसे आँखोंके आसूँ पोंछे और अपने स्वामी धृतराष्ट्रके चरणोंका स्मरण करते हुए युधिष्ठिरसे कहा ।।३५।।

संजय बोले—कुलनन्दन! मुझे आपके दोनों चाचा और गान्धारीके संकल्पका

******ebook converter DEMO Watermarks*******

कुछ भी पता नहीं है। महाबाहो! मुझे तो उन महात्माओंने ठग लिया ।।३६।। संजय इस प्रकार कह ही रहे थे कि तुम्बुरुके साथ देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। महाराज युधिष्ठिरने भाइयोंसहित उठकर उन्हें प्रणाम किया और उनका सम्मान करते हुए बोले — ।।३७।।

युधिष्ठिरने कहा—'भगवन्! मुझे अपने दोनों चाचाओंका पता नहीं लग रहा है; न जाने वे दोनों और पुत्र-शोकसे व्याकुल तपस्विनी माता गान्धारी यहाँसे कहाँ चले गये ।।३८।। भगवन्! अपार समुद्रमें कर्णधारके समान आप ही हमारे पारदर्शक हैं।' तब भगवान्‌के परमभक्त भगवन्मय देवर्षि नारदने कहा— ।।३९।। 'धर्मराज! तुम किसीके लिये शोक मत करो; क्योंकि यह सारा जगत् ईश्वरके वशमें है। सारे लोक और लोकपाल विवश होकर ईश्वरकी ही आज्ञाका पालन कर रहे हैं। वही एक प्राणीको दूसरेसे मिलाता है और वही उन्हें अलग करता है ।।४०।। जैसे बैल बड़ी रस्सीमें बँधे और छोटी रस्सीसे नथे रहकर अपने स्वामीका भार ढोते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी वर्णाश्रमादि अनेक प्रकारके नामोंसे वेदरूप रस्सीमें बँधकर ईश्वरकी ही आज्ञाका अनुसरण करते हैं ।।४१।। जैसे संसारमें खिलाड़ीकी इच्छासे ही खिलौनोंका संयोग और वियोग होता है, वैसे ही भगवान्‌की इच्छासे ही मनुष्योंका मिलना-बिछुड़ना होता है ।।४२।। तुमलोगोंको जीवरूपसे नित्य मानो या देहरूपसे अनित्य अथवा जडरूपसे अनित्य और चेतनरूपसे नित्य अथवा शुद्धब्रह्मरूपमें नित्य-अनित्य कुछ भी न मानो— किसी भी अवस्थामें मोहजन्य आसक्तिके अतिरिक्त वे शोक करनेयोग्य नहीं हैं ।।४३।। इसलिये धर्मराज! वे दीन-दुःखी चाचा-चाची असहाय अवस्थामें मेरे बिना कैसे रहेंगे, इस अज्ञानजन्य मनकी विकलताको छोड़ दो ।।४४।। यह पांचभौतिक शरीर काल, कर्म और गुणोंके वशमें है। अजगरके मुँहमें पड़े हुए पुरुषके समान यह पराधीन शरीर दूसरोंकी रक्षा ही क्या कर सकता है ।।४५।। हाथवालोंके बिना हाथवाले, चार पैरवाले पशुओंके बिना पैरवाले (तृणादि) और उनमें भी बड़े जीवोंके छोटे जीव आहार हैं। इस प्रकार एक जीव दूसरे जीवके जीवनका कारण हो रहा है ।।४६।। इन समस्त रूपोंमें जीवोंके बाहर और भीतर वही एक स्वयंप्रकाश भगवान्, जो सम्पूर्ण आत्माओंके आत्मा हैं, मायाके द्वारा अनेकों प्रकारसे प्रकट हो रहे हैं; तुम केवल उन्हींको देखो ।।४७।। महाराज! समस्त प्राणियोंको जीवनदान देनेवाले वे ही भगवान् इस समय इस पृथ्वीतलपर देवद्रोहियोंका नाश करनेके लिये कालरूपसे अवतीर्ण हुए हैं ।।४८।। अब वे देवताओंका कार्य पूरा कर चुके हैं। थोड़ा-सा काम और शेष है, उसीके लिये वे रुके हुए हैं। जबतक वे प्रभु यहाँ हैं तबतक तुमलोग भी उनकी प्रतीक्षा करते रहो ।।४९।।

यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः ।
वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा वहन्ति बलिमीशितुः ।।४१

यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ।।४२

यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ।
सर्वथा न हि शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ।।४३

तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ।
कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंस्ते च मां विना ।।४४

कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ।
कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ।।४५

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ।
फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ।।४६

तदिदं भगवान् राजन्नेक आत्माऽऽत्मनां स्वदृक् ।
अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा ।।४७

सोऽयमद्य महाराज भगवान् भूतभावनः ।
कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभावाय सुरद्विषाम् ।।४८

निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ।
तावद् यूयमवेक्षध्वं भवेद् यावदिहेश्वरः ।।४९

धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया ।
दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ।।५०

स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् ।
सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ।।५१

धर्मराज! हिमालयके दक्षिण भागमें, जहाँ सप्तर्षियोंकी प्रसन्नताके लिये गंगाजीने अलग-अलग सात धाराओंके रूपमें अपनेको सात भागोंमें विभक्त कर दिया है, जिसे 'सप्तस्रोत' कहते हैं, वहीं ऋषियोंके आश्रमपर धृतराष्ट्र अपनी पत्नी गान्धारी और विदुरके साथ गये हैं ।।५०-५१।।

स्नात्वानुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अब्भक्ष उपशान्तात्मा स आस्ते विगतैषणः ।।५२

जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः ।
हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्त्वतमोमलः ।।५३

विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् ।
ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ।।५४

ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः ।
निवर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ।
तस्यान्तरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः ।।५५

स वा अद्यतनाद् राजन् परतः पञ्चमेऽहनि ।
कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ।।५६

दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ।
बहिः स्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनुवेक्ष्यति ।।५७

विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन ।
हर्षशोकयुतस्तस्माद् गन्ता तीर्थनिषेवकः ।।५८

इत्युक्त्वाथारुहत्[१] स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः ।
युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाजहाच्छुचः ।।५९

वहाँ वे त्रिकाल स्नान और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते हैं। अब उनके चित्तमें किसी प्रकारकी कामना नहीं है, वे केवल जल पीकर शान्तचित्तसे निवास करते हैं ।।५२।। आसन जीतकर प्राणोंको वशमें करके उन्होंने अपनी छहों इन्द्रियोंको विषयोंसे लौटा लिया है। भगवान्‌की धारणासे उनके तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके मल नष्ट हो चुके हैं ।।५३।। उन्होंने अहंकारको बुद्धिके साथ जोड़कर और उसे क्षेत्रज्ञ आत्मामें लीन करके उसे भी महाकाशमें घटाकाशके समान सर्वाधिष्ठान ब्रह्ममें एक कर दिया है। उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों और मनको रोककर समस्त विषयोंको बाहरसे ही लौटा दिया है और मायाके गुणोंसे होनेवाले परिणामोंको सर्वथा मिटा दिया है। समस्त कर्मोंका संन्यास करके वे इस समय ठूँठकी तरह स्थिर होकर बैठे हुए हैं, अतः तुम उनके मार्गमें विघ्नरूप मत बनना* ।।५४-५५।। धर्मराज! आजसे पाँचवें दिन वे अपने शरीरका परित्याग कर देंगे और वह जलकर भस्म हो जायगा ।।५६।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

गार्हपत्यादि अग्नियोंके द्वारा पर्णकुटीके साथ अपने पतिके मृतदेहको जलते देखकर बाहर खड़ी हुई साध्वी गान्धारी भी पतिका अनुगमन करती हुई उसी आगमें प्रवेश कर जायँगी ।।५७।। धर्मराज! विदुरजी अपने भाईका आश्चर्यमय मोक्ष देखकर हर्षित और वियोग देखकर दुःखित होते हुए वहाँसे तीर्थ-सेवनके लिये चले जायँगे ।।५८।। देवर्षि नारद यों कहकर तुम्बुरुके साथ स्वर्गको चले गये। धर्मराज युधिष्ठिरने उनके उपदेशोंको हृदयमें धारण करके शोकको त्याग दिया ।।५९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

---

१. प्रा० पा०—स्वानां विशृण्वताम्।

१. प्रा० पा०—भ्रमतो। २. प्रा० पा०—न्यवेदयत्। ३. प्रा० पा०—स्वकैः ।

* एक समय किसी राजाके अनुचरोंने कुछ चोरोंको माण्डव्य ऋषिके आश्रमपर पकड़ा। उन्होंने समझा कि ऋषि भी चोरोंमें शामिल होंगे। अतः वे भी पकड़ लिये गये और राजाज्ञासे सबके साथ उनको भी शूलीपर चढ़ा दिया गया। राजाको यह पता लगते ही कि ये महात्मा हैं—ऋषिको शूलीसे उतरवा दिया और हाथ जोड़कर उनसे अपना अपराध क्षमा कराया। माण्डव्यजीने यमराजके पास जाकर पूछा—'मुझे किस पापके फलस्वरूप यह दण्ड मिला?' यमराजने बताया कि 'आपने लड़कपनमें एक टिड्डीको कुशकी नोकसे छेद दिया था, इसीलिये ऐसा हुआ।' इसपर मुनिने कहा—'मैंने अज्ञानवश ऐसा किया होगा, उस छोटेसे अपराधके लिये तुमने मुझे बड़ा कठोर दण्ड दिया। इसलिये तुम सौ वर्षतक शूद्रयोनिमें रहोगे।' माण्डव्यजीके इस शापसे ही यमराजने विदुरके रूपमें अवतार लिया था ।

१. प्रा० पा०—कुलोद्वहम्। २. प्रा० पा०—प्रतिक्रियां न पश्येऽहं कुतश्चित्। ३. प्रा० पा०—वः।

१. प्रा० पा०—मति०। २. प्रा० पा०—वसु। ३. प्रा० पा०—यातोऽसौ। ४. प्रा० पा०—सुकृत्।

१. प्राचीन प्रतिमें 'नाहं वेद····' से लेकर····वहन्ति बलिमीशितुः ।।' यहाँतक पाँच श्लोक इस प्रकार मिलते हैं—

'अहं व्यवसितं रात्रौ पित्रोस्ते कुलनन्दन । न वेद साध्व्या गान्धार्या मुषितोऽस्मि महात्मभिः ।।

एतस्मिन्नन्तरे विप्र नारदः प्रत्यदृश्यत । वीणां त्रितन्त्रीं ध्वनयन् भगवान् सहतुम्बुरुः ।।

राजा नत्वोपनीतार्घ्यः प्रत्युत्थायाभिवन्दितम् । परमासन आसीनं

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पौरवेन्द्रोऽभ्यभाषत ।।

नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन् क्व गताविति । कर्णधार इवापारे सीदतां पारदर्शकः ।।

नारद उवाच—

'मा कञ्चन शुचो राजन् यदीश्वरवशे जगत् । लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः'

१. प्रा ० पा०—इत्युक्त्वा चारुहत् ।

* देवर्षि नारदजी त्रिकालदर्शी हैं। वे धृतराष्ट्रके भविष्य-जीवनको वर्तमानकी भाँति प्रत्यक्ष देखते हुए उसी रूपमें वर्णन कर रहे हैं। धृतराष्ट्र पिछली रातको ही हस्तिनापुरसे गये हैं, अतः यह वर्णन भविष्यका ही समझना चाहिये।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ चतुर्दशोऽध्यायः
अपशकुन देखकर महाराज युधिष्ठिरका शंका करना और अर्जुनका द्वारकासे लौटना

सूत उवाच

सम्प्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया ।
ज्ञातुं[१] च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ।।१
व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः[२] ।
ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः[३] ।।२
कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः[४] ।
पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ।।३
जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् ।
पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम् ।।४
निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम् ।
लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ।।५

युधिष्ठिर उवाच

सम्प्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया ।
ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ।।६
गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः ।
नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ।।७
अपि देवर्षिणाऽऽदिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः ।
यदाऽऽत्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ।।८
यस्मान्नः सम्पदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ।
आसन् सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ।।९

सूतजी कहते हैं—स्वजनोंसे मिलने और पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण अब क्या करना चाहते हैं—यह जाननेके लिये अर्जुन द्वारका गये हुए थे ।।१।। कई महीने बीत जानेपर भी अर्जुन वहाँसे लौटकर नहीं आये। धर्मराज युधिष्ठिरको बड़े भयंकर अपशकुन दीखने

******ebook converter DEMO Watermarks*******

लगे ।।२।। उन्होंने देखा, कालकी गति बड़ी विकट हो गयी है। जिस समय जो ऋतु होनी चाहिये, उस समय वह नहीं होती और उनकी क्रियाएँ भी उलटी ही होती हैं। लोग बड़े क्रोधी, लोभी और असत्यपरायण हो गये हैं। अपने जीवन-निर्वाहके लिये लोग पापपूर्ण व्यापार करने लगे हैं ।।३।। सारा व्यवहार कपटसे भरा हुआ होता है, यहाँतक कि मित्रतामें भी छल मिला रहता है; पिता-माता, सगे-सम्बन्धी, भाई और पति-पत्नीमें भी झगड़ा-टंटा रहने लगा है ।।४।। कलिकालके आ जानेसे लोगोंका स्वभाव ही लोभ, दम्भ आदि अधर्मसे अभिभूत हो गया है और प्रकृतिमें भी अत्यन्त अरिष्टसूचक अपशकुन होने लगे हैं, यह सब देखकर युधिष्ठिरने अपने छोटे भाई भीमसेनसे कहा ।।५।।

युधिष्ठिरने कहा—भीमसेन! अर्जुनको हमने द्वारका इसलिये भेजा था कि वह वहाँ जाकर, पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण क्या कर रहे हैं—इसका पता लगा आये और सम्बन्धियोंसे मिल भी आये ।।६।। तबसे सात महीने बीत गये; किन्तु तुम्हारे छोटे भाई अबतक नहीं लौट रहे हैं। मैं ठीक-ठीक यह नहीं समझ पाता हूँ कि उनके न आनेका क्या कारण है ।।७।। कहीं देवर्षि नारदके द्वारा बतलाया हुआ वह समय तो नहीं आ पहुँचा है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने लीला-विग्रहका संवरण करना चाहते हैं? ।।८।। उन्हीं भगवान्‌की कृपासे हमें यह सम्पत्ति, राज्य, स्त्री, प्राण, कुल, संतान, शत्रुओंपर विजय और स्वर्गादि लोकोंका अधिकार प्राप्त हुआ है ।।९।। भीमसेन! तुम तो मनुष्योंमें व्याघ्रके समान बलवान् हो; देखो तो सही—आकाशमें उल्कापातादि, पृथ्वीमें भूकम्पादि और शरीरोंमें रोगादि कितने भयंकर अपशकुन हो रहे हैं! इनसे इस बातकी सूचना मिलती है कि शीघ्र ही हमारी बुद्धिको मोहमें डालनेवाला कोई उत्पात होनेवाला है ।।१०।। प्यारे भीमसेन! मेरी बायीं जाँघ, आँख और भुजा बार-बार फड़क रही हैं। हृदय जोरसे धड़क रहा है। अवश्य ही बहुत जल्दी कोई अनिष्ट होनेवाला है ।।११।। देखो, यह सियारिन उदय होते हुए सूर्यकी ओर मुँह करके रो रही है। अरे! उसके मुँहसे तो आग भी निकल रही है! यह कुत्ता बिलकुल निर्भय-सा होकर मेरी ओर देखकर चिल्ला रहा है ।।१२।। भीमसेन! गौ आदि अच्छे पशु मुझे अपने बायें करके जाते हैं और गधे आदि बुरे पशु मुझे अपने दाहिने कर देते हैं। मेरे घोड़े आदि वाहन मुझे रोते हुए दिखायी देते हैं ।।१३।। यह मृत्युका दूत पेड़ुखी, उल्लू और उसका प्रतिपक्षी कौआ रातको अपने कर्ण-कठोर शब्दोंसे मेरे मनको कँपाते हुए विश्वको सूना कर देना चाहते हैं ।।१४।। दिशाएँ धुँधली हो गयी हैं, सूर्य और चन्द्रमाके चारों ओर बार-बार मण्डल बैठते हैं। यह पृथ्वी पहाड़ोंके साथ काँप उठती है, बादल बड़े जोर-जोरसे गरजते हैं और जहाँ-तहाँ बिजली भी गिरती ही रहती है ।।१५।। शरीरको छेदनेवाली एवं धूलिवर्षासे अंधकार फैलानेवाली आँधी चलने लगी है। बादल बड़ा डरावना दृश्य उपस्थित करके सब ओर खून बरसाते हैं ।।१६।। देखो! सूर्यकी प्रभा मन्द पड़ गयी है। आकाशमें ग्रह परस्पर टकराया करते हैं। भूतोंकी घनी भीड़में पृथ्वी और अन्तरिक्षमें आग-सी लगी हुई है ।।१७।। नदी, नद, तालाब और लोगोंके मन क्षुब्ध हो रहे हैं। घीसे आग नहीं जलती। यह भयंकर काल न जाने क्या करेगा ।।१८।। बछड़े दूध नहीं पीते, गौएँ दुहने नहीं देतीं, गोशालामें गौएँ आँसू बहा-बहाकर रो रही हैं। बैल भी उदास हो रहे हैं ।।१९।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान् भौमान् सदैहिकान् ।
दारुणान्[१] शंसतोऽदूराद्भयं नो[२] बुद्धिमोहनम् ।।१०

ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः ।
वेपथुश्चापि हृदये आराद्दास्यन्ति विप्रियम् ।।११

शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना[३] ।
मामङ्ग[४] सारमेयोऽयमभिरेभत्यभीरुवत्[५] ।।१२

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे ।
वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ।।१३

मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन् मनः ।
प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रौ[६] शून्यमिच्छतः ।।१४

धूम्रा दिशः[७] परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः ।
निर्घातश्च[८] महांस्तात साकं च स्तनयित्नुभिः ।।१५

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः ।
असृग्वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ।।१६

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ।
ससङ्कुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ।।१७

नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ।
न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ।।१८

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः ।
रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ।।१९

दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च ।
इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ।
भ्रष्टश्रियो निरानन्दाः किमघं दर्शयन्ति नः ।।२०

******ebook converter DEMO Watermarks*******

मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ।
अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ।।२१
इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ।
राज्ञः प्रत्यागमद् ब्रह्मन् यदुपुर्याः कपिध्वजः ।।२२
तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् ।
अधोवदनमब्बिन्दून् सृजन्तं नयनाब्जयोः ।।२३
विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ।
पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ।।२४

युधिष्ठिर उवाच

कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते ।
मधु भोजदशार्हार्हसात्वतान्धकवृष्णयः ।।२५
शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्ते वाथ मारिषः ।
मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ।।२६
सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ।
आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ।।२७
कच्चिद्राजाऽऽहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ।
हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ।।२८
आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ।
कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान् सात्वतां प्रभुः ।।२९
प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ।
गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ।।३०
सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ।
अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ।।३१

देवताओंकी मूर्तियाँ रो-सी रही हैं, उनमेंसे पसीना चूने लगता है और वे हिलती-डोलती भी हैं। भाई! ये देश, गाँव, शहर, बगीचे, खानें और आश्रम श्रीहीन और आनन्दरहित हो गये हैं। पता नहीं ये हमारे किस दुःखकी सूचना दे रहे हैं ।।२०।। इन बड़े-बड़े उत्पातोंको देखकर मैं तो ऐसा समझता हूँ कि निश्चय ही यह भाग्यहीना भूमि भगवान्‌के उन चरण-कमलोंसे, जिनका सौन्दर्य तथा जिनके ध्वजा, वज्र अंकुशादि-विलक्षण चिह्न और किसीमें भी कहीं भी नहीं हैं, रहित हो गयी है ।।२१।। शौनकजी! राजा युधिष्ठिर इन भयंकर उत्पातोंको देखकर

******ebook converter DEMO Watermarks*******

मन-ही-मन चिन्तित हो रहे थे कि द्वारकासे लौटकर अर्जुन आये ।।२२।। युधिष्ठिरने देखा, अर्जुन इतने आतुर हो रहे हैं जितने पहले कभी नहीं देखे गये थे। मुँह लटका हुआ है, कमल-सरीखे नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं और शरीरमें बिलकुल कान्ति नहीं है। उनको इस रूपमें अपने चरणोंमें पड़ा देखकर युधिष्ठिर घबरा गये। देवर्षि नारदकी बातें याद करके उन्होंने सुहृदोंके सामने ही अर्जुनसे पूछा ।।२३-२४।।

युधिष्ठिरने कहा—'भाई! द्वारकापुरीमें हमारे स्वजन-सम्बन्धी मधु, भोज, दशार्ह, आर्ह, सात्वत, अन्धक और वृष्णिवंशी यादव कुशलसे तो हैं? ।।२५।। हमारे माननीय नाना शूरसेनजी प्रसन्न हैं? अपने छोटे भाईसहित मामा वसुदेवजी तो कुशलपूर्वक हैं? ।।२६।। उनकी पत्नियाँ हमारी मामी देवकी आदि सातों बहिनें अपने पुत्रों और बहुओंके साथ आनन्दसे तो हैं? ।।२७।। जिनका पुत्र कंस बड़ा ही दुष्ट था, वे राजा उग्रसेन अपने छोटे भाई देवकके साथ जीवित तो हैं न? हृदीक, उनके पुत्र कृतवर्मा, अक्रूर, जयन्त, गद, सारण तथा शत्रुजित् आदि यादववीर सकुशल हैं न? यादवोंके प्रभु बलरामजी तो आनन्दसे हैं? ।।२८-२९।। वृष्णिवंशके सर्वश्रेष्ठ महारथी प्रद्युम्न सुखसे तो हैं? युद्धमें बड़ी फुर्ती दिखलानेवाले भगवान् अनिरुद्ध आनन्दसे हैं न? ।।३०।। सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवतीनन्दन साम्ब और अपने पुत्रोंके सहित ऋषभ आदि भगवान् श्रीकृष्णके अन्य सब पुत्र भी प्रसन्न हैं न? ।।३१।।

तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः ।
सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ।।३२
अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ।
अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ।।३३
भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ।
कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ।।३४
मङ्गलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ।
आस्ते यदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखः पुमान् ।।३५
यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः ।
क्रीडन्ति परमानन्दं महापौरुषिका इव ।।३६
यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा
सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ।
निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो
हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ।।३७
यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनो
यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ।
अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहृतां बलात्

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ।।३८
कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ।
अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ।।३९
कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः ।
न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ।।४०
कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ।
शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ।।४१

भगवान् श्रीकृष्णके सेवक श्रुतदेव, उद्धव आदि और दूसरे सुनन्द-नन्द आदि प्रधान यदुवंशी, जो भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके बाहुबलसे सुरक्षित हैं, सब-के-सब सकुशल हैं न? हमसे अत्यन्त प्रेम करनेवाले वे लोग कभी हमारा कुशल-मंगल भी पूछते हैं? ।।३२-३३।।

भक्तवत्सल ब्राह्मणभक्त भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्वजनोंके साथ द्वारकाकी सुधर्मा सभामें सुखपूर्वक विराजते हैं न? ।।३४।। वे आदिपुरुष बलरामजीके साथ संसारके परम मंगल, परम कल्याण और उन्नतिके लिये यदुवंशरूप क्षीरसागरमें विराजमान हैं। उन्हींके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारकापुरीमें यदुवंशीलोग सारे संसारके द्वारा सम्मानित होकर बड़े आनन्दसे विष्णुभगवान्के पार्षदोंके समान विहार कर रहे हैं ।।३५-३६।। सत्यभामा आदि सोलह हजार रानियाँ प्रधानरूपसे उनके चरणकमलोंकी सेवामें ही रत रहकर उनके द्वारा युद्धमें इन्द्रादि देवताओंको भी हराकर इन्द्राणीके भोगयोग्य तथा उन्हींकी अभीष्ट पारिजातादि वस्तुओंका उपभोग करती हैं ।।३७।। यदुवंशी वीर श्रीकृष्णके बाहुदण्डके प्रभावसे सुरक्षित रहकर निर्भय रहते हैं और बलपूर्वक लायी हुई बड़े-बड़े देवताओंके बैठने योग्य सुधर्मा सभाको अपने चरणोंसे आक्रान्त करते हैं ।।३८।।

भाई अर्जुन! यह भी बताओ कि तुम स्वयं तो कुशलसे हो न? मुझे तुम श्रीहीन-से दीख रहे हो; वहाँ बहुत दिनोंतक रहे, कहीं तुम्हारे सम्मानमें तो किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई? किसीने तुम्हारा अपमान तो नहीं कर दिया? ।।३९।। कहीं किसीने दुर्भावपूर्ण अमंगल शब्द आदिके द्वारा तुम्हारा चित्त तो नहीं दुखाया? अथवा किसी आशासे तुम्हारे पास आये हुए याचकोंको उनकी माँगी हुई वस्तु अथवा अपनी ओरसे कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके भी तुम नहीं दे सके? ।।४०।। तुम सदा शरणागतोंकी रक्षा करते आये हो; कहीं किसी भी ब्राह्मण, बालक, गौ, बूढ़े, रोगी, अबला अथवा अन्य किसी प्राणीका, जो तुम्हारी शरणमें आया हो, तुमने त्याग तो नहीं कर दिया? ।।४१।। कहीं तुमने अगम्या स्त्रीसे समागम तो नहीं किया? अथवा गमन करनेयोग्य स्त्रीके साथ असत्कारपूर्वक समागम तो नहीं किया? कहीं मार्गमें अपनेसे छोटे अथवा बराबरीवालोंसे हार तो नहीं गये? ।।४२।। अथवा भोजन करानेयोग्य बालक और बूढ़ोंको छोड़कर तुमने अकेले ही तो भोजन नहीं कर लिया? मेरा विश्वास है कि तुमने ऐसा कोई निन्दित काम तो नहीं किया होगा, जो तुम्हारे योग्य न हो ।।४३।। हो-न-हो अपने परम प्रियतम अभिन्नहृदय परम सुहृद् भगवान् श्रीकृष्णसे तुम रहित हो गये हो। इसीसे

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अपनेको शून्य मान रहे हो। इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता, जिससे तुमको इतनी मानसिक पीड़ा हो ।।४४।।

कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वासत्कृतां स्त्रियम् ।
पराजितो वाथ भवान्नोत्तमैर्नासमैः पथि ।।४२

अपि स्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं सम्भोज्यान् वृद्धबालकान् ।
जुगुप्सितं कर्म किञ्चित्कृतवान्न यदक्षमम् ।।४३

कच्चित् प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना ।
शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ।।४४

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

---

१. प्रा० पा०—ज्ञातुं मायामनुष्यस्य वासुदेवस्य चेष्टितम्। २. प्रा० पा०—पाण्डुसुतो नृपः। ३. प्रा० पा०—भृगूद्वह। ४. प्रा० पा०—धर्मणः।

१. प्रा० पा०—घोरमाशंसतो। २. प्रा० पा०—मे। ३. प्रा० पा०—मरुणमभि०। ४. प्रा० पा०—ममाग्रे। ५. प्रा० पा०—भीत०। ६. प्रा० पा०—कुहानो रौद्रोऽसौ शून्यमिच्छति। ७. प्रा० पा०—दीप्ताः। ८. प्रा० पा०—तः सुमहां०।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ पञ्चदशोऽध्यायः
कृष्णविरहव्यथित पाण्डवोंका परीक्षित्‌को राज्य देकर स्वर्ग सिधारना

सूत उवाच

एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाऽऽविकल्पितः ।
नानाशङ्कास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ।।१

शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः ।
विभुं तमेवानुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ।।२

कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनाऽऽमृज्य नेत्रयोः ।
परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः ।।३

सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन् ।
नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ।।४

सूतजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा अर्जुन एक तो पहले ही श्रीकृष्णके विरहसे कृश हो रहे थे, उसपर राजा युधिष्ठिरने उनकी विषादग्रस्त मुद्रा देखकर उसके विषयमें कई प्रकारकी आशंकाएँ करते हुए प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी ।।१।। शोकसे अर्जुनका मुख और हृदय-कमल सूख गया था, चेहरा फीका पड़ गया था। वे उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानमें ऐसे डूब रहे थे कि बड़े भाईके प्रश्नोंका कुछ भी उत्तर न दे सके ।।२।। श्रीकृष्णकी आँखोंसे ओझल हो जानेके कारण वे बढ़ी हुई प्रेमजनित उत्कण्ठाके परवश हो रहे थे। रथ हाँकने, टहलने आदिके समय भगवान्‌ने उनके साथ जो मित्रता, अभिन्नहृदयता और प्रेमसे भरे हुए व्यवहार किये थे, उनकी याद-पर-याद आ रही थी; बड़े कष्टसे उन्होंने अपने शोकका वेग रोका, हाथसे नेत्रोंके आँसू पोंछे और फिर रुँधे हुए गलेसे अपने बड़े भाई महाराज युधिष्ठिरसे कहा ।।३-४।।

अर्जुन उवाच

वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ।
येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ।।५

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ।।६

यत्संश्रयाद् द्रुपदगेहमुपागतानां
राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ।
तेजो हृतं खलु मयाभिहतश्च मत्स्यः
सज्जीकृतेन धनुषाधिगता च कृष्णा ।।७

यत्संनिधावहमु खाण्डवमग्नयेऽदा-
मिन्द्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ।
लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया
दिग्भ्योऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते ।।८

यत्तेजसा नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मखार्थे
आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः ।
तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा
यन्मोचितास्तदनयन् बलिमध्वरे ते ।।९

पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेक-
श्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् ।
स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या
यैस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ।।१०

अर्जुन बोले—महाराज! मेरे ममेरे भाई अथवा अत्यन्त घनिष्ठ मित्रका रूप धारणकर श्रीकृष्णने मुझे ठग लिया। मेरे जिस प्रबल पराक्रमसे बड़े-बड़े देवता भी आश्चर्यमें डूब जाते थे, उसे श्रीकृष्णने मुझसे छीन लिया ।।५।।

जैसे यह शरीर प्राणसे रहित होनेपर मृतक कहलाता है, वैसे ही उनके क्षणभरके वियोगसे यह संसार अप्रिय दीखने लगता है ।।६।।

उनके आश्रयसे द्रौपदी-स्वयंवरमें राजा द्रुपदके घर आये हुए कामोन्मत्त राजाओंका तेज मैंने हरण कर लिया, धनुषपर बाण चढ़ाकर मत्स्यवेध किया और इस प्रकार द्रौपदीको प्राप्त किया था ।।७।।

उनकी सन्निधिमात्रसे मैंने समस्त देवताओंके साथ इन्द्रको अपने बलसे जीतकर अग्निदेवको उनकी तृप्तिके लिये खाण्डव वनका दान कर दिया और मय दानवकी निर्माण की हुई, अलौकिक कलाकौशलसे युक्त मायामयी सभा प्राप्त की और आपके यज्ञमें सब ओरसे आ-आकर राजाओंने अनेकों प्रकारकी भेंटें समर्पित कीं ।।८।।

दस हजार हाथियोंकी शक्ति और बलसे सम्पन्न आपके इन छोटे भाई भीमसेनने

******ebook converter DEMO Watermarks*******

उन्हींकी शक्तिसे राजाओंके सिरपर पैर रखनेवाले अभिमानी जरासन्धका वध किया था; तदनन्तर उन्हीं भगवान्‌ने उन बहुत-से राजाओंको मुक्त किया, जिनको जरासन्धने महाभैरवयज्ञमें-यज्ञमें बलि चढ़ानेके लिये बंदी बना रखा था। उन सब राजाओंने आपके यज्ञमें अनेकों प्रकारके उपहार दिये थे ।।९।।

महारानी द्रौपदी राजसूय यज्ञके महान् अभिषेकसे पवित्र हुए अपने उन सुन्दर केशोंको, जिन्हें दुष्टोंने भरी सभामें छूनेका साहस किया था, बिखेरकर तथा आँखोंमें आँसू भरकर जब श्रीकृष्णके चरणोंमें गिर पड़ी, तब उन्होंने उसके सामने उसके उस घोर अपमानका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा करके उन धूर्तोंकी स्त्रियोंकी ऐसी दशा कर दी कि वे विधवा हो गयीं और उन्हें अपने केश अपने हाथों खोल देने पड़े ।।१०।।

यो नो जुगोप वनमेत्य दुरन्तकृच्छ्राद्
दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग् यः ।
शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं
तृप्ताममंस्त सलिले विनिमग्नसङ्घः ।।११

यत्तेजसाथ भगवान् युधि शूलपाणि-
र्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे ।
अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण
प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासनार्धम् ।।१२

तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्मं
गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवाः ।
सेन्द्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ
तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ।।१३

वनवासके समय हमारे वैरी दुर्योधनके षड्यन्त्रसे दस हजार शिष्योंको साथ बिठाकर भोजन करनेवाले महर्षि दुर्वासाने हमें दुस्तर संकटमें डाल दिया था। उस समय उन्होंने द्रौपदीके पात्रमें बची हुई शाककी एक पत्तीका ही भोग लगाकर हमारी रक्षा की। उनके ऐसा करते ही नदीमें स्नान करती हुई मुनिमण्डलीको ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनकी तो बात ही क्या, सारी त्रिलोकी ही तृप्त हो गयी है* ।।११।।

उनके प्रतापसे मैंने युद्धमें पार्वतीसहित भगवान् शंकरको आश्चर्यमें डाल दिया तथा उन्होंने मुझको अपना पाशुपत नामक अस्त्र दिया; साथ ही दूसरे लोकपालोंने भी प्रसन्न होकर अपने-अपने अस्त्र मुझे दिये। और तो क्या, उनकी कृपासे मैं इसी शरीरसे स्वर्गमें गया और देवराज इन्द्रकी सभामें उनके बराबर आधे आसनपर बैठनेका सम्मान मैंने प्राप्त किया ।।१२।। उनके आग्रहसे जब मैं स्वर्गमें ही कुछ दिनोंतक रह गया, तब इन्द्रके साथ

******ebook converter DEMO Watermarks*******

समस्त देवताओंने मेरी इन्हीं गाण्डीव धारण करनेवाली भुजाओंका निवातकवच आदि दैत्योंको मारनेके लिये आश्रय लिया। महाराज! यह सब जिनकी महती कृपाका फल था, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने मुझे आज ठग लिया? ।।१३।।

यद्बान्धवः कुरुबलाब्धिमनन्तपार-
मेको रथेन ततरेऽहमतार्यसत्त्वम् ।
प्रत्याहृतं बहु[१] धनं च मया परेषां
तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ।।१४

यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्र-[२]
राजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु ।
अग्रेचरो मम विभो रथयूथपाना-
मायुर्मनांसि च दृशा सह ओज[३] आर्च्छत् ।।१५

यद्दोष्षु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्ण-
नप्तृत्रिगर्तशलसैन्धवबाह्लिकाद्यैः ।
अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि
नो पस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि ।।१६

सौत्ये वृतः कुमतिनाऽऽत्मद ईश्वरो मे
यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ।
मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं
न प्राहरन् यदनुभावनिरस्तचित्ताः ।।१७

नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि
हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति ।
संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि
स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ।।१८

महाराज! कौरवोंकी सेना भीष्म-द्रोण आदि अजेय महामत्स्योंसे पूर्ण अपार समुद्रके समान दुस्तर थी, परंतु उनका आश्रय ग्रहण करके अकेले ही रथपर सवार हो मैं उसे पार कर गया। उन्हींकी सहायतासे, आपको याद होगा, मैंने शत्रुओंसे राजा विराटका सारा गोधन तो वापस ले ही लिया, साथ ही उनके सिरोंपरसे चमकते हुए मणिमय मुकुट तथा अंगोंके अलंकारतक छीन लिये थे ।।१४।।

भाईजी! कौरवोंकी सेना भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य तथा अन्य बड़े-बड़े राजाओं और

******ebook converter DEMO Watermarks*******

क्षत्रिय वीरोंके रथोंसे शोभायमान थी। उसके सामने मेरे आगे-आगे चलकर वे अपनी दृष्टिसे ही उन महारथी यूथपतियोंकी आयु, मन, उत्साह और बलको छीन लिया करते थे ।।१५।।

द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, भूरिश्रवा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ और बाह्लीक आदि वीरोंने मुझपर अपने कभी न चूकनेवाले अस्त्र चलाये थे; परंतु जैसे हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंके अस्त्र-शस्त्र भगवद्भक्त प्रह्लादका स्पर्श नहीं करते थे, वैसे ही उनके शस्त्रास्त्र मुझे छूतक नहीं सके। यह श्रीकृष्णके भुजदण्डोंकी छत्रछायामें रहनेका ही प्रभाव था ।।१६।।

श्रेष्ठ पुरुष संसारसे मुक्त होनेके लिये जिनके चरणकमलोंका सेवन करते हैं, अपने-आपतकको दे डालनेवाले उन भगवान्‌को मुझ दुर्बुद्धिने सारथितक बना डाला। अहा! जिस समय मेरे घोड़े थक गये थे और मैं रथसे उतरकर पृथ्वीपर खड़ा था, उस समय बड़े-बड़े महारथी शत्रु भी मुझपर प्रहार न कर सके; क्योंकि श्रीकृष्णके प्रभावसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी ।।१७।।

महाराज! माधवके उन्मुक्त और मधुरमुसकानसे युक्त, विनोदभरे एवं हृदयस्पर्शी वचन और उनका मुझे 'पार्थ, अर्जुन, सखा, कुरुनन्दन' आदि कहकर पुकारना, मुझे याद आनेपर मेरे हृदयमें उथल-पुथल मचा देते हैं ।।१८।।

शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादि-
ष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ।
सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं
सेहे महान्महितया कुमतेरघं मे ।।१९

सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन
सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ।
अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन्
गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ।।२०

तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते
सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ।
सर्वं क्षणेन तदभूसदीशरिक्तं
भस्मन् हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ।।२१

राजंस्त्वयाभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ।
विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ।।२२

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ।
अजानतामिवान्योन्यं चतुःपञ्चावशेषिताः ।।२३

******ebook converter DEMO Watermarks*******

प्रायेणैतद् भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् ।
मिथो निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथः ।।२४

जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः ।
दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथः ।।२५

एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान् विभुः ।
यदून् यदुभिरन्योन्यं भूभारान् संजहार ह ।।२६

सोने, बैठने, टहलने और अपने सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी बातें करने तथा भोजन आदि करनेमें हम प्रायः एक साथ रहा करते थे। किसी-किसी दिन मैं व्यंग्यसे उन्हें कह बैठता, 'मित्र! तुम तो बड़े सत्यवादी हो!' उस समय भी वे महापुरुष अपनी महानुभावताके कारण, जैसे मित्र अपने मित्रका और पिता अपने पुत्रका अपराध सह लेता है उसी प्रकार, मुझ दुर्बुद्धिके अपराधोंको सह लिया करते थे ।।१९।। महाराज! जो मेरे सखा, प्रिय मित्र—नहीं-नहीं मेरे हृदय ही थे, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान्‌से मैं रहित हो गया हूँ। भगवान्‌की पत्नियोंको द्वारकासे अपने साथ ला रहा था, परंतु मार्गमें दुष्ट गोपोंने मुझे एक अबलाकी भाँति हरा दिया और मैं उनकी रक्षा नहीं कर सका ।।२०।। वही मेरा गाण्डीव धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ है, वही घोड़े हैं और वही मैं रथी अर्जुन हूँ, जिसके सामने बड़े-बड़े राजालोग सिर झुकाया करते थे। श्रीकृष्णके बिना ये सब एक ही क्षणमें नहींके समान सारशून्य हो गये—ठीक उसी तरह, जैसे भस्ममें डाली हुई आहुति, कपटभरी सेवा और ऊसरमें बोया हुआ बीज व्यर्थ जाता है ।।२१।।

राजन्! आपने द्वारकावासी अपने जिन सुहृद्-सम्बन्धियोंकी बात पूछी है, वे ब्राह्मणोंके शापवश मोहग्रस्त हो गये और वारुणी मदिराके पानसे मदोन्मत्त होकर अपरिचितोंकी भाँति आपसमें ही एक-दूसरेसे भिड़ गये और घूँसोंसे मार-पीट करके सब-के-सब नष्ट हो गये। उनमेंसे केवल चार-पाँच ही बचे हैं ।।२२-२३।। वास्तवमें यह सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की ही लीला है कि संसारके प्राणी परस्पर एक-दूसरेका पालन-पोषण भी करते हैं और एक-दूसरेको मार भी डालते हैं ।।२४।। राजन्! जिस प्रकार जलचरोंमें बड़े जन्तु छोटोंको, बलवान् दुर्बलोंको एवं बड़े और बलवान् भी परस्पर एक-दूसरेको खा जाते हैं, उसी प्रकार अतिशय बली और बड़े यदुवंशियोंके द्वारा भगवान्‌ने दूसरे राजाओंका संहार कराया। तत्पश्चात् यदुवंशियोंके द्वारा ही एकसे दूसरे यदुवंशीका नाश कराके पूर्णरूपसे पृथ्वीका भार उतार दिया ।।२५-२६।।

देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ।
हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे ।।२७

सूत उवाच

******ebook converter DEMO Watermarks*******

एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ।
सौहार्देनातिगाढेन शान्ताऽऽसीद्विमला मतिः ।।२८
वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा ।
भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ।।२९
गीतं भगवता ज्ञानं यत् तत् सङ्ग्राममूर्धनि ।
कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद् विभुः ।।३०
विशोको ब्रह्मसम्पत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः ।
लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसम्भवः ।।३१
निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ।
स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ।।३२
पृथाप्यनुश्रुत्य धनञ्जयोदितं
नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ।
एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे
निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ।।३३
ययाहरद् भुवो भारं तां तनुं विजहावजः ।
कण्टकं कण्टकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ।।३४
यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद् यथा नटः ।
भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ।।३५
यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं
जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ।
तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसा-
मधर्महेतुः कलिरन्ववर्तत ।।३६

भगवान् श्रीकृष्णने मुझे जो शिक्षाएँ दी थीं, वे देश, काल और प्रयोजनके अनुरूप तथा हृदयके तापको शान्त करनेवाली थीं; स्मरण आते ही वे हमारे चित्तका हरण कर लेती हैं ।।२७।।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रगाढ़ प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करते-करते अर्जुनकी चित्तवृत्ति अत्यन्त निर्मल और प्रशान्त हो गयी ।।२८।। उनकी प्रेममयी भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंके अहर्निश चिन्तनसे अत्यन्त बढ़ गयी। भक्तिके वेगने उनके हृदयको मथकर उसमेंसे सारे विकारोंको बाहर निकाल दिया ।।२९।। उन्हें युद्धके प्रारम्भमें भगवान्के द्वारा उपदेश किया हुआ गीता-ज्ञान पुनः स्मरण हो आया, जिसकी कालके व्यवधान और कर्मोंके विस्तारके कारण प्रमादवश कुछ दिनोंके लिये विस्मृति हो गयी थी ।।३०।। ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिसे मायाका आवरण भंग होकर गुणातीत अवस्था प्राप्त हो

******ebook converter DEMO Watermarks*******

गयी। द्वैतका संशय निवृत्त हो गया। सूक्ष्मशरीर भंग हुआ। वे शोक एवं जन्म-मृत्युके चक्रसे सर्वथा मुक्त हो गये ।।३१।।

भगवान्‌के स्वधामगमन और यदुवंशके संहारका वृत्तान्त सुनकर निश्चलमति युधिष्ठिरने स्वर्गारोहणका निश्चय किया ।।३२।। कुन्तीने भी अर्जुनके मुखसे यदुवंशियोंके नाश और भगवान्‌के स्वधामगमनकी बात सुनकर अनन्य भक्तिसे अपने हृदयको भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया और सदाके लिये इस जन्म-मृत्युरूप संसारसे अपना मुँह मोड़ लिया ।।३३।। भगवान् श्रीकृष्णने लोकदृष्टिमें जिस यादवशरीरसे पृथ्वीका भार उतारा था, उसका वैसे ही परित्याग कर दिया, जैसे कोई काँटेसे काँटा निकालकर फिर दोनोंको फेंक दे। भगवान्‌की दृष्टिमें दोनों ही समान थे ।।३४।। जैसे वे नटके समान मत्स्यादि रूप धारण करते हैं और फिर उनका त्याग कर देते हैं, वैसे ही उन्होंने जिस यादवशरीरसे पृथ्वीका भार दूर किया था, उसे त्याग भी दिया ।।३५।। जिनकी मधुर लीलाएँ श्रवण करनेयोग्य हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णने जब अपने मनुष्यके-से शरीरसे इस पृथ्वीका परित्याग कर दिया, उसी दिन विचारहीन लोगोंको अधर्ममें फँसानेवाला कलियुग आ धमका ।।३६।।

युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः
पुरे च राष्ट्रे च गृहे तथाऽऽत्मनि ।
विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसना-
द्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ।।३७

स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः ।
तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिञ्चद्गजाह्वये ।।३८

मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः ।
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ।।३९

विसृज्य तत्र तत् सर्वं दुकूलवलयादिकम् ।
निर्ममो निरहङ्कारः संछिन्नाशेषबन्धनः ।।४०

वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ।
मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पञ्चत्वे ह्यजोहवीत् ।।४१

त्रित्वे हुत्वाथ पञ्चत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ।
सर्वमात्मन्यजुहवीद् ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ।।४२

चीरवासा निराहारो बद्धवाङ् मुक्तमूर्धजः ।
दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ।।४३

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अनपेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा ।
उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः ।
हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्तेत यतो गतः ।।४४

सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः ।
कलिनाधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ।।४५

महाराज युधिष्ठिरसे कलियुगका फैलना छिपा न रहा। उन्होंने देखा—देशमें, नगरमें, घरोंमें और प्राणियोंमें लोभ, असत्य, छल, हिंसा आदि अधर्मोंकी बढ़ती हो गयी है। तब उन्होंने महाप्रस्थानका निश्चय किया ।।३७।। उन्होंने अपने विनयी पौत्र परीक्षित्‌को, जो गुणोंमें उन्हींके समान थे, समुद्रसे घिरी हुई पृथ्वीके सम्राट् पदपर हस्तिनापुरमें अभिषिक्त किया ।।३८।। उन्होंने मथुरामें शूरसेनाधिपतिके रूपमें अनिरुद्धके पुत्र वज्रका अभिषेक किया। इसके बाद समर्थ युधिष्ठिरने प्राजापत्य यज्ञ करके आहवनीय आदि अग्नियोंको अपनेमें लीन कर दिया अर्थात् गृहस्थाश्रमके धर्मसे मुक्त होकर उन्होंने संन्यास ग्रहण किया ।।३९।। युधिष्ठिरने अपने सब वस्त्राभूषण आदि वहीं छोड़ दिये एवं ममता और अहंकारसे रहित होकर समस्त बन्धन काट डाले ।।४०।। उन्होंने दृढ़ भावनासे वाणीको मनमें, मनको प्राणमें, प्राणको अपानमें और अपानको उसकी क्रियाके साथ मृत्युमें तथा मृत्युको पंचभूतमय शरीरमें लीन कर लिया ।।४१।। इस प्रकार शरीरको मृत्युरूप अनुभव करके उन्होंने उसे त्रिगुणमें मिला दिया, त्रिगुणको मूल प्रकृतिमें, सर्वकारणरूपा प्रकृतिको आत्मामें और आत्माको अविनाशी ब्रह्ममें विलीन कर दिया। उन्हें यह अनुभव होने लगा कि यह सम्पूर्ण दृश्यप्रपंच ब्रह्मस्वरूप है ।।४२।। इसके पश्चात् उन्होंने शरीरपर चीर-वस्त्र धारण कर लिया, अन्न-जलका त्याग कर दिया, मौन ले लिया और केश खोलकर बिखेर लिये। वे अपने रूपको ऐसा दिखाने लगे जैसे कोई जड, उन्मत्त या पिशाच हो ।।४३।। फिर वे बिना किसीकी बाट देखे तथा बहरेकी तरह बिना किसीकी बात सुने, घरसे निकल पड़े। हृदयमें उस परब्रह्मका ध्यान करते हुए, जिसको प्राप्त करके फिर लौटना नहीं होता, उन्होंने उत्तर दिशाकी यात्रा की, जिस ओर पहले बड़े-बड़े महात्माजन जा चुके हैं ।।४४।।

भीमसेन, अर्जुन आदि युधिष्ठिरके छोटे भाइयोंने भी देखा कि अब पृथ्वीमें सभी लोगोंको अधर्मके सहायक कलियुगने प्रभावित कर डाला है; इसलिये वे भी श्रीकृष्णचरणोंकी प्राप्तिका दृढ़ निश्चय करके अपने बड़े भाईके पीछे-पीछे चल पड़े ।।४५।। उन्होंने जीवनके सभी लाभ भलीभाँति प्राप्त कर लिये थे; इसलिये यह निश्चय करके कि भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमल ही हमारे परम पुरुषार्थ हैं, उन्होंने उन्हें हृदयमें धारण किया ।।४६।। पाण्डवोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंके ध्यानसे भक्ति-भाव उमड़ आया, उनकी बुद्धि सर्वथा शुद्ध होकर भगवान् श्रीकृष्णके उस सर्वोत्कृष्ट स्वरूपमें अनन्यभावसे स्थिर हो गयी; जिसमें निष्पाप पुरुष ही स्थिर हो पाते हैं। फलतः उन्होंने अपने विशुद्ध अन्तःकरणसे स्वयं ही वह गति प्राप्त की, जो विषयासक्त दुष्ट मनुष्योंको कभी प्राप्त

******ebook converter DEMO Watermarks*******

नहीं हो सकती ।।४७-४८।। संयमी एवं श्रीकृष्णके प्रेमावेशमें मुग्ध भगवन्मय विदुरजीने भी अपने शरीरको प्रभासक्षेत्रमें त्याग दिया। उस समय उन्हें लेनेके लिये आये हुए पितरोंके साथ वे अपने लोक (यमलोक)-को चले गये ।।४९।। द्रौपदीने देखा कि अब पाण्डवलोग निरपेक्ष हो गये हैं; तब वे अनन्यप्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णका ही चिन्तन करके उन्हें प्राप्त हो गयीं ।।५०।।

ते साधुकृतसर्वार्था[१] ज्ञात्वाऽऽत्यन्तिकमात्मनः ।
मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ।।४६

तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे ।
तस्मिन् नारायणपदे एकान्तमतयो[२] गतिम् ।।४७

अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः ।
विधूतकल्मषास्थाने विरजेनात्मनैव हि ।।४८

विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान्[३] ।
कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ।।४९

द्रौपदी च तदाऽऽज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् ।
वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिराप तम् ।।५०

यः श्रद्धयैतद् भगवत्प्रियाणां
पाण्डोः सुतानामिति सम्प्रयाणम् ।
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं
लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ।।५१

भगवान्के प्यारे भक्त पाण्डवोंके महाप्रयाणकी इस परम पवित्र और मंगलमयी कथाको जो पुरुष श्रद्धासे सुनता है, वह निश्चय ही भगवान्की भक्ति और मोक्ष प्राप्त करता है ।।५१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे पाण्डवस्वर्गारोहणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

---

[*] एक बार राजा दुर्योधनने महर्षि दुर्वासाकी बड़ी सेवा की। उससे प्रसन्न होकर मुनिने दुर्योधनसे वर माँगनेको कहा। दुर्योधनने यह सोचकर कि ऋषिके शापसे पाण्डवोंको नष्ट

******ebook converter DEMO Watermarks*******

करनेका अच्छा अवसर है, मुनिसे कहा—"ब्रह्मन्! हमारे कुलमें युधिष्ठिर प्रधान हैं, आप अपने दस सहस्र शिष्योंसहित उनका आतिथ्य स्वीकार करें। किंतु आप उनके यहाँ उस समय जायँ जबकि द्रौपदी भोजन कर चुकी हो, जिससे उसे भूखका कष्ट न उठाना पड़े।" द्रौपदीके पास सूर्यकी दी हुई एक ऐसी बटलोई थी, जिसमें सिद्ध किया हुआ अन्न द्रौपदीके भोजन कर लेनेसे पूर्व शेष नहीं होता था; किन्तु उसके भोजन करनेके बाद वह समाप्त हो जाता था। दुर्वासाजी दुर्योधनके कथनानुसार उसके भोजन कर चुकनेपर मध्याह्नमें अपनी शिष्यमण्डलीसहित पहुँचे और धर्मराजसे बोले—"हम नदीपर स्नान करने जाते हैं, तुम हमारे लिये भोजन तैयार रखना।" इससे द्रौपदीको बड़ी चिन्ता हुई और उसने अति आर्त होकर आर्तबन्धु भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ली। भगवान् तुरंत ही अपना विलासभवन छोड़कर द्रौपदीकी झोंपड़ीपर आये और उससे बोले—"कृष्णे! आज बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेको दो।" द्रौपदी भगवान्‌की इस अनुपम दयासे गद्‌गद हो गयी और बोली, "प्रभो! मेरा बड़ा भाग्य है, जो आज विश्वम्भरने मुझसे भोजन माँगा; परन्तु क्या करूँ? अब तो कुटीमें कुछ भी नहीं है।" भगवान्‌ने कहा—"अच्छा, वह पात्र तो लाओ; उसमें कुछ होगा ही।" द्रौपदी बटलोई ले आयी; उसमें कहीं शाकका एक कण लगा था। विश्वात्मा हरिने उसीको भोग लगाकर त्रिलोकीको तृप्त कर दिया और भीमसेनसे कहा कि मुनिमण्डलीको भोजनके लिये बुला लाओ। किन्तु मुनिगण तो पहले ही तृप्त होकर भाग गये थे। (महाभारत)

१. प्रा० पा०—पुरु। २. प्रा० पा०—कृप। ३. प्रा० पा०—सह उज्जहार।

१. प्रा० पा०—सत्त्वार्थाः। २. प्रा० पा०—गतयो। ३. प्रा० पा०—देहमात्मनः।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ षोडशोऽध्यायः
परीक्षित्‌की दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वीका संवाद

सूत उवाच

ततः परीक्षिद् द्विजवर्यशिक्षया
महीं महाभागवतः शशास ह ।
यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः
समादिशन् विप्र महद्गुणस्तथा ।।१

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! पाण्डवोंके महाप्रयाणके पश्चात् भगवान्‌के परम भक्त राजा परीक्षित् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी शिक्षाके अनुसार पृथ्वीका शासन करने लगे। उनके जन्मके समय ज्योतिषियोंने उनके सम्बन्धमें जो कुछ कहा था, वास्तवमें वे सभी महान् गुण उनमें विद्यमान थे ।।१।।

स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम् ।
जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत् सुतान् ।।२

आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान् ।
शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षिगोचराः ।।३

निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् ।
नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ।।४

शौनक उवाच

कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः ।
नृदेवचिह्नधृक् शूद्रकोऽसौ गां यः पदाहनत् ।
तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम्[१] ।।५

अथवास्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम् ।
किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः ।।६

क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

इहोपहूतो भगवान् मृत्युः शामित्रकर्मणि ।।७

न कश्चिन्म्रियते तावद् यावदास्त इहान्तकः ।
एतदर्थं हि भगवानाहूतः[२] परमर्षिभिः ।
अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः ।।८

मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै ।
निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ।।९

उन्होंने उत्तरकी पुत्री इरावतीसे विवाह किया। उससे उन्होंने जनमेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न किये ।।२।। तथा कृपाचार्यको आचार्य बनाकर उन्होंने गंगाके तटपर तीन अश्वमेधयज्ञ किये, जिनमें ब्राह्मणोंको पुष्कल दक्षिणा दी गयी। उन यज्ञोंमें देवताओंने प्रत्यक्षरूपमें प्रकट होकर अपना भाग ग्रहण किया था ।।३।। एक बार दिग्विजय करते समय उन्होंने देखा कि शूद्रके रूपमें कलियुग राजाका वेष धारण करके एक गाय और बैलके जोड़ेको ठोकरोंसे मार रहा है। तब उन्होंने उसे बलपूर्वक पकड़कर दण्ड दिया ।।४।।

शौनकजीने पूछा—महाभाग्यवान् सूतजी! दिग्विजयके समय महाराज परीक्षित्ने कलियुगको दण्ड देकर ही क्यों छोड़ दिया—मार क्यों नहीं डाला? क्योंकि राजाका वेष धारण करनेपर भी था तो वह अधम शूद्र ही, जिसने गायको लातसे मारा था? यदि यह प्रसंग भगवान् श्रीकृष्णकी लीलासे अथवा उनके चरणकमलोंके मकरन्द-रसका पान करनेवाले रसिक महानुभावोंसे सम्बन्ध रखता हो तो अवश्य कहिये। दूसरी व्यर्थकी बातोंसे क्या लाभ। उनमें तो आयु व्यर्थ नष्ट होती है ।।५-६।।

प्यारे सूतजी! जो लोग चाहते तो हैं मोक्ष परन्तु अल्पायु होनेके कारण मृत्युसे ग्रस्त हो रहे हैं, उनके कल्याणके लिये भगवान् यमका आवाहन करके उन्हें यहाँ शामित्रकर्ममें नियुक्त कर दिया गया है ।।७।। जबतक यमराज यहाँ इस कर्ममें नियुक्त हैं, तबतक किसीकी मृत्यु नहीं होगी। मृत्युसे ग्रस्त मनुष्यलोकके जीव भी भगवान्की सुधातुल्य लीला-कथाका पान कर सकें, इसीलिये महर्षियोंने भगवान् यमको यहाँ बुलाया है ।।८।। एक तो थोड़ी आयु और दूसरे कम समझ। ऐसी अवस्थामें संसारके मन्दभाग्य विषयी पुरुषोंकी आयु व्यर्थ ही बीती जा रही है—नींदमें रात और व्यर्थके कामोंमें दिन ।।९।।

सूत उवाच

यदा परीक्षित् कुरुजाङ्गलेऽवसन्
कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ।
निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः
शरासनं संयुगशौण्डिराददे[१] ।।१०

******ebook converter DEMO Watermarks*******

स्वलङ्कृतं श्यामतुरङ्गयोजितं
रथं मृगेन्द्रध्वजमाश्रितः पुरात् ।
वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया
स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ।।११

भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान् कुरून् ।
किम्पुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ।।१२

तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ।
प्रगीयमाणं[२] च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ।।१३

आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ।
स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ।।१४

तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः ।
महाधनानि वासांसि ददौ हारान् महामनाः ।।१५

सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्य-
वीरासनानुगमनस्तवनप्रणामान् ।
स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च[३] विष्णो-
र्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ।।१६

सूतजीने कहा—जिस समय राजा परीक्षित् कुरुजांगल देशमें सम्राट्के रूपमें निवास कर रहे थे, उस समय उन्होंने सुना कि मेरी सेनाद्वारा सुरक्षित साम्राज्यमें कलियुगका प्रवेश हो गया है। इस समाचारसे उन्हें दुःख तो अवश्य हुआ; परन्तु यह सोचकर कि युद्ध करनेका अवसर हाथ लगा, वे उतने दुःखी नहीं हुए। इसके बाद युद्धवीर परीक्षित्ने धनुष हाथमें ले लिया ।।१०।। वे श्यामवर्णके घोड़ोंसे जुते हुए, सिंहकी ध्वजावाले, सुसज्जित रथपर सवार होकर दिग्विजय करनेके लिये नगरसे बाहर निकल पड़े। उस समय रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेना उनके साथ-साथ चल रही थी ।।११।। उन्होंने भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तरकुरु और किम्पुरुष आदि सभी वर्षोंको जीतकर वहाँके राजाओंसे भेंट ली ।।१२।। उन्हें उन देशोंमें सर्वत्र अपने पूर्वज महात्माओंका सुयश सुननेको मिला। उस यशोगानसे पद-पदपर भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा प्रकट होती थी ।।१३।। इसके साथ ही उन्हें यह भी सुननेको मिलता था कि भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रकी ज्वालासे किस प्रकार उनकी रक्षा की थी, यदुवंशी और पाण्डवोंमें परस्पर कितना प्रेम था तथा पाण्डवोंकी भगवान् श्रीकृष्णमें

******ebook converter DEMO Watermarks*******

कितनी भक्ति थी ।।१४।। जो लोग उन्हें ये चरित्र सुनाते, उनपर महामना राजा परीक्षित् बहुत प्रसन्न होते; उनके नेत्र प्रेमसे खिल उठते। वे बड़ी उदारतासे उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और मणियोंके हार उपहाररूपमें देते ।।१५।। वे सुनते कि भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमपरवश होकर पाण्डवोंके सारथिका काम किया, उनके सभासद् बने—यहाँतक कि उनके मनके अनुसार काम करके उनकी सेवा भी की। उनके सखा तो थे ही, दूत भी बने। वे रातको शस्त्र ग्रहण करके वीरासनसे बैठ जाते और शिविरका पहरा देते, उनके पीछे-पीछे चलते, स्तुति करते तथा प्रणाम करते; इतना ही नहीं, अपने प्रेमी पाण्डवोंके चरणोंमें उन्होंने सारे जगतको झुका दिया। तब परीक्षित्की भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें और भी बढ़ जाती ।।१६।। इस प्रकार वे दिन-दिन पाण्डवोंके आचरणका अनुसरण करते हुए दिग्विजय कर रहे थे। उन्हीं दिनों उनके शिविरसे थोड़ी ही दूरपर एक आश्चर्यजनक घटना घटी। वह मैं आपको सुनाता हूँ ।।१७।। धर्म बैलका रूप धारण करके एक पैरसे घूम रहा था। एक स्थानपर उसे गायके रूपमें पृथ्वी मिली। पुत्रकी मृत्युसे दुःखिनी माताके समान उसके नेत्रोंसे आँसुओंके झरने झर रहे थे। उसका शरीर श्रीहीन हो गया था। धर्म पृथ्वीसे पूछने लगा ।।१८।।

तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ।
नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत् तन्निबोध मे।।१७

धर्मः पदैकेन चरन् विच्छायामुपलभ्य गाम् ।
पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ।।१८

धर्म उवाच

कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते
विच्छायासि म्लायतेषन्मुखेन ।
आलक्षये भवतीमन्तराधिं
दूरे बन्धुं शोचसि कञ्चनाम्ब ।।१९

पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपाद-
मात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ।
आहो सुरादीन् हृतयज्ञभागान्
प्रजा उत स्विन्मघवत्यवर्षति ।।२०

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान्
शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ।
वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्म-

******ebook converter DEMO Watermarks*******

ण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ।।२१

किं क्षत्रबन्धून् कलिनोपसृष्टान्
राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ।
इतस्ततो वाशनपानवासः-
स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ।।२२

धर्मने कहा—कल्याणि! कुशलसे तो हो न? तुम्हारा मुख कुछ-कुछ मलिन हो रहा है। तुम श्रीहीन हो रही हो, मालूम होता है तुम्हारे हृदयमें कुछ-न-कुछ दुःख अवश्य है। क्या तुम्हारा कोई सम्बन्धी दूर देशमें चला गया है, जिसके लिये तुम इतनी चिन्ता कर रही हो? ।।१९।।

कहीं तुम मेरी तो चिन्ता नहीं कर रही हो कि अब इसके तीन पैर टूट गये, एक ही पैर रह गया है? सम्भव है, तुम अपने लिये शोक कर रही हो कि अब शूद्र तुम्हारे ऊपर शासन करेंगे। तुम्हें इन देवताओंके लिये भी खेद हो सकता है, जिन्हें अब यज्ञोंमें आहुति नहीं दी जाती, अथवा उस प्रजाके लिये भी, जो वर्षा न होनेके कारण अकाल एवं दुर्भिक्षसे पीड़ित हो रही है ।।२०।।

देवि! क्या तुम राक्षस-सरीखे मनुष्योंके द्वारा सतायी हुई अरक्षित स्त्रियों एवं आर्तबालकोंके लिये शोक कर रही हो? सम्भव है, विद्या अब कुकर्मी-ब्राह्मणोंके चंगुलमें पड़ गयी है और ब्राह्मण विप्रद्रोही राजाओंकी सेवा करने लगे हैं, और इसीका तुम्हें दुःख हो ।।२१।।

आजके नाममात्रके राजा तो सोलहों आने कलियुगी हो गये हैं, उन्होंने बड़े-बड़े देशोंको भी उजाड़ डाला है। क्या तुम उन राजाओं या देशोंके लिये शोक कर रही हो? आजकी जनता खान-पान, वस्त्र, स्नान और स्त्री-सहवास आदिमें शास्त्रीय नियमोंका पालन न करके स्वेच्छाचार कर रही है; क्या इसके लिये तुम दुःखी हो? ।।२२।।

यद्वाम्ब ते भूरिभरावतार-
कृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ।
अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा
कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ।।२३

इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं
वसुन्धरे येन विकर्शितासि ।
कालेन वा ते बलिनां बलीयसा
सुरार्चितं किं हृतमम्ब सौभगम् ।।२४

धरण्युवाच[१]

******ebook converter DEMO Watermarks*******

भवान्[२] हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि ।
चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ।।२५

सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः[३] सन्तोष आर्जवम् ।
शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ।।२६

ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं[४] स्मृतिः ।
स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं[५] मार्दवमेव च ।।२७

प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ।
गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहङ्कृतिः ।।२८

एते[६] चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ।
प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित् ।।२९

तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतम् ।
शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ।।३०

आत्मानं चानुशोचामि भवन्तं चामरोत्तमम् ।
देवान् पितॄनृषीन् साधून् सर्वान् वर्णांस्तथाऽऽश्रमान् ।।३१

मा पृथ्वी! अब समझमें आया, हो-न-हो तुम्हें भगवान् श्रीकृष्णकी याद आ रही होगी; क्योंकि उन्होंने तुम्हारा भार उतारनेके लिये ही अवतार लिया था और ऐसी लीलाएँ की थीं, जो मोक्षका भी अवलम्बन हैं। अब उनके लीला-संवरण कर लेनेपर उनके परित्यागसे तुम दुःखी हो रही हो ।।२३।। देवि! तुम तो धन-रत्नोंकी खान हो। तुम अपने क्लेशका कारण, जिससे तुम इतनी दुर्बल हो गयी हो, मुझे बतलाओ। मालूम होता है, बड़े-बड़े बलवानोंको भी हरा देनेवाले कालने देवताओंके द्वारा वन्दनीय तुम्हारे सौभाग्यको छीन लिया है ।।२४।।

पृथ्वीने कहा—धर्म! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो, वह सब स्वयं जानते हो। जिन भगवान्‌के सहारे तुम सारे संसारको सुख पहुँचानेवाले अपने चारों चरणोंसे युक्त थे, जिनमें सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सरलता, शम, दम, तप, समता, तितिक्षा, उपरति, शास्त्रविचार, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, वीरता, तेज, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, कौशल, कान्ति, धैर्य, कोमलता, निर्भीकता, विनय, शील, साहस, उत्साह, बल, सौभाग्य, गम्भीरता, स्थिरता, आस्तिकता, कीर्ति, गौरव और निरहंकारता—ये उनतालीस अप्राकृत गुण तथा महत्त्वाकांक्षी पुरुषोंके द्वारा वाञ्छनीय (शरणागतवत्सलता आदि) और भी बहुत-से महान् गुण उनकी

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सेवा करनेके लिये नित्य-निरन्तर निवास करते हैं, एक क्षणके लिये भी उनसे अलग नहीं होते —उन्हीं समस्त गुणोंके आश्रय, सौन्दर्यधाम भगवान् श्रीकृष्णने इस समय इस लोकसे अपनी लीला संवरण कर ली और यह संसार पापमय कलियुगकी कुदृष्टिका शिकार हो गया। यही देखकर मुझे बड़ा शोक हो रहा है ।।२५-३०।। अपने लिये, देवताओंमें श्रेष्ठ तुम्हारे लिये, देवता, पितर, ऋषि, साधु और समस्त वर्णों तथा आश्रमोंके मनुष्योंके लिये मैं शोकग्रस्त हो रही हूँ ।।३१।।

ब्रह्मादयो बहुतिथं[१] यदपाङ्गमोक्ष-
कामास्तपः[२] समचरन् भगवत्प्रपन्नाः ।
सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय
यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ।।३२

तस्याहमब्जकुलिशाङ्कुशकेतुकेतैः
श्रीमत्पदैर्भगवतः समलङ्कृताङ्गी ।
त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो[३] विभूतिं
लोकान् स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ।।३३

यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञा-
मक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ।
त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण
सम्पादयन् यदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ।।३४

का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य
प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ।
स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां
रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिविटङ्कितायाः ।।३५

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ।
परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ।।३६

जिनका कृपाकटाक्ष प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मा आदि देवता भगवान्‌के शरणागत होकर बहुत दिनोंतक तपस्या करते रहे, वही लक्ष्मीजी अपने निवासस्थान कमलवनका परित्याग करके बड़े प्रेमसे जिनके चरणकमलोंकी सुभग छत्रछायाका सेवन करती हैं, उन्हीं भगवान्‌के कमल, वज्र, अंकुश, ध्वजा आदि चिह्नोंसे युक्त श्रीचरणोंसे विभूषित होनेके कारण मुझे महान् वैभव प्राप्त हुआ था और मेरी तीनों लोकोंसे बढ़कर शोभा हुई थी; परन्तु मेरे

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सौभाग्यका अब अन्त हो गया! भगवान्‌ने मुझ अभागिनीको छोड़ दिया! मालूम होता है मुझे अपने सौभाग्यपर गर्व हो गया था, इसीलिये उन्होंने मुझे यह दण्ड दिया है ।।३२-३३।।

तुम अपने तीन चरणोंके कम हो जानेसे मन-ही-मन कुढ़ रहे थे; अतः अपने पुरुषार्थसे तुम्हें अपने ही अन्दर पुनः सब अंगोंसे पूर्ण एवं स्वस्थ कर देनेके लिये वे अत्यन्त रमणीय श्यामसुन्दर विग्रहसे यदुवंशमें प्रकट हुए और मेरे बड़े भारी भारको, जो असुरवंशी राजाओंकी सैकड़ों अक्षौहिणियोंके रूपमें था, नष्ट कर डाला। क्योंकि वे परम स्वतन्त्र थे ।।३४।। जिन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवन, मनोहर मुसकान और मीठी-मीठी बातोंसे सत्यभामा आदि मधुमयी मानिनियोंके मानके साथ धीरजको भी छीन लिया था और जिनके चरणकमलोंके स्पर्शसे मैं निरन्तर आनन्दसे पुलकित रहती थी, उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका विरह भला कौन सह सकती है ।।३५।।

धर्म और पृथ्वी इस प्रकार आपसमें बातचीत कर ही रहे थे कि उसी समय राजर्षि परीक्षित् पूर्ववाहिनी सरस्वतीके तटपर आ पहुँचे ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे पृथ्वीधर्मसंवादो[४] नाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

---

१. प्रा० पा०—विष्णु। २. प्रा० पा०—भगवानुपहूतो महर्षिभिः।

१. प्रा० पा०—शौण्ड आददे। २. प्रा० पा०—गीयमानं च पुरतः। ३. प्रा० पा०—स्म।

१. प्रा० पा०—धरोवाच। २. प्रा० पा०—भवानेव हि तद्वेद यन्मां। ३. प्रा० पा०—दानं त्यागः। ४. प्रा० पा०—धृतिः। ५. प्रा० पा०—कान्तिः सौभाग्यं मार्दवं क्षमा। ६. प्रा० पा०—इमे।

१. प्रा० पा०—यदनिशं। २. प्रा० पा०—तपोव्रतधरा भगव०। ३. प्रा० पा०—तपोविभूतिं। ४. प्रा० पा०—पारिक्षिते षोड०।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथ सप्तदशोऽध्यायः
महाराज परीक्षित्‌द्वारा कलियुगका दमन

सूत उवाच

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ।
दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ।।१

वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम् ।
वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम्[१] ।।२

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ।
विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां[२] यवसमिच्छतीम् ।।३

पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् ।
मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ।।४

कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान् बली ।
नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाद्विजः ।।५

यस्त्वं कृष्णे गते दूरं सह गाण्डीवधन्वना ।
शोच्योऽस्यशोच्यान् रहसि प्रहरन् वधमर्हसि ।।६

त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ।
वृषरूपेण किं कश्चिद् देवो नः परिखेदयन् ।।७

न जातु पौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते ।
भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन् विना ते प्राणिनां शुचः ।।८

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! वहाँ पहुँचकर राजा परीक्षित्‌ने देखा कि एक राजवेषधारी शूद्र हाथमें डंडा लिये हुए है और गाय-बैलके एक जोड़ेको इस तरह पीटता जा रहा है, जैसे उनका कोई स्वामी ही न हो ।।१।। वह कमलतन्तुके समान श्वेत रंगका बैल एक पैरसे खड़ा काँप रहा था तथा शूद्रकी ताड़नासे पीड़ित और भयभीत होकर मूत्र-त्याग कर रहा था ।।२।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

धर्मोपयोगी दूध, घी आदि हविष्य पदार्थोंको देनेवाली वह गाय भी बार-बार शूद्रके पैरोंकी ठोकरें खाकर अत्यन्त दीन हो रही थी। एक तो वह स्वयं ही दुबली-पतली थी, दूसरे उसका बछड़ा भी उसके पास नहीं था। उसे भूख लगी हुई थी और उसकी आँखोंसे आँसू बहते जा रहे थे ।।३।। स्वर्णजटित रथपर चढ़े हुए राजा परीक्षित्‌ने अपना धनुष चढ़ाकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे उसको ललकारा ।।४।। अरे! तू कौन है, जो बलवान् होकर भी मेरे राज्यके इन दुर्बल प्राणियोंको बलपूर्वक मार रहा है? तूने नटकी भाँति वेष तो राजाका-सा बना रखा है, परन्तु कर्मसे तू शूद्र जान पड़ता है ।।५।। हमारे दादा अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेपर इस प्रकार निर्जन स्थानमें निरपराधोंपर प्रहार करनेवाला तू अपराधी है, अतः वधके योग्य है ।।६।।

उन्होंने धर्मसे पूछा—कमल-नालके समान आपका श्वेतवर्ण है। तीन पैर न होनेपर भी आप एक ही पैरसे चलते-फिरते हैं। यह देखकर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। बतलाइये, आप क्या बैलके रूपमें कोई देवता हैं? ।।७।। अभी यह भूमण्डल कुरुवंशी नरपतियोंके बाहुबलसे सुरक्षित है। इसमें आपके सिवा और किसी भी प्राणीकी आँखोंसे शोकके आँसू बहते मैंने नहीं देखे ।।८।।

मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद् भयम् ।
मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ।।९

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते[१] साध्व्यसाधुभिः ।
तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ।।१०

एष राज्ञां[२] परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः ।
अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ।।११

कोऽवृश्चत् तव पादांस्त्रीन् सौरभेय चतुष्पद[३] ।
मा भूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ।।१२

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ।
आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ।।१३

जनेऽनागस्यघं युञ्जन् सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ।
साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ।।१४

अनागस्स्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः ।
आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ।।१५

******ebook converter DEMO Watermarks*******

राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् ।
शासतोऽन्यान् यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ।।१६

धर्म उवाच

एतद् वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः ।
येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान् कृतः ।।१७

न वयं क्लेशबीजानि यतः[४] स्युः पुरुषर्षभ ।
पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ।।१८

धेनुपुत्र! अब आप शोक न करें। इस शूद्रसे निर्भय हो जायँ। गोमाता! मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ। अब आप रोयें नहीं। आपका कल्याण हो ।।९।।

देवि! जिस राजाके राज्यमें दुष्टोंके उपद्रवसे सारी प्रजा त्रस्त रहती है उस मतवाले राजाकी कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य और परलोक नष्ट हो जाते हैं ।।१०।।

राजाओंका परम धर्म यही है कि वे दुःखियोंका दुःख दूर करें। यह महादुष्ट और प्राणियोंको पीड़ित करनेवाला है। अतः मैं अभी इसे मार डालूँगा ।।११।।

सुरभिनन्दन! आप तो चार पैरवाले जीव हैं। आपके तीन पैर किसने काट डाले? श्रीकृष्णके अनुयायी राजाओंके राज्यमें कभी कोई भी आपकी तरह दुःखी न हो ।।१२।।

वृषभ! आपका कल्याण हो। बताइये, आप-जैसे निरपराध साधुओंका अंग-भंग करके किस दुष्टने पाण्डवोंकी कीर्तिमें कलंक लगाया है? ।।१३।। जो किसी निरपराध प्राणीको सताता है, उसे चाहे वह कहीं भी रहे, मेरा भय अवश्य होगा। दुष्टोंका दमन करनेसे साधुओंका कल्याण ही होता है ।।१४।। जो उद्दण्ड व्यक्ति निरपराध प्राणियोंको दुःख देता है, वह चाहे साक्षात् देवता ही क्यों न हो, मैं उसकी बाजूबंदसे विभूषित भुजाको काट डालूँगा ।।१५।। बिना आपत्तिकालके मर्यादाका उल्लंघन करनेवालोंको शास्त्रानुसार दण्ड देते हुए अपने धर्ममें स्थित लोगोंका पालन करना राजाओंका परम धर्म है ।।१६।।

धर्मने कहा—राजन्! आप महाराज पाण्डुके वंशज हैं। आपका इस प्रकार दुःखियोंको आश्वासन देना आपके योग्य ही है; क्योंकि आपके पूर्वजोंके श्रेष्ठ गुणोंने भगवान् श्रीकृष्णको उनका सारथि और दूत आदि बना दिया था ।।१७।। नरेन्द्र! शास्त्रोंके विभिन्न वचनोंसे मोहित होनेके कारण हम उस पुरुषको नहीं जानते, जिससे क्लेशोंके कारण उत्पन्न होते हैं ।।१८।।

केचिद् विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ।
दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ।।१९

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ।
अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश स्वमनीषया ।।२०

सूत उवाच

एवं धर्मे प्रवदति स सम्राड् द्विजसत्तम ।
समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ।।२१

राजोवाच

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ।
यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ।।२२

अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ।
चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ।।२३

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः ।
अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ।।२४

इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ।
तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ।।२५

इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ।
श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ।।२६

शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताधुना ।
अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ।।२७

जो लोग किसी भी प्रकारके द्वैतको स्वीकार नहीं करते, वे अपने-आपको ही अपने दुःखका कारण बतलाते हैं। कोई प्रारब्धको कारण बतलाते हैं, तो कोई कर्मको। कुछ लोग स्वभावको, तो कुछ लोग ईश्वरको दुःखका कारण मानते हैं ।।१९।। किन्हीं-किन्हींका ऐसा भी निश्चय है कि दुःखका कारण न तो तर्कके द्वारा जाना जा सकता है और न वाणीके द्वारा बतलाया जा सकता है। राजर्षे! अब इनमें कौन-सा मत ठीक है, यह आप अपनी बुद्धिसे ही विचार लीजिये ।।२०।।

सूतजी कहते हैं—ऋषिश्रेष्ठ शौनकजी! धर्मका यह प्रवचन सुनकर सम्राट् परीक्षित्

******ebook converter DEMO Watermarks*******

बहुत प्रसन्न हुए, उनका खेद मिट गया। उन्होंने शान्तचित्त होकर उनसे कहा— ।।२१।।

परीक्षित्ने कहा—धर्मका तत्त्व जाननेवाले वृषभदेव! आप धर्मका उपदेश कर रहे हैं। अवश्य ही आप वृषभके रूपमें स्वयं धर्म हैं। (आपने अपनेको दुःख देनेवालेका नाम इसलिये नहीं बताया है कि) अधर्म करनेवालेको जो नरकादि प्राप्त होते हैं, वे ही चुगली करनेवालेको भी मिलते हैं ।।२२।। अथवा यही सिद्धान्त निश्चित है कि प्राणियोंके मन और वाणीसे परमेश्वरकी मायाके स्वरूपका निरूपण नहीं किया जा सकता ।।२३।। धर्मदेव! सत्ययुगमें आपके चार चरण थे—तप, पवित्रता, दया और सत्य। इस समय अधर्मके अंश गर्व, आसक्ति और मदसे तीन चरण नष्ट हो चुके हैं ।।२४।। अब आपका चौथा चरण केवल 'सत्य' ही बच रहा है। उसीके बलपर आप जी रहे हैं। असत्यसे पुष्ट हुआ यह अधर्मरूप कलियुग उसे भी ग्रास कर लेना चाहता है ।।२५।। ये गौ माता साक्षात् पृथ्वी हैं। भगवान्ने इनका भारी बोझ उतार दिया था और ये उनके राशि-राशि सौन्दर्य बिखेरनेवाले चरणचिह्नोंसे सर्वत्र उत्सवमयी हो गयी थीं ।।२६।। अब ये उनसे बिछुड़ गयी हैं। वे साध्वी अभागिनीके समान नेत्रोंमें जल भरकर यह चिन्ता कर रही हैं कि अब राजाका स्वाँग बनाकर ब्राह्मणद्रोही शूद्र मुझे भोगेंगे ।।२७।।

इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः ।
निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ।।२८
तं जिघांसुमभिप्रेत्य[१] विहाय नृपलाञ्छनम् ।
तत्पादमूलं शिरसा समगाद् भयविह्वलः ।।२९
पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः ।
शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ।।३०

राजोवाच

न ते गुडाकेशयशोधराणां
बद्धाञ्जलेर्वै[२] भयमस्ति किञ्चित् ।
न वर्तितव्यं भवता कथञ्चन
क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ।।३१
त्वां वर्तमानं नरदेवदेहे-
ष्वनु प्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ।
लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो
ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ।।३२
न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो
धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञै-
र्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ।।३३
यस्मिन् हरिर्भगवानिज्यमान
इज्यामूर्तिर्यजतां[३] शं तनोति ।
कामानमोघान् स्थिरजङ्गमाना-
मन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ।।३४

सूत उवाच

परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ।
तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ।।३५

महारथी परीक्षित्ने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको सान्त्वना दी। फिर उन्होंने अधर्मके कारणरूप कलियुगको मारनेके लिये तीक्ष्ण तलवार उठायी ।।२८।।

कलियुग ताड़ गया कि ये तो अब मुझे मार ही डालना चाहते हैं; अतः झटपट उसने अपने राजचिह्न उतार डाले और भयविह्वल होकर उनके चरणोंमें अपना सिर रख दिया ।।२९।।

परीक्षित् बड़े यशस्वी, दीनवत्सल और शरणागतरक्षक थे। उन्होंने जब कलियुगको अपने पैरोंपर पड़े देखा तो कृपा करके उसको मारा नहीं, अपितु हँसते हुए-से उससे कहा ।।३०।।

परीक्षित् बोले—जब तू हाथ जोड़कर शरण आ गया, तब अर्जुनके यशस्वी वंशमें उत्पन्न हुए किसी भी वीरसे तुझे कोई भय नहीं है। परन्तु तू अधर्मका सहायक है, इसलिये तुझे मेरे राज्यमें बिलकुल नहीं रहना चाहिये ।।३१।। तेरे राजाओंके शरीरमें रहनेसे ही लोभ, झूठ, चोरी, दुष्टता, स्वधर्म-त्याग, दरिद्रता, कपट, कलह, दम्भ और दूसरे पापोंकी बढ़ती हो रही है ।।३२।। अतः अधर्मके साथी! इस ब्रह्मावर्तमें तू एक क्षणके लिये भी न ठहरना; क्योंकि यह धर्म और सत्यका निवासस्थान है। इस क्षेत्रमें यज्ञविधिके जाननेवाले महात्मा यज्ञोंके द्वारा यज्ञपुरुष-भगवान्की आराधना करते रहते हैं ।।३३।।

इस देशमें भगवान् श्रीहरि यज्ञोंके रूपमें निवास करते हैं, यज्ञोंके द्वारा उनकी पूजा होती है और वे यज्ञ करनेवालोंका कल्याण करते हैं। वे सर्वात्मा भगवान् वायुकी भाँति समस्त चराचर जीवोंके भीतर और बाहर एकरस स्थित रहते हुए उनकी कामनाओंको पूर्ण करते रहते हैं ।।३४।।

सूतजी कहते हैं—परीक्षित्की यह आज्ञा सुनकर कलियुग सिहर उठा। यमराजके समान मारनेके लिये उद्यत, हाथमें तलवार लिये हुए परीक्षित्से वह बोला— ।।३५।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

कलिरुवाच

यत्र क्वचन[१] वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ।
लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ।।३६

तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि ।
यत्रैव नियतो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ।।३७

सूत उवाच

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ।
द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ।।३८

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ।
ततोऽनृतं मदं[२] कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ।।३९

अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ।
औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत् तन्निदेशकृत् ।।४०

अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ।
विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ।।४१

वृषस्य नष्टांस्त्रीन् पादान् तपः शौचं दयामिति ।
प्रतिसंदध आश्वास्य[३] महीं च समवर्धयत् ।।४२

स एष एतर्ह्यध्यास्त[४] आसनं पार्थिवोचितम् ।
पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ।।४३

आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् ।
गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ।।४४

कलिने कहा—सार्वभौम! आपकी आज्ञासे जहाँ कहीं भी मैं रहनेका विचार करता हूँ, वहीं देखता हूँ कि आप धनुषपर बाण चढ़ाये खड़े हैं ।।३६।। धार्मिकशिरोमणे! आप मुझे वह स्थान बतलाइये, जहाँ मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ स्थिर होकर रह सकूँ ।।३७।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सूतजी कहते हैं—कलियुगकी प्रार्थना स्वीकार करके राजा परीक्षित्‌ने उसे चार स्थान दिये—द्यूत, मद्यपान, स्त्री-संग और हिंसा। इन स्थानोंमें क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता—ये चार प्रकारके अधर्म निवास करते हैं ।।३८।।

उसने और भी स्थान माँगे। तब समर्थ परीक्षित्‌ने उसे रहनेके लिये एक और स्थान —'सुवर्ण' (धन)—दिया। इस प्रकार कलियुगके पाँच स्थान हो गये—झूठ, मद, काम, वैर और रजोगुण ।।३९।।

परीक्षित्‌के दिये हुए इन्हीं पाँच स्थानोंमें अधर्मका मूल कारण कलि उनकी आज्ञाओंका पालन करता हुआ निवास करने लगा ।।४०।।

इसलिये आत्मकल्याणकामी पुरुषको इन पाँचों स्थानोंका सेवन कभी नहीं करना चाहिये। धार्मिक राजा, प्रजावर्गके लौकिक नेता और धर्मोपदेष्टा गुरुओंको तो बड़ी सावधानीसे इनका त्याग करना चाहिये ।।४१।।

राजा परीक्षित्‌ने इसके बाद वृषभरूप धर्मके तीनों चरण—तपस्या, शौच और दया जोड़ दिये और आश्वासन देकर पृथ्वीका संवर्धन किया ।।४२।।

वे ही महाराजा परीक्षित्‌ इस समय अपने राजसिंहासनपर, जिसे उनके पितामह महाराज युधिष्ठिरने वनमें जाते समय उन्हें दिया था, विराजमान हैं। ।।४३।।

वे परम यशस्वी सौभाग्यभाजन चक्रवर्ती सम्राट्‌ राजर्षि परीक्षित्‌ इस समय हस्तिनापुरमें कौरव-कुलकी राज्यलक्ष्मीसे शोभायमान हैं ।।४४।।

इत्थम्भूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ।
यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ।।४५

अभिमन्युनन्दन राजा परीक्षित्‌ वास्तवमें ऐसे ही प्रभावशाली हैं, जिनके शासनकालमें आपलोग इस दीर्घकालीन यज्ञके लिये दीक्षित हुए हैं* ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

---

१. प्रा० पा०—पीडितम्‌। २. प्रा० पा०—कृशां।

१. प्रा० पा०—मातर्हिंस्यन्ते। २. प्रा० पा०—राज्ञः। ३. प्रा० पा० चतुष्पदः। ४. प्रा० पा० —यतस्व।

१. प्रा० पा०—प्रेक्ष्य। २. प्रा० पा०—बद्धाञ्जलेस्ते। ३. प्रा० पा०—इष्टात्ममूर्ति०।

१. प्रा० पा०—क्व चाथ। २. प्रा० पा०—मदः कामो। ३. प्रा० पा०—आस्थाय—४. प्रा० पा०—एतदध्यास्त।

* ४३ से ४५ तकके श्लोकोंमें महाराज परीक्षित्‌का वर्तमानके समान वर्णन किया गया

******ebook converter DEMO Watermarks*******

है। 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' (पा० सू० ३। ३। १३१) इस पाणिनि-सूत्रके अनुसार वर्तमानके निकटवर्ती भूत और भविष्यके लिये भी वर्तमानका प्रयोग किया जा सकता है। जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजने अपनी टीकामें लिखा है कि यद्यपि परीक्षित्की मृत्यु हो गयी थी, फिर भी उनकी कीर्ति और प्रभाव वर्तमानके समान ही विद्यमान थे। उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये उनकी दूरी यहाँ मिटा दी गयी है। उन्हें भगवान्का सायुज्य प्राप्त हो गया था, इसलिये भी सूतजीको वे अपने सम्मुख ही दीख रहे हैं। न केवल उन्हींको, बल्कि सबको इस बातकी प्रतीति हो रही है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इस श्रुतिके अनुसार जनमेजयके रूपमें भी वही राजसिंहासनपर बैठे हुए हैं। इन सब कारणोंसे वर्तमानके रूपमें उनका वर्णन भी कथाके रसको पुष्ट ही करता है।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथाष्टादशोऽध्यायः
राजा परीक्षित्‌को शृंगी ऋषिका शाप

सूत उवाच

यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ।
अनुग्रहाद् भगवतः कृष्णस्याद्‌भुतकर्मणः ।।१
ब्रह्मकोपोत्थिताद् यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् ।
न सम्मुमोहोरुभयाद् भगवत्यर्पिताशयः ।।२
उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः ।
वैयासकेर्जहौ शिष्यो गङ्गायां स्वं कलेवरम् ।।३
नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् ।
स्यात्सम्भ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ।।४
तावत्कलिर्न प्रभवेत् प्रविष्टोऽपीह सर्वतः ।
यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ।।५

सूतजी कहते हैं—अद्‌भुत कर्मा भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे राजा परीक्षित् अपनी माताकी कोखमें अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जल जानेपर भी मरे नहीं ।।१।। जिस समय ब्राह्मणके शापसे उन्हें डसनेके लिये तक्षक आया, उस समय वे प्राणनाशके महान् भयसे भी भयभीत नहीं हुए; क्योंकि उन्होंने अपना चित्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित कर रखा था ।।२।। उन्होंने सबकी आसक्ति छोड़ दी, गंगातटपर जाकर श्रीशुकदेवजीसे उपदेश ग्रहण किया और इस प्रकार भगवान्‌के स्वरूपको जानकर अपने शरीरको त्याग दिया ।।३।। जो लोग भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथा कहते रहते हैं, उस कथामृतका पान करते रहते हैं और इन दोनों ही साधनोंके द्वारा उनके चरण-कमलोंका स्मरण करते रहते हैं, उन्हें अन्तकालमें भी मोह नहीं होता ।।४।। जबतक पृथ्वीपर अभिमन्युनन्दन महाराज परीक्षित् सम्राट् रहे, तबतक चारों ओर व्याप्त हो जानेपर भी कलियुगका कुछ भी प्रभाव नहीं था ।।५।। वैसे तो जिस दिन, जिस क्षण श्रीकृष्णने पृथ्वीका परित्याग किया, उसी समय पृथ्वीमें अधर्मका मूलकारण कलियुग आ गया था ।।६।। भ्रमरके समान सारग्राही सम्राट् परीक्षित् कलियुगसे कोई द्वेष नहीं रखते थे; क्योंकि इसमें यह एक बहुत बड़ा गुण है कि पुण्यकर्म तो संकल्पमात्रसे ही फलीभूत हो जाते हैं, परन्तु पापकर्मका फल शरीरसे करनेपर ही मिलता है; संकल्पमात्रसे नहीं ।।७।। यह भेड़ियेके समान बालकोंके प्रति शूरवीर और धीर वीर पुरुषोंके लिये बड़ा भीरु है। यह प्रमादी मनुष्योंको अपने वशमें करनेके लिये ही सदा सावधान रहता है ।।८।। शौनकादि ऋषियो! आपलोगोंको मैंने भगवान्‌की कथासे युक्त राजा परीक्षित्‌का पवित्र चरित्र

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सुनाया। आपलोगोंने यही पूछा था ।।९।। भगवान् श्रीकृष्ण कीर्तन करनेयोग्य बहुत-सी लीलाएँ करते हैं। इसलिये उनके गुण और लीलाओंसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी कथाएँ हैं, कल्याणकामी पुरुषोंको उन सबका सेवन करना चाहिये ।।१०।।

यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् ।
तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ।।६

नानुद्वेष्टि[१] कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ।
कुशलान्याशु सिद्ध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ।।७

किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा ।
अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको[२] नृषु वर्तते ।।८

उपवर्णितमेतद् वः[३] पुण्यं पारीक्षितं मया ।
वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ।।९

या याः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः ।
गुणकर्माश्रयाः पुम्भिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ।।१०

ऋषय ऊचुः

सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ।
यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ।।११

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ।
आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ।।१२

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ।।१३

को नाम तृप्येद् रसवित्कथायां
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मु-
र्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ।।१४

******ebook converter DEMO Watermarks*******

ऋषियोंने कहा—सौम्यस्वभाव सूतजी! आप युग-युग जीयें; क्योंकि मृत्युके प्रवाहमें पड़े हुए हमलोगोंको आप भगवान् श्रीकृष्णकी अमृतमयी उज्ज्वल कीर्तिका श्रवण कराते हैं ।।११।। यज्ञ करते-करते उसके धूएँसे हमलोगोंका शरीर धूमिल हो गया है। फिर भी इस कर्मका कोई विश्वास नहीं है। इधर आप तो वर्तमानमें ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका मादक और मधुर मधु पिलाकर हमें तृप्त कर रहे हैं ।।१२।। भगवत्-प्रेमी भक्तोंके लवमात्रके सत्संगसे स्वर्ग एवं मोक्षकी भी तुलना नहीं की जा सकती; फिर मनुष्योंके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है ।।१३।। ऐसा कौन रस-मर्मज्ञ होगा, जो महापुरुषोंके एकमात्र जीवनसर्वस्व श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंसे तृप्त हो जाय? समस्त प्राकृत गुणोंसे अतीत भगवान्‌के अचिन्त्य अनन्त कल्याणमय गुणगणोंका पार तो ब्रह्मा, शंकर आदि बड़े-बड़े योगेश्वर भी नहीं पा सके ।।१४।। विद्वन्! आप भगवान्‌को ही अपने जीवनका ध्रुवतारा मानते हैं। इसलिये आप सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय भगवान्‌के उदार और विशुद्ध चरित्रोंका हम श्रद्धालु श्रोताओंके लिये विस्तारसे वर्णन कीजिये ।।१५।। भगवान्‌के परम प्रेमी महाबुद्धि परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीके उपदेश किये हुए जिस ज्ञानसे मोक्षस्वरूप भगवान्‌के चरणकमलोंको प्राप्त किया, आप कृपा करके उसी ज्ञान और परीक्षित्‌के परम पवित्र उपाख्यानका वर्णन कीजिये; क्योंकि उसमें कोई बात छिपाकर नहीं कही गयी होगी और भगवत्प्रेमकी अद्‌भुत योगनिष्ठाका निरूपण किया गया होगा। उसमें पद-पदपर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन हुआ होगा। भगवान्‌के प्यारे भक्तोंको वैसा प्रसंग सुननेमें बड़ा रस मिलता है ।।१६-१७।।

तन्नो[१] भवान् वै भगवत्प्रधानो
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
हरेरुदारं चरितं विशुद्धं
शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन्[२] ।।१५

स वै महाभागवतः परीक्षिद्
येनापवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः ।
ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन
भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम् ।।१६

तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थ-
माख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ।
आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं
पारीक्षितं भागवताभिरामम् ।।१७

सूत उवाच

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म
वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः ।
दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं
महत्तमानामभिधानयोगः ।।१८

कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो
महद्गुणत्वाद् यमनन्तमाहुः ।।१९

एतावतालं ननु[३] सूचितेन
गुणैरसाम्यानतिशायनस्य[४] ।
हित्वेतरान् प्रार्थयतो विभूति-
र्यस्याङ्घ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ।।२०

सूतजी कहते हैं—अहो! विलोम* जातिमें उत्पन्न होनेपर भी महात्माओंकी सेवा करनेके कारण आज हमारा जन्म सफल हो गया। क्योंकि महापुरुषोंके साथ बातचीत करनेमात्रसे ही नीच कुलमें उत्पन्न होनेकी मनोव्यथा शीघ्र ही मिट जाती है ।।१८।।

फिर उन लोगोंकी तो बात ही क्या है, जो सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय भगवान्का नाम लेते हैं! भगवान्की शक्ति अनन्त है, वे स्वयं अनन्त हैं। वास्तवमें उनके गुणोंकी अनन्तताके कारण ही उन्हें अनन्त कहा गया है ।।१९।।

भगवान्के गुणोंकी समता भी जब कोई नहीं कर सकता, तब उनसे बढ़कर तो कोई हो ही कैसे सकता है। उनके गुणोंकी यह विशेषता समझानेके लिये इतना कह देना ही पर्याप्त है कि लक्ष्मीजी अपनेको प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रार्थना करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको छोड़कर भगवान्के न चाहनेपर भी उनके चरणकमलोंकी रजका ही सेवन करती हैं ।।२०।।

अथापि यत्पादनखावसृष्टं
जगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ।
सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्
को नाम लोके भगवत्पदार्थः ।।२१

यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा
व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ।
व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं

******ebook converter DEMO Watermarks*******

यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ।।२२

अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भि-
राचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् ।
नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्त्रिण-
स्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ।।२३

एकदा धनुरुद्यम्य विचरन् मृगयां वने ।
मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ।।२४

जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ।
ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ।।२५

प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् ।
स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ।।२६

विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ।
विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ।।२७

अलब्धतृणभूम्यादिरसम्प्राप्तार्घ्यसूनृतः ।
अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ।।२८

ब्रह्माजीने भगवान्‌के चरणोंका प्रक्षालन करनेके लिये जो जल समर्पित किया था, वही उनके चरणनखोंसे निकलकर गंगाजीके रूपमें प्रवाहित हुआ। यह जल महादेवजीसहित सारे जगत्‌को पवित्र करता है। ऐसी अवस्थामें त्रिभुवनमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त 'भगवान्' शब्दका दूसरा और क्या अर्थ हो सकता है ।।२१।। जिनके प्रेमको प्राप्त करके धीर पुरुष बिना किसी हिचकके देह-गेह आदिकी दृढ़ आसक्तिको छोड़ देते हैं और उस अन्तिम परमहंस-आश्रमको स्वीकार करते हैं, जिसमें किसीको कष्ट न पहुँचाना और सब ओरसे उपशान्त हो जाना ही स्वधर्म होता है ।।२२।। सूर्यके समान प्रकाशमान महात्माओ! आपलोगोंने मुझसे जो कुछ पूछा है, वह मैं अपनी समझके अनुसार सुनाता हूँ। जैसे पक्षी अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उड़ते हैं, वैसे ही विद्वान्‌लोग भी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार ही श्रीकृष्णकी लीलाका वर्णन करते हैं ।।२३।।

एक दिन राजा परीक्षित् धनुष लेकर वनमें शिकार खेलने गये हुए थे। हरिणोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते वे थक गये और उन्हें बड़े जोरकी भूख और प्यास लगी ।।२४।। जब कहीं उन्हें कोई जलाशय नहीं मिला, तब वे पासके ही एक ऋषिके आश्रममें घुस गये। उन्होंने देखा कि

******ebook converter DEMO Watermarks*******

वहाँ आँखें बंद करके शान्तभावसे एक मुनि आसनपर बैठे हुए हैं ।।२५।। इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धिके निरुद्ध हो जानेसे वे संसारसे ऊपर उठ गये थे। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंसे रहित निर्विकार ब्रह्मरूप तुरीय पदमें वे स्थित थे ।।२६।। उनका शरीर बिखरी हुई जटाओंसे और कृष्ण मृगचर्मसे ढका हुआ था। राजा परीक्षित्ने ऐसी ही अवस्थामें उनसे जल माँगा, क्योंकि प्याससे उनका गला सूखा जा रहा था ।।२७।। जब राजाको वहाँ बैठनेके लिये तिनकेका आसन भी न मिला, किसीने उन्हें भूमिपर भी बैठनेको न कहा—अर्घ्य और आदरभरी मीठी बातें तो कहाँसे मिलतीं—तब अपनेको अपमानित-सा मानकर वे क्रोधके वश हो गये ।।२८।।

अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः ।
ब्राह्मणं प्रत्यभूद् ब्रह्मन् मत्सरो मन्युरेव च ।।२९

स[१] तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा ।
विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत्[२] ।।३०

एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः ।
मृषासमाधिराहोस्वित्किं नु स्यात्क्षत्रबन्धुभिः ।।३१

तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन् बालकोऽर्भकैः ।
राज्ञाघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ।।३२

अहो अधर्मः पालानां पीन्नां बलिभुजामिव ।
स्वामिन्यघं यद् दासानां द्वारपानां शुनामिव ।।३३

ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो[३] निरूपितः ।
स कथं तद्गृहे द्वाःस्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति[४] ।।३४

कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् ।
तद्भिन्नसेतूनद्याहं[५] शास्मि पश्यत मे बलम् ।।३५

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकः ।
कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ।।३६

इति[६] लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम्[७] ।।३७

शौनकजी! वे भूख-प्याससे छटपटा रहे थे, इसलिये एकाएक उन्हें ब्राह्मणके प्रति ईर्ष्या और क्रोध हो आया। उनके जीवनमें इस प्रकारका यह पहला ही अवसर था ।।२९।। वहाँसे लौटते समय उन्होंने क्रोधवश धनुषकी नोकसे एक मरा साँप उठाकर ऋषिके गलेमें डाल दिया और अपनी राजधानीमें चले आये ।।३०।। उनके मनमें यह बात आयी कि इन्होंने जो अपने नेत्र बंद कर रखे हैं, सो क्या वास्तवमें इन्होंने अपनी सारी इन्द्रियवृत्तियोंका निरोध कर लिया है अथवा इन राजाओंसे हमारा क्या प्रयोजन है, यों सोचकर इन्होंने झूठ-मूठ समाधिका ढोंग रच रखा है ।।३१।।

उन शमीक मुनिका पुत्र बड़ा तेजस्वी था। वह दूसरे ऋषिकुमारोंके साथ पास ही खेल रहा था। जब उस बालकने सुना कि राजाने मेरे पिताके साथ दुर्व्यवहार किया है, तब वह इस प्रकार कहने लगा— ।।३२।। 'ये नरपति कहलानेवाले लोग उच्छिष्टभोजी कौओंके समान संड-मुसंड होकर कितना अन्याय करने लगे हैं! ब्राह्मणोंके दास होकर भी ये दरवाजेपर पहरा देनेवाले कुत्तेके समान अपने स्वामीका ही तिरस्कार करते हैं ।।३३।। ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंको अपना द्वारपाल बनाया है। उन्हें द्वारपर रहकर रक्षा करनी चाहिये, घरमें घुसकर स्वामीके बर्तनोंमें खानेका उसे अधिकार नहीं है ।।३४।। अतएव उन्मार्गगामियोंके शासक भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेपर इन मर्यादा तोड़नेवालोंको आज मैं दण्ड देता हूँ। मेरा तपोबल देखो' ।।३५।। अपने साथी बालकोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधसे लाल-लाल आँखोंवाले उस ऋषिकुमारने कौशिकी नदीके जलसे आचमन करके अपने वाणी-रूपी वज्रका प्रयोग किया ।।३६।। 'कुलांगार परीक्षित्ने मेरे पिताका अपमान करके मर्यादाका उल्लंघन किया है, इसलिये मेरी प्रेरणासे आजके सातवें दिन उसे तक्षक सर्प डस लेगा' ।।३७।।

ततोऽभ्येत्याश्रमं बालो गले सर्पकलेवरम् ।
पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ।।३८
स वा आङ्गिरसो ब्रह्मन् श्रुत्वा सुतविलापनम् ।
उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ।।३९
विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदिषि ।
केन वा तेऽपकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ।।४०
निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं
स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत् ।
अहो बतांहो महदज्ञ ते कृत-
मल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ।।४१
न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं
सम्मातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता
विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ।।४२
अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि
रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः ।
तदा हि चौरप्रचुरो विनङ्क्ष्य-
त्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत् क्षणात् ।।४३
तदद्य नः पापमुपैत्यनन्वयं
यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुम्पकात् ।
परस्परं घ्नन्ति शपन्ति वृञ्जते
पशून स्त्रियोऽर्थान् पुरुदस्यवो जनाः ।।४४
तदाऽऽर्यधर्मश्च विलीयते नृणां
वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ।
ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां
शुनां कपीनामिव वर्णसङ्करः ।।४५
धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः ।
साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट् ।
क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति ।।४६

इसके बाद वह बालक अपने आश्रमपर आया और अपने पिताके गलेमें साँप देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ तथा वह ढाड़ मारकर रोने लगा ।।३८।। विप्रवर शौनकजी! शमीक मुनिने अपने पुत्रका रोना-चिल्लाना सुनकर धीरे-धीरे अपनी आँखें खोली और देखा कि उनके गलेमें एक मरा साँप पड़ा है ।।३९।। उसे फेंककर उन्होंने अपने पुत्रसे पूछा—'बेटा! तुम क्यों रो रहे हो? किसने तुम्हारा अपकार किया है?' उनके इस प्रकार पूछनेपर बालकने सारा हाल कह दिया ।।४०।। ब्रह्मर्षि शमीकने राजाके शापकी बात सुनकर अपने पुत्रका अभिनन्दन नहीं किया। उनकी दृष्टिमें परीक्षित् शापके योग्य नहीं थे। उन्होंने कहा—'ओह, मूर्ख बालक! तूने बड़ा पाप किया! खेद है कि उनकी थोड़ी-सी गलतीके लिये तूने उनको इतना बड़ा दण्ड दिया ।।४१।। तेरी बुद्धि अभी कच्ची है। तुझे भगवत्स्वरूप राजाको साधारण मनुष्योंके समान नहीं समझना चाहिये; क्योंकि राजाके दुस्सह तेजसे सुरक्षित और निर्भय रहकर ही प्रजा अपना कल्याण सम्पादन करती है ।।४२।। जिस समय राजाका रूप धारण करके भगवान् पृथ्वीपर नहीं दिखायी देंगे, उस समय चोर बढ़ जायँगे और अरक्षित भेड़ोंके समान एक क्षणमें ही लोगोंका नाश हो जायगा ।।४३।। राजाके नष्ट हो जानेपर धन आदि चुरानेवाले चोर जो पाप करेंगे, उसके साथ हमारा कोई सम्बन्ध न होनेपर भी वह हमपर भी लागू होगा। क्योंकि राजाके न रहनेपर लुटेरे बढ़ जाते हैं और वे आपसमें मार-पीट, गाली-गलौज करते हैं, साथ ही पशु, स्त्री और धन-सम्पत्ति भी लूट लेते हैं ।।४४।। उस समय

******ebook converter DEMO Watermarks*******

मनुष्योंका वर्णाश्रमाचार-युक्त वैदिक आर्यधर्म लुप्त हो जाता है, अर्थ-लोभ और काम-वासनाके विवश होकर लोग कुत्तों और बंदरोंके समान वर्णसंकर हो जाते हैं ।।४५।। सम्राट् परीक्षित् तो बड़े ही यशस्वी और धर्मधुरन्धर हैं। उन्होंने बहुत-से अश्वमेध यज्ञ किये हैं और वे भगवान्‌के परम प्यारे भक्त हैं; वे ही राजर्षि भूख-प्याससे व्याकुल होकर हमारे आश्रमपर आये थे, वे शापके योग्य कदापि नहीं हैं ।।४६।।

अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना ।
पापं कृतं तद्भगवान् सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ।।४७

तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हता अपि ।
नास्य तत् प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ।।४८

इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः ।
स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिन्तयत् ।।४९

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः ।
न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः ।।५०

इस नासमझ बालकने हमारे निष्पाप सेवक राजाका अपराध किया है, सर्वात्मा भगवान् कृपा करके इसे क्षमा करें ।।४७।। भगवान्‌के भक्तोंमें भी बदला लेनेकी शक्ति होती है, परंतु वे दूसरोंके द्वारा किये हुए अपमान, धोखेबाजी, गाली-गलौज, आक्षेप और मार-पीटका कोई बदला नहीं लेते ।।४८।। महामुनि शमीकको पुत्रके अपराधपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। राजा परीक्षित्‌ने जो उनका अपमान किया था, उसपर तो उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया ।।४९।। महात्माओंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जगत्‌में जब दूसरे लोग उन्हें सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें डाल देते हैं, तब भी वे प्रायः हर्षित या व्यथित नहीं होते; क्योंकि आत्माका स्वरूप तो गुणोंसे सर्वथा परे है ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे विप्रशापोपलम्भनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

---

१. प्रा० पा०—नाभि०। २. प्रा० पा०—नृपो। ३. प्रा० पा०—मेतद्धि।

१. प्रा० पा०—ततो। २. प्रा० पा०—विद्वान्। ३. प्रा० पा०—बत। ४. प्रा० पा०—रसाम्यैरति० ।

* उच्च वर्णकी माता और निम्न वर्णके पितासे उत्पन्न संतानको 'विलोमज' कहते हैं। सूत जातिकी उत्पत्ति इसी प्रकार ब्राह्मणी माता और क्षत्रिय पिताके द्वारा होनेसे उसे शास्त्रोंमें

******ebook converter DEMO Watermarks*******

विलोम जाति माना गया है।

१. प्रा० पा०—तस्य ब्रह्मर्षरंसे। २. प्रा० पा०—मागतः। ३. प्रा० पा०—गृहपालो। ४. प्रा० पा०—भङ्क्तु। ५. प्रा० पा०—सेतुमद्या०। ६. प्रा० पा०—अतो। ७. प्रा० पा०—पितृद्रुहम्।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

अथैकोनविंशोऽध्यायः
परीक्षित्‌का अनशनव्रत और शुकदेवजीका आगमन

सूत उवाच

महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं
विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ।
अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं
निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ।।१
ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्
दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ।
तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय[१] मे
यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा[२] ।।२
अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं[३]
प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ।
दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्[४]
पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ।।३

सूतजी कहते हैं—राजधानीमें पहुँचनेपर राजा परीक्षित्‌को अपने उस निन्दनीय कर्मके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे अत्यन्त उदास हो गये और सोचने लगे—'मैंने निरपराध एवं अपना तेज छिपाये हुए ब्राह्मणके साथ अनार्य पुरुषोंके समान बड़ा नीच व्यवहार किया। यह बड़े खेदकी बात है ।।१।। अवश्य ही उन महात्माके अपमानके फलस्वरूप शीघ्र-से-शीघ्र मुझपर कोई घोर विपत्ति आवेगी। मैं भी ऐसा ही चाहता हूँ; क्योंकि उससे मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जायगा और फिर कभी मैं ऐसा काम करनेका दुःसाहस नहीं करूँगा ।।२।। ब्राह्मणोंकी क्रोधाग्नि आज ही मेरे राज्य, सेना और भरे-पूरे खजानेको जलाकर खाक कर दे —जिससे फिर कभी मुझ दुष्टकी ब्राह्मण, देवता और गौओंके प्रति ऐसी पापबुद्धि न हो ।।३।।

स चिन्तयन्नित्थमथाशृणोद् यथा
मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ।
स साधु मेने नचिरेण तक्षका-
नलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ।।४
अथो विहायेममmमुं च लोकं

******ebook converter DEMO Watermarks*******

विमर्शितौ हेयतया पुरस्तात् ।
कृष्णाङ्घ्रिसेवामधिमन्यमान
उपाविशत् प्रायममर्त्यनद्याम् ।।५
या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्र-
कृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ।
पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्
कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ।।६
इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः
प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ।
दध्यौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो
मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ।।७
तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना
महानुभावा मुनयः सशिष्याः ।
प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः
स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ।।८
अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वा-
नरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ।
पराशरो गाधिसुतोऽथ राम
उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ।।९
मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो
भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ।
मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनि-
र्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ।।१०
अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या
राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ।
नानार्षेयप्रवरान् समेता-
नभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ।।११

वे इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि उन्हें मालूम हुआ—ऋषिकुमारके शापसे तक्षक मुझे डसेगा। उन्हें वह धधकती हुई आगके समान तक्षकका डसना बहुत भला मालूम हुआ। उन्होंने सोचा कि बहुत दिनोंसे मैं संसारमें आसक्त हो रहा था, अब मुझे शीघ्र वैराग्य होनेका कारण प्राप्त हो गया ।।४।। वे इस लोक और परलोकके भोगोंको तो पहलेसे ही तुच्छ और त्याज्य समझते थे। अब उनका स्वरूपतः त्याग करके भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सेवाको ही सर्वोपरि मानकर आमरण अनशनव्रत लेकर वे गंगातटपर बैठ गये ।।५।। गंगाजीका जल भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका वह पराग लेकर प्रवाहित होता है, जो श्रीमती तुलसीकी गन्धसे मिश्रित है। यही कारण है कि वे लोकपालोंके सहित ऊपर-नीचेके समस्त लोकोंको पवित्र करती हैं। कौन ऐसा मरणासन्न पुरुष होगा, जो उनका सेवन न करेगा? ।।६।।

इस प्रकार गंगाजीके तटपर आमरण अनशनका निश्चय करके उन्होंने समस्त आसक्तियोंका परित्याग कर दिया और वे मुनियोंका व्रत स्वीकार करके अनन्यभावसे श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ।।७।। उस समय त्रिलोकीको पवित्र करनेवाले बड़े-बड़े महानुभाव ऋषि-मुनि अपने शिष्योंके साथ वहाँ पधारे। संतजन प्रायः तीर्थयात्राके बहाने स्वयं उन तीर्थस्थानोंको ही पवित्र करते हैं ।।८।। उस समय वहाँपर अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, भगवान् व्यास, नारद तथा इनके अतिरिक्त और भी कई श्रेष्ठ देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा अरुणादि राजर्षिवर्योंका शुभागमन हुआ। इस प्रकार विभिन्न गोत्रोंके मुख्य-मुख्य ऋषियोंको एकत्र देखकर राजाने सबका यथायोग्य सत्कार किया और उनके चरणोंपर सिर रखकर वन्दना की ।।९-११।।

सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः
कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ।
विज्ञापयामास विविक्तचेता
उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ।।१२

राजोवाच

अहो वयं धन्यतमा नृपाणां
महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ।
राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्
दूराद् विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म ।।१३

तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो
व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ।
निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो
यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ।।१४

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा
गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा
दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ।।१५

पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते
रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ।
महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं
मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ।।१६

इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः
प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ।
उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते
समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ।।१७

जब सब लोग आरामसे अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये, तब महाराज परीक्षित्‌ने उन्हें फिरसे प्रणाम किया और उनके सामने खड़े होकर शुद्ध हृदयसे अंजलि बाँधकर वे जो कुछ करना चाहते थे, उसे सुनाने लगे ।।१२।।

राजा परीक्षित्‌ने कहा—अहो! समस्त राजाओंमें हम धन्य हैं। धन्यतम हैं; क्योंकि अपने शील-स्वभावके कारण हम आप महापुरुषोंके कृपापात्र बन गये हैं। राजवंशके लोग प्रायः निन्दित कर्म करनेके कारण ब्राह्मणोंके चरण-धोवनसे दूर पड़ जाते हैं—यह कितने खेदकी बात है ।।१३।। मैं भी राजा ही हूँ। निरन्तर देह-गेहमें आसक्त रहनेके कारण मैं भी पापरूप ही हो गया हूँ। इसीसे स्वयं भगवान्‌ ही ब्राह्मणके शापके रूपमें मुझपर कृपा करनेके लिये पधारे हैं। यह शाप वैराग्य उत्पन्न करनेवाला है। क्योंकि इस प्रकारके शापसे संसारासक्त पुरुष भयभीत होकर विरक्त हो जाया करते हैं ।।१४।।

ब्राह्मणो! अब मैंने अपने चित्तको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दिया है। आपलोग और माँ गंगाजी शरणागत जानकर मुझपर अनुग्रह करें, ब्राह्मणकुमारके शापसे प्रेरित कोई दूसरा कपटसे तक्षकका रूप धरकर मुझे डस ले अथवा स्वयं तक्षक आकर डस ले; इसकी मुझे तनिक भी परवा नहीं है। आपलोग कृपा करके भगवान्‌की रसमयी लीलाओंका गायन करें ।।१५।। मैं आप ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रणाम करके पुनः यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे कर्मवश चाहे जिस योनिमें जन्म लेना पड़े, भगवान्‌ श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरा अनुराग हो, उनके चरणाश्रित महात्माओंसे विशेष प्रीति हो और जगत्‌के समस्त प्राणियोंके प्रति मेरी एक-सी मैत्री रहे। ऐसा आप आशीर्वाद दीजिये ।।१६।।

महाराज परीक्षित्‌ परम धीर थे। वे ऐसा दृढ़ निश्चय करके गंगाजीके दक्षिण तटपर पूर्वाग्र कुशोंके आसनपर उत्तरमुख होकर बैठ गये। राज-काजका भार तो उन्होंने पहले ही अपने पुत्र जनमेजयको सौंप दिया था ।।१७।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे
प्रायोपविष्टे दिवि देवसङ्घाः ।
प्रशस्य भूमौ व्यकिरन् प्रसूनै-
र्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ।।१८

महर्षयो वै समुपागता ये
प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ।
ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा
यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ।।१९

न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं
भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ।
येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं
सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ।।२०

सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य
कलेवरं यावदसौ विहाय ।
लोकं परं विरजस्कं विशोकं
यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ।।२१

आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्
समं मधुच्युद् गुरु चाव्यलीकम् ।
आभाषतैनानभिनन्द्य युक्तान्
शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ।।२२

समागताः सर्वत एव सर्वे
वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ।
नेहाथवामुत्र च कश्चनार्थ
ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ।।२३

ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे
विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् ।
सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं
शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ।।२४

******ebook converter DEMO Watermarks*******

पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् परीक्षित् जब इस प्रकार आमरण अनशनका निश्चय करके बैठ गये, तब आकाशमें स्थित देवतालोग बड़े आनन्दसे उनकी प्रशंसा करते हुए वहाँ पृथ्वीपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे तथा उनके नगारे बार-बार बजने लगे ।।१८।।

सभी उपस्थित महर्षियोंने परीक्षित्के निश्चयकी प्रशंसा की और 'साधु-साधु' कहकर उनका अनुमोदन किया। ऋषिलोग तो स्वभावसे ही लोगोंपर अनुग्रहकी वर्षा करते रहते हैं; यही नहीं, उनकी सारी शक्ति लोकपर कृपा करनेके लिये ही होती है। उन लोगोंने भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंसे प्रभावित परीक्षित्के प्रति उनके अनुरूप वचन कहे ।।१९।।

'राजर्षिशिरोमणे! भगवान् श्रीकृष्णके सेवक और अनुयायी आप पाण्डुवंशियोंके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आपलोगोंने भगवान्की सन्निधि प्राप्त करनेकी आकांक्षासे उस राजसिंहासनका एक क्षणमें ही परित्याग कर दिया, जिसकी सेवा बड़े-बड़े राजा अपने मुकुटोंसे करते थे ।।२०।।

हम सब तबतक यहीं रहेंगे, जबतक ये भगवान्के परम भक्त परीक्षित् अपने नश्वर शरीरको छोड़कर मायादोष एवं शोकसे रहित भगवद्धाममें नहीं चले जाते' ।।२१।।

ऋषियोंके ये वचन बड़े ही मधुर, गम्भीर, सत्य और समतासे युक्त थे। उन्हें सुनकर राजा परीक्षित्ने उन योगयुक्त मुनियोंका अभिनन्दन किया और भगवान्के मनोहर चरित्र सुननेकी इच्छासे ऋषियोंसे प्रार्थना की ।।२२।।

'महात्माओ! आप सभी सब ओरसे यहाँ पधारे हैं। आप सत्यलोकमें रहनेवाले मूर्तिमान् वेदोंके समान हैं। आपलोगोंका दूसरोंपर अनुग्रह करनेके अतिरिक्त, जो आपका सहज स्वभाव ही है, इस लोक या परलोकमें और कोई स्वार्थ नहीं है ।।२३।।

विप्रवरो! आपलोगोंपर पूर्ण विश्वास करके मैं अपने कर्तव्यके सम्बन्धमें यह पूछने योग्य प्रश्न करता हूँ। आप सभी विद्वान् परस्पर विचार करके बतलाइये कि सबके लिये सब अवस्थाओंमें और विशेष करके थोड़े ही समयमें मरनेवाले पुरुषोंके लिये अन्तःकरण और शरीरसे करनेयोग्य विशुद्ध कर्म कौन-सा है*।।२४।।

तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो
यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो
वृतश्च बालैरवधूतवेषः ।।२५

तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपाद-
करोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् ।
चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्ण
सुभ्रुाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ।।२६

******ebook converter DEMO Watermarks*******

निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षस-
मावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च ।
दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं
प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ।।२७

श्यामं सदापीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या
स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ।
प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्य-
स्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ।।२८

स विष्णुरातोऽतिथय आगताय
तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार ।
ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका
महासने सोपविवेश पूजितः ।।२९

उसी समय पृथ्वीपर स्वेच्छासे विचरण करते हुए, किसीकी कोई अपेक्षा न रखनेवाले व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजी महाराज वहाँ प्रकट हो गये। वे वर्ण अथवा आश्रमके बाह्य चिह्नोंसे रहित एवं आत्मानुभूतिमें सन्तुष्ट थे। बच्चों और स्त्रियोंने उन्हें घेर रखा था। उनका वेष अवधूतका था ।।२५।।

सोलह वर्षकी अवस्था थी। चरण, हाथ, जंघा, भुजाएँ, कंधे, कपोल और अन्य सब अंग अत्यन्त सुकुमार थे। नेत्र बड़े-बड़े और मनोहर थे। नासिका कुछ ऊँची थी। कान बराबर थे। सुन्दर भौंहें थीं, इनसे मुख बड़ा ही शोभायमान हो रहा था। गला तो मानो सुन्दर शंख ही था ।।२६।।

हँसली ढकी हुई, छाती चौड़ी और उभरी हुई, नाभि भँवरके समान गहरी तथा उदर बड़ा ही सुन्दर, त्रिवलीसे युक्त था। लंबी-लंबी भुजाएँ थीं, मुखपर घुँघराले बाल बिखरे हुए थे। इस दिगम्बर वेषमें वे श्रेष्ठ देवताके समान तेजस्वी जान पड़ते थे ।।२७।।

श्याम रंग था। चित्तको चुरानेवाली भरी जवानी थी। वे शरीरकी छटा और मधुर मुसकानसे स्त्रियोंको सदा ही मनोहर जान पड़ते थे। यद्यपि उन्होंने अपने तेजको छिपा रखा था, फिर भी उनके लक्षण जाननेवाले मुनियोंने उन्हें पहचान लिया और वे सब-के-सब अपने-अपने आसन छोड़कर उनके सम्मानके लिये उठ खड़े हुए ।।२८।।

राजा परीक्षित्‌ने अतिथिरूपसे पधारे हुए श्रीशुकदेवजीको सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी पूजा की। उनके स्वरूपको न जाननेवाले बच्चे और स्त्रियाँ उनकी यह महिमा देखकर वहाँसे लौट गये; सबके द्वारा सम्मानित होकर श्रीशुकदेवजी श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए ।।२९।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

स संवृतस्तत्र महान् महीयसां
ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसङ्घैः ।
व्यरोचतालं भगवान् यथेन्दु-
र्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ।।३०

प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं
मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ।
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलि-
र्नत्वा गिरा सूनृतयान्वपृच्छत् ।।३१

परीक्षिदुवाच

अहो अद्य वयं ब्रह्मन् सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः ।
कृपयातिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ।।३२

येषां संस्मरणात् पुंसां[१] सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः ।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ।।३३

सांनिध्यात्ते महायोगिन्पातकानि महान्त्यपि ।
सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ।।३४

अपि मे भगवान् प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः ।
पैतृष्वसेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ।।३५

अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ।
नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः[२] ।।३६

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ।।३७

ग्रह, नक्षत्र और तारोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षियोंके समूहसे आवृत श्रीशुकदेवजी अत्यन्त शोभायमान हुए। वास्तवमें वे महात्माओंके भी आदरणीय थे ।।३०।।

जब प्रखरबुद्धि श्रीशुकदेवजी शान्तभावसे बैठ गये, तब भगवान्के परम भक्त

******ebook converter DEMO Watermarks*******

परीक्षित्ने उनके समीप आकर और चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। फिर खड़े होकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उसके पश्चात् बड़ी मधुर वाणीसे उनसे यह पूछा ।।३१।।

परीक्षित्ने कहा—ब्रह्मस्वरूप भगवन्! आज हम बड़भागी हुए; क्योंकि अपराधी क्षत्रिय होनेपर भी हमें संत-समागमका अधिकारी समझा गया। आज कृपापूर्वक अतिथिरूपसे पधारकर आपने हमें तीर्थके तुल्य पवित्र बना दिया ।।३२।।

आप-जैसे महात्माओंके स्मरणमात्रसे ही गृहस्थोंके घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं; फिर दर्शन, स्पर्श, पादप्रक्षालन और आसन-दानादिका सुअवसर मिलनेपर तो कहना ही क्या है ।।३३।।

महायोगिन्! जैसे भगवान् विष्णुके सामने दैत्यलोग नहीं ठहरते, वैसे ही आपकी सन्निधिसे बड़े-बड़े पाप भी तुरंत नष्ट हो जाते हैं ।।३४।।

अवश्य ही पाण्डवोंके सुहृद् भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर अत्यन्त प्रसन्न हैं; उन्होंने अपने फुफेरे भाइयोंकी प्रसन्नताके लिये उन्हींके कुलमें उत्पन्न हुए मेरे साथ भी अपनेपनका व्यवहार किया है ।।३५।।

भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा न होती तो आप-सरीखे एकान्त वनवासी अव्यक्तगति परम सिद्ध पुरुष स्वयं पधारकर इस मृत्युके समय हम-जैसे प्राकृत मनुष्योंको क्यों दर्शन देते ।।३६।।

आप योगियोंके परम गुरु हैं, इसलिये मैं आपसे परम सिद्धिके स्वरूप और साधनके सम्बन्धमें प्रश्न कर रहा हूँ। जो पुरुष सर्वथा मरणासन्न है, उसको क्या करना चाहिये? ।।३७।।

यच्छ्रोतव्यमथो जप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ।
स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ।।३८

नूनं भगवतो ब्रह्मन् गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ।।३९

सूत उवाच

एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ।
प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान् बादरायणिः ।।४०

भगवन्! साथ ही यह भी बतलाइये कि मनुष्यमात्रको क्या करना चाहिये। वे किसका श्रवण, किसका जप, किसका स्मरण और किसका भजन करें तथा किसका त्याग करें? ।।३८।। भगवत्स्वरूप मुनिवर! आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है; क्योंकि जितनी देर एक गाय दुही जाती है, गृहस्थोंके घरपर उतनी देर भी तो आप नहीं ठहरते ।।३९।।

******ebook converter DEMO Watermarks*******

सूतजी कहते हैं—जब राजाने बड़ी ही मधुर वाणीमें इस प्रकार सम्भाषण एवं प्रश्न किये, तब समस्त धर्मोंके मर्मज्ञ व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजी उनका उत्तर देने लगे ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

।। इति प्रथमः स्कन्धः समाप्तः ।।

।। हरिः ॐ तत्सत् ।।

---

१. प्रा० पा०—ह्यघ। २. प्रा० पा०—पुनरेव सद्यः। ३. प्रा० पा०—बलमूर्ज०। ४. प्रा० पा०—मेऽस्तु।

* इस जगह राजाने ब्राह्मणोंसे दो प्रश्न किये हैं; पहला प्रश्न यह है कि जीवको सदा-सर्वदा क्या करना चाहिये और दूसरा यह कि जो थोड़े ही समयमें मरनेवाले हैं, उनका क्या कर्तव्य है? ये ही दो प्रश्न उन्होंने श्रीशुकदेवजीसे भी किये तथा क्रमशः इन्हीं दोनों प्रश्नोंका उत्तर द्वितीय स्कन्धसे लेकर द्वादशपर्यन्त श्रीशुकदेवजीने दिया है।

१. प्रा० पा०—पुंसः। २. प्रा० पा० वरीयसः।

******ebook converter DEMO Watermarks*******